बुन्देली बसंत 2009

बुन्देली विकास संस्थान









पंजी. क्र. MPHIN-17761/12/1/2002-TC

बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित -

बुन्देली बसन्त

अंक १०, वर्ष १०, १७ फरवरी २००६

❄

संरक्षक :

शंकरप्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा'

राजमहल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २४१५४६, २४१४२६

❄

संपादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

एम.आई.जी.-७, न्यू हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,

पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

☎ : ६४२५४७४६६२

❄

सह संपादक

डॉ. के.एल. पटेल

रेडियो कॉलोनी के सामने, पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : ६४२५८७६७७३

डॉ. हरिसिंह घोष

घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : ६४२५१४२०६६

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

बसारी, जिला छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८६) २८१२२२

- संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

- **आवरण चित्र :**
  प्रो. सुधीर छारी,
  विभागाध्यक्ष-चित्रकला, शास. महाराजा महाविद्यालय
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : ९८२६५४६७७४

- **सहयोग राशि :**
  १००/- (एक सौ रुपये)

- **संगणकीय अक्षर संयाजन :**
  जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, छतरपुर
  ☎ : ०९४२४६७४०६४

- **मुद्रक :**
  जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२) २४८६८६

- बुन्देली बसन्त में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

- विवादास्पद मामले केवल छतरपुर न्यायालय के अधीन होंगे।

अनुक्रम

भाषा, साहित्य एवं आलोचना

बुन्देली परम्परा और संस्कृति

इतिहास और पुरातत्व

बुन्देली काव्य

बुन्देली गद्य

अन्य

संपादकीय -

बुन्देलखण्ड अँचल प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है। यहाँ के संसाधनों का समुचित दोहन न होने से हम आर्थिक पिछड़ेपन के शिकार हैं। यहाँ पन्ना की खदानों से हीरा निकाला जाता है, किन्तु उन्हें बुन्देलखण्ड के बाहर तराशा जाता है, छतरपुर–ललितपुर जिले से ग्रेनाइट निकाला जाता है, जो फिनिश्ड बाहर होता है। संगमरमर, रॉक फास्फेट जैसे खनिज यहाँ है किन्तु उनका उपयोग यहाँ की समृद्धि के लिए नहीं हो रहा है, जिससे हम औद्योगिक पिछड़ेपन के शिकार हैं। इसके पीछे सक्षम नेतृत्व का अभाव, अशिक्षा, जनजागरूकता की कमी तथा अधोसंरचना के साधनों का न होना प्रमुख कारण है। बुन्देलखण्ड के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अँचल के साहित्यकारों को आगे आना चाहिए। यहाँ के कवियों, लेखकों तथा साहित्यकारों ने अतीत में समाज को जगाने का अद्भुत कार्य किया है। सन् 1857 से लेकर 1947 तक अँचल में अलख जगाने का कार्य हरबोलों तथा लोकगीत गायकों ने किया। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम सब रचनाकार समाज में अशिक्षा का परिहार कर चेतना जागरण करें जिससे हम अपने हकों के प्रति जागरूक हों, क्षेत्र में सक्षम नेतृत्व का विकास हो। आज लोक मानस, बाजारवाद के प्रभाव से परहित के स्थान पर स्वहित में सन्नद्ध हो रहा है। व्यक्ति–व्यक्ति का दुश्मन हो रहा है। गाँव में सरपंची चुनाव के कारण पार्टीबाजी ने गहरे से स्थान बना लिया है। गाँव सामूहिकता के स्थान पर विभाजन के शिकार हो गए हैं। खंडित मानसिकता के कारण विकास भी खण्डित हो रहा है। दलबंदी व प्रतिशोध की भावना से ग्रामीण विकास की विकासधारा अवरुद्ध हो रही है। इस खाई को पाटने हेतु गाँवों में लोक रचनाकारों को आगे आकर कुछ करने की जरूरत है।

परिवर्तन के प्रभाव से लोक संस्कृति के स्वरूप में बदलाव आ रहा है। हमारे रीति–रिवाज, परम्पराएँ, खान–पान, वेशभूषा तथा तीज–त्यौहारों में परिवर्तन देखने को मिल रहा है। हमारे संस्कार, हमारी बोली–बानी के साथ हमारे नाते–रिश्ते के स्वरूप परिवर्तित हो रहे हैं। प्रत्येक जागरूक समाज अपनी भावी पीढ़ी हेतु धरोहरों को सहेज कर हस्तांतरित करता है। हमें भी इस क्षेत्र में कार्य करने की आवश्यकता है। साथी लेखकों से अपेक्षा है कि परिवर्तन की मार को अनुभव कर लोक संस्कृति के बदलते स्वरूप की नब्ज को महसूस कर उसे कलमबद्ध कर विश्लेषणपरक काम करें तो बेहतर होगा। संस्कारों पर समय की मार पड़ी है, बहुत से समय की मार से गायब हो गए हैं, बहुत कराह रहे हैं और बहुत अपने को समेट कर संक्षिप्ततम रूप धारण कर रहे हैं। लोकजीवन में दीर्घजीवन के लिए उपयोगिता का सिद्धान्त कार्य करता है। आज उन कारणों को हम खोजें जिनके कारण स्वरूप परिवर्तित हो रहा है। परिवर्तित स्वरूप अनुसार समाज में उसकी उपादेयता को परखें। भाषा के स्तर पर देखें तो पाते हैं कि नई–नई अवधारणाओं के आने से नये–नये शब्द हमारे बीच

में दूसरी–भाषाओं से आ रहे हैं। हमारी जीवन शैली बदलने से भाषा का रूप बदल रहा है। लोकोक्तियों के पीछे की कथाएँ विलुप्त हो रही हैं, पुरानी पीढ़ी के साथ लोकमुख में जीवित कथाएं व गाथाएँ मर रही हैं। इनको सहेजने के लिए प्रत्येक गांव के पढ़े–लिखे व्यक्ति को आगे आना होगा, तभी हमारी माटी की इस विरासत को सहेजा जा सकेगा।

लोक कला के विभिन्न रूप चाहे वे गायन के हों, नृत्य के हों, स्थापत्य के या चित्रकारी के। सभी को सहेजने की आवश्यकता है। लोक कथाओं को जीवंत बनाने में नारी शक्ति की महती भूमिका है। परंपरा निर्वहन के साथ लोक–कलाओं का शिक्षण, माताओं व बहनों द्वारा ही होता है। घर में पर्वों के अवसर सजावट में, रंगोली, चौक व अन्य चित्रांकन इसी कड़ी का हिस्सा है। गोबर के गणेश बनाना, मिट्टी की गौरा बनाना, दोजें रखना आदि इसी परम्परा से है। लोक कला के इन रूपों को सहेजने हेतु सतर्क होने की जरूरत है। जन्म व विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले पारंपरिक दादरा, सोहर, बन्ना–बन्नी, गारी आदि गीत पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होते आ रहे थे। धार्मिक आस्थाओं में पूजन विधियाँ तथा गायन की शैलियाँ समाहित रहती हैं, किन्तु यह भी हाइटेक हो रही हैं। इनके मूल स्वरूप को बचाने की जरूरत है। इन तमाम भावनाओं को दृष्टिगत रखकर ही बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक श्री शंकार प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा' ने एक सपना देखा है, जिसे वे जनसहयोग से लगातार पूरा करने में जुटे हैं। कुछ दिनों से यह अनुभव किया जा रहा है कि इस सामूहिक प्रयास में अभी नौजवानों की और अधिक भागीदारी की आवश्यकता है। विपरीत परिस्थितियों के बाद भी बुन्देली उत्सव का आयोजन तथा 'बुन्देली बसन्त' का प्रकाशन बुन्देली विकास संस्थान संरक्षक की जीवटता का प्रतीक है। उनके इस प्रयास से हमें प्रेरणा लेकर कार्य करने की परम आवश्यकता है।

आप सोच रहे होंगे कि संपादकीय के माध्यम से लगातार मैं 'चाहिए' की बात कर रहा हूँ। इस संबंध में निवेदन है कि आज जो हो रहा है, या है उसे बेहतरी में बदलने हेतु 'चाहिए' का भाव या सपना देखने की आवश्यकता है। मैं तो केवल एक स्वप्न ही दिखाकर प्रेरित कर रहा हूँ कि आप के दिलों–दिमाग में कोई सपना अपनी धरती, अपनी संस्कृति व अपने देश के लिए जाग जाए तो हमारा उद्देश्यपूर्ण होगा।

'बुन्देली बसंत' के इस अंक में हर बार की तरह विविध विषयों पर लेखकों, कवियों ने कलम चलाई। बुन्देली में नाटकों की रचना हो रही है, दो नाटक इस अंक में छापे हैं। संस्मरण व अन्य गद्य विधाओं के साथ बुन्देली भाषा के सामर्थ्य संबंधी लेखों के माध्यम से बुन्देली साहित्य की सेवा करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसमें कहाँ तक हम सफल हो रहे हैं? यह तो आप ही बता सकते हैं।

सभी रचनाकार साथियों द्वारा प्रदत्त सहयोग के प्रति बुन्देली विकास संस्थान कृतज्ञ हैं और आशा करता है कि भविष्य में नेह की डोर इसी तरह जोड़े रहेंगे।

बहादुरसिंह परमार

चिट्ठी मिली अपुन की

लोक संस्कृति शोध संस्थानम्
गरौठा, **जिला झाँसी (उ.प्र.)**

बुन्देलखण्ड की कीर्ति पताका ''बुन्देली बसन्त'' नित नये कीर्तिमान प्राप्त कर रही है। इस प्रत्रिका में प्रकाशित उत्कृष्ट साहित्य की सोंधी सुगन्ध से भारत हृदय बुन्देलखण्ड की प्राचीन सभ्यता–संस्कृति एवम् लोक जीवन के दर्शन करने का सौभाग्य, सभी साहित्य प्रमियों को प्राप्त हो रहा है। बुन्देलखण्ड का महामहोत्सव ''बुन्देली उत्सव'' जो कि बुन्देली विकास संस्थान का वैज्ञानिक प्रयोग है। यह सफल और सार्थक वैज्ञानिक प्रयोग नित नये आयाम स्थापित कर रहा है। लोक संस्कृति की समग्र विधाओं को अपने में समाहित किये अपना ''बुन्देली विकास संस्थान'' खूब फूले–फले यही मनोकामना है।

''नैन पुतरिया'' ''बुन्देली बसन्त'' पत्रिका में अपनी लोक संस्कृति के ऐसई सुदर्शन होत रावें, जेई मनोकामना है, ओरछा के रामराजाजू, पन्ना के जुगलकिशोर जू और मैहर की शारदा मइया सें जेई प्रार्थना है।''

— अशोक चतुर्वेदी

आकाशवाणी केन्द्र, **छतरपुर**

बुन्देली उत्सव पर प्रकाशित स्मारिका का कलेवर, पाठ्य सामग्री आदि देख कर अभिभूत हुआ। बुन्देली लोक संस्कृति के कई रंगों की छटा बिखेरती इस स्मारिका से बुन्देली लोक संस्कृति के सभी अंगों का परिचय पाठक को मिलता है। आज जब युवा पीढ़ी, पश्चिम में संस्कृति में पथभ्रमित हो रहा है, ऐसे संक्रमणकाल में बुन्देली लोक संस्कृति की प्रासंगिकता को उद्घाटित करते हुये एवं उसे अक्षुण्ण बनाये रखने की दिशा में एक बुन्देली उत्सव आयोजन व स्मारिका का प्रकाशन वास्तव में स्तुत्य कार्य है, आयोजन में आय–व्यय विवरण का स्मारिका में प्रकाशन, कार्य में पारदर्शिता का परिचायक है, और अन्य उत्सवों के आयोजन के लिये प्रेरणास्पद भी है। श्री शंकर प्रताप सिंह उपाख्य मुन्ना राजा को दिया गया, 'बुन्देलखण्ड रत्न' का सम्मान वास्तव में बुन्देली संस्कृति का सम्मान है।

— दिनेश रजक, कार्यक्रम अधिशासी

गोविन्द बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान
झूँसी, इलाहाबाद (उ.प्र.)

पत्रिका 'बुन्देली बसन्त' का नया अंक भेजने के लिए धन्यवाद। 'बुन्देली बसन्त' अपने आप में एकमात्र ऐसी पत्रिका है जो पूरी तरह से बुन्देली इतिहास, साहित्य एवं संस्कृति को समर्पित है। इस पत्रिका के द्वारा न केवल बुन्देलखण्डवासियों अपितु अन्य स्थानों पर रहने वालों को भी बुन्देली लोकसंस्कृति, परम्परा एवं साहित्य को करीब से जानने व समझने का मौका मिलेगा। आपकी पत्रिका शोधार्थियों के लिए भी हर प्रकार से मददगार साबित होगी। बुन्देली साहित्य को बचाये रखने का आपका यह प्रयास सराहनीय है। आपकी यह पत्रिका उत्तरोत्तर प्रगति करे हमारी यह शुभकामना है।

— बद्री नारायण

६८, विनय नगर–१, **ग्वालियर**

अपने पति श्री दिनेशचन्द्र दुबे को आपके द्वारा प्रेषित 'बुन्देली बसन्त' देखकर मन प्रसन्न हुआ, आपकी संपादकीय में उत्कृष्ट बौद्धिकता देख चकित रह गई। अंक में पृष्ठ १२८ पर ईमानदारी से संस्था का एक–एक पैसे का हिसाब किताब में वर्णित है। यह प्रकट करता है कि बुन्देली संस्कृति का काम कितने ईमानदार हाथों में है। मैं भी बुन्देली भाषा के माधुर्य से जुड़ी हुयी हूँ। जब बुन्देली कवि सम्मेलन हो तो मुझे जरूर याद करें।

हाँ एक सुझाव है कि बुन्देली कविताओं के पृष्ठ पर यदि रंगीन रेखांकन और कर दिया जाए तो क्या कहना?

— चेतना दुबे

३६/१५, प्रेमगंज, **सीपरी (झांसी)** उ.प्र.

बुन्देली बसन्त २००८ प्राप्त होने पर हार्दिक बधाई। भाषा, साहित्य आलोचना, बुन्देली परम्परा, संस्कृति, इतिहास, पुरातत्व, बुन्देली काव्य, बुन्देली गद्य की अनुपम संकलन है बुन्देली बसन्त। आपके सम्पादन में टीम भावनाओं से किया गया सृजनात्मक कार्य फलीभूत हुआ है। स्मारिका में रचनाओं, लेखों की उत्कृष्टता, उपादेयता, रोचकता, निष्पक्षता, व्यवहारिकता, सार्थकता का पूर्णतः चयन में ध्यान रखा गया है। मेरी शुभकामनाएं स्वीकारें।

— साकेत सुमन चतुर्वेदी

गांधी महाविद्यालय, उरई
जिला जालौन (उ.प्र.)

बुन्देली बसन्त २००८ अंक देखकर मन पुलकित हो गया कि बुन्देलखण्ड में यहाँ की संस्कृति को लेकर अभी भी एक बुलन्द वाग्धारा प्रवाहित हो रही है। वस्तुतः मधुकर, ईसुरी, बेतवा वाणी जैसी पत्रिकाओं के बन्द होने के बाद बुन्देली पत्रिकाओं की दृष्टि से बहुत बड़ा सांस्कृतिक, साहित्यिक रिक्त था, जो डॉ. बहादुर सिंह परमार के सम्पादन में निकल रही इस पत्रिका से पूर्ण भर जाता है। एतदर्थ बुन्देली बसन्त परिवार को हार्दिक बधाई।।

— डॉ. राकेश नारायण द्विवेदी
प्राध्यापक हिन्दी विभाग

— ४२५ (३५०/२), नई बस्ती
झाँसी (उ.प्र.)

बुन्देली बसन्त का २००८ का अंक प्राप्त हुआ। देखकर पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। अंक का गैटप–सैटप बड़ा सुन्दर है। अन्दर जो सामग्री है वह बुन्देलखण्ड से ही सम्बन्धित है, अतः अच्छी लगी है। मुझे ऐसा लगा कि इसमें नया कुछ भी नहीं है। वही लेखक वही उनकी पुनरावृत्तियों वाली सामग्री, जो अनेक बार अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है। मेरी राय तो है कि सम्पादक मण्डल को विषय

व शीर्षक मौलिक ढंग से स्वयं चुनकर लेखकों, कवियों और विद्वानों से मंगाना चाहिए। बुन्देली साहित्य और संस्कृति में अभी ऐसे अनेक रहस्य छिपे पड़े हैं, जो आश्चर्यजनक हैं। कैसे, कौन, क्यों और कब प्रश्नचिह्न लगाकर मांगा जाए तो बहुत कुछ नया मिल सकता है। फिर भी सम्पादक मण्डल का प्रयास परिश्रम और लगन सराहनीय है। यह समीक्षा सद्भावनापूर्वक है। मैं संस्थान की प्रगति और उन्नति की आकाँक्षा करता हुआ संस्था के उत्थान हेतु भगवान से प्रार्थना करता हूँ।

— अवध किशोर श्रीवास्तव 'अवधेश'

सीकर भवन, न्यू दतिया पब्लिक स्कूल,

ठण्डी सड़क, **दतिया (म.प्र.)**

सुदृढ़ सम्पादन वाली, पाँच खण्डों में विभक्त, १३४ पृष्ठीय 'बुन्देली बसंत २००८' एक सुरम्य साहित्य वाटिका के रूप में मुखरित हुई है। जिसमें भाषा और साहित्य के पुष्प, परम्परा और संस्कृति के पौधे, इतिहास और पुरातत्व के पादप, बुंदेली काव्य की सुवासित–कलियाँ, और बुनदली–गद्य की लतायें – खूब पनपीं हैं – खूब पनपी हैं। वस्तुतः अंक एक स्थायी धरोहर बन गया है।

अब कुछ बुन्देली मिठास और
हाँ! 'बुन्देली बसंत' की का कह दें।
का कहदें – का–का भी कहदें।।
नोंनो–गेटअप खूब सुहानो –
नृत्यांगना–छबि का कह दें।।
मन खाँ खूब लुभा रई भा रई।
खाँड़ सी मीठी का कह दें।
'सीकर' साँची–साँची कै रये
माथे रोली 'सिंह जू' कहदें।।

— डॉ. एल.आर. सोनी, 'सीकर'

विभागाध्यक्ष हिन्दी,

अवधेश प्रताप सिंह वि.वि. रीवा

बुन्देली बसंत २००८ का अंक प्राप्त हुआ। पढ़कर प्रसन्नता हुयी कि इसमें १८५७ के उन विवरणो को अंकित किया गया है जो प्रथम स्वाधीनता संग्राम में बुन्देलखण्ड में घटित हुआ था। मैं इस अंक के माध्यम से बुन्देलखण्ड की संस्कृति, इतिहास, साहित्य और कला की जानकारियों अभिभूत हूँ। बुन्देली विकास संस्थान द्वारा मनाया जाने वाला प्रतिवर्ष बुन्देली उत्सव केवल बुन्देलखण्ड का उत्सव नहीं है। बल्कि सम्पूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्र की लोकसंस्कृतियों का समागम इसमें होता है। जो राष्ट्रीय एकता के साथ जातीय अस्मिता को संरक्षित करने हेतु महत्वपूर्ण कदम हैं।

— डॉ. दिनेश कुशवाह

जे०के० रोड, भोपाल

बुन्देली बसन्त का नया अंक प्राप्त हुआ। इसके माध्यम से ज्ञात हुआ कि बुन्देलखण्ड में मात्र कविता ही नहीं रची जा रही, वरन् रचनाकारों के द्वारा संस्मरण, लेख, कहानिया, तथा नाटकों की रचना भी की जा रही है।

श्री सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' बुन्देली भाषा के सामथ्य को उद्घाटित करने हेतु किये जा रहे संकलन अनुपमेय है। मैं इस पत्र के माध्यम से उनको हार्दिक शुभकामना देता हूँ।

— डॉ. कन्हैया लाल वर्मा 'बिन्दु'

हिन्दी विभाग,

रानी दुर्गावती वि०वि०, **जबलपुर**

बुन्देली बसन्त का नया अंक प्राप्त हुआ। इसको पढ़कर मुझे बुन्देली भाषा के सामर्थ्य व उसकी रचना धर्मिता का भान हुआ। हिन्दी विभिन्न बोलियों का समुच्चय है। बोलियों में रचा गया साहित्य हिन्दी को प्राणवायु प्रदान करता है। आज हिन्दीभाषी क्षेत्रों में इस तरह की पत्रिकाओं की बहुत आवश्यकता है। जिससे लोक केन्द्रित रचनाधर्मिता प्रकाश में आए जिससे हिन्दी साहित्य समृद्ध हो।

बुन्देली बसन्त के सम्पादक मण्डल को विषय चयन हेतु मैं साधुवाद प्रदान करता हूँ।

— डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल

शासकीय उत्कृष्ट कन्या स्वशासी महाविद्यालय,

सागर (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड में साहित्यिक पत्रकारिता की अपनी एक परम्परा रही है। उस परम्परा को बुन्देली बसन्त का प्रकाशन निश्चित रूप से महत्वपूर्ण कड़ी है। इस पत्रिका के माध्यम से सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के रचनाकार अपनी रचनाओं का न केवल प्रकाशन कराते है बल्कि उसमें छपकर वे अपने आपको गौरवान्वित महसूस करते हैं।

बुन्देलखण्ड के दूरस्थ अंचलों में बिखरे इतिहास, साहित्य तथा संस्कृति के उन दस्तावेजों को खोजकर प्रकाशित कराया जावे। जो यहाँ की धरोहर है। तो महत्वपूर्ण होगा।

— डॉ. सरोज गुप्ता, हिन्दी विभाग

ग्रा.पो. मनवारा, तह. लौड़ी

जिला छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली साहित्य के दस्तावेज के रूप में बुन्देली बसन्त का प्रकाशन हिन्दी साहित्य जगत के लिए महत्वपूर्ण है। इसके माध्यम से हम जैसे शोधार्थियों के लिए इतिहास, संस्कृति, साहित्य तथा कलाओं से सम्बन्धित महत्वपूर्ण आलेख प्राप्त होते हैं। इसमें प्रकाशित आलेख अपने आप में विश्वसनीय व शुद्धता की कसौटी पर खरे उतरते हैं। लोकअंचल में चल रही परिवर्तन की बयार के बीच बुन्देली रचनात्मकता को इसमें अभिव्यक्ति मिलती है। बुन्देलखण्ड का आज का कवि समसामयिक विषयों पर काफी कुछ लिख रहा है जैसे पर्यावरण असंतुलन, भ्रूण हत्या, क्षेत्र में पनप रहा असंतुलन आदि विषयों पर केन्द्रित कविताएँ पठनीय हैं।

बुन्देली विकास संस्थान द्वारा आयोजित होने वाले बुन्देली उत्सव के माध्यम से अंचल की प्रदर्शनकारी लोक कलाओं को नया जीवन प्राप्त हो रहा है।

— राजेन्द्र सिंह

तीर्थ ओरछा धाम : जहाँ के राजा हैं प्रभु राम

- हरिविष्णु अवस्थी

भगवान रामराजा सरकार का निवास धाम बुन्देलखण्ड में ओरछा (टीकमगढ़) म.प्र. में स्थित है। आचार्य 'केशव' ने 'रसिक प्रिया' ग्रंथ में ओड़छा की स्थिति को निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया है -

नदी बेतवै तीर जँह तीरथ तुंगारन्य।
नगर ओड़छो बहु बसै धरनीतल में धन्य।।

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में बेत्रवती की उत्पत्ति और महात्म्य का उल्लेख है कि भगवान शिव ने देवी पार्वती जी से कहा कि वृत्रासुर ने महागम्भीरा नामक कूप का खनन कर उससे वेत्रवती को प्रवाहित किया था। यह भागीरथी के समान पवित्र है तथा इसके स्तवन एवं दर्शन मात्र से मनुष्य को संसार सागर से मुक्ति प्राप्त होती है।

पद्मपुराण में ही एक कथा है कि चम्पक नरेश विदारुण अत्यन्त क्रूर अत्याचारी था। वह कुष्ठ रोग से ग्रसित था। जंगल में शिकार खेलते समय प्यास लगने पर उसने वेत्रवती का जल पिया। दूसरे दिन उसे कुष्ठ से गलित अंगों में कुछ लाभ का अनुभव हुआ। वेत्रवती के जल का प्रभाव मानकर उसने उसी दिन से वेत्रवती के जल में स्नान करना तथा उसी का जल पीना शुरू कर दिया। अल्प समय में ही उसका कुष्ठ जाता रहा। उसके स्वभाव में परिवर्तन आ गया और वह धर्म पर आस्था रखने लगा। अंत में वह बैकुण्ठवासी हुआ।

पद्म पुराण में ही नहीं, बाराह पुराण में भी वेत्रवती की महिमा का वर्णन करते हुए श्रृंगेश्वर भगवान शिव ने देवताओं को बताया कि भागीरथी एवं वेत्रवती सभी सरिताओं में श्रेष्ठ है। इनके दर्शन और स्मरण करने से भक्त पापमुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं। शिवजी ने कहा कि जो भक्तगण भागीरथी एवं वेत्रवती के जल से मेरा अभिषेक करेंगे उन्हें यज्ञ करने का फल प्राप्त होगा।

आयुर्वेद ग्रंथ 'निघण्टु' में वेत्रवती के जल के गुणों के सम्बन्ध में लिखा है कि -

तत्रान्यादधते जलं सुमधुरं कान्तिप्रदं पुष्टिदं
वृष्य दीपनपाचनं बलकरं बेत्रवती तापिनी।

अर्थात्- वेत्रवती का जल स्वादिष्ट, स्वास्थ्य वर्धक, मीठा, पाचक तथा बल और कांति प्रदान करने वाला है।

आचार्य केशवदास को तो वेत्रवती में ही नर्मदा और गंगा के भी दर्शन होते थे -

ओड़छे तीर तरंगिनि बेतवै ताहि तरै रिपु 'केसव' को है।
अर्जुन बाहु प्रबाह प्रबोधित रेवा ज्यों राजन की रज मोहै।
जोति जगै जमुना सी लगै जग लोचन लालित पाप वियो है।
सूर सुता सुभ संगम तुंग तरंगित गंग सी सोहै।

केशव के समकालीन ओड़छा के ही संस्कृत के महाकवि आचार्य प्रवर मित्र मिश्र भी बेतवा का स्मरण करना नहीं भूले। यथा -

भूभृद्ब क्षोजविक्षोभितनिखिलमतिर्वेत्रवत्याम्बुधारा
मुक्तासाराच्छहाराभ्युपचित सुषमा सिन्धुरेन्द्र प्रचारैः।
पक्ष्माक्षीवैति मोद ध्वज पट कपटा धूत हस्तानिलेन।।

अर्थात् - वेत्रवती की जलधारा मानो मोतियों की माला मानो राजा के वक्षस्थल पर शोभित हिलती हुई शोभित हो रही है, ऐसी कमनीया ओड़छा रूपी कामदेव के सुख को देने वाली रमणी को वीर सिंह नृप ने (उस भूमि को) षोडश वर्ष तक उपभोग किया।

यह तो हुई ओड़छा में प्रवाहित बेत्रवती की महिमा और तुंगारण्य? तुंगारण्य की तो अपनी प्रतिष्ठा ही अलग है। अति पावन और पुनीत। आचार्य केशवदास ने वेत्रवती के निकट स्थित ब्रह्मा जी एवं तुंग ऋषि की तपोभूमि तुंगारण्य का वर्णन निम्नलिखित छंद में किया है। यथा -

कैसोदास ओड़छा के आसपास तीस कोस,
तुंगारन्य नाम वन बैरी कौ अजीत है।
निधि कैसो बन्धुवर बरन ललित बाँध,
बानर बराह बहु भिल्लल कौं अभीत है।
जम की जमाति जी कि जामवंत को सो दल,
महिष सुखद स्वच्छ रिच्छन को मीत है।
अचल अनवरत सिंधु सी सरित जुत,
संभु कैसो जटाजूट परम पुनीत है।

आचार्य प्रवर मित्र मिश्र ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'वीर मित्रोदय' में इसे 'तुंगकम दिव्य तीर्थ' की संज्ञा प्रदान की है।

महाभारत वन पर्व में कथा है कि मन किसी अज्ञात प्रेरणा शक्ति से शक्ति पुत्र पाराशर के आश्रम से वेत्रवती के ही एक दीप तुंगारण्य में आ गया है। यहाँ एक महान मख का आयोजन है। अग्नि एवं सोम नामक यज्ञ के विज्ञानों के दो विशेषज्ञ, आंगिरस तत्व अग्नि के रहस्य को जानने वाले ऋषि अंगिरा का कुल और भार्गव तत्व सोम के ज्ञाता ये दोनों विशिष्ट वैदिक कुल अर्थात् अंगिरा और भृगुकुल मिलकर यज्ञ विस्तार कर रहे हैं। कारण यह है कि -

तुंगकारण्य मासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः
वेदानाध्यायेत तत्र ऋषि सारस्वतः पुरा।
अत्र वेदेषु नष्टेषु मुनेः आंगिरसः सुतः
ओंकारेण यथा न्याय सम्यग् उच्चारितेन ह
वेद यत् पूर्वमभ्यस्तं तत्सर्व समुपस्थितम्।।
पितामहश्च भगवान देवै सह महाद्युतिः
भृगु नियोजया मास याजनाय महाद्युतिम्।।

अर्थात् - पूर्व में यहीं तुंगारण्य में आकर परम संयमी ऋषि सारस्वत ने अन्य ऋषियों को वेदाध्ययन कराया था। कुछ दिनों

बाद उन ऋषियों को वेदों का विस्मरण हो गया। तब अंगिरा ऋषि के वंशज उनके पुत्र (ऋषि) ने उत्तरीय वस्त्र ओढ़कर विधि पूर्वक प्रणव ओमकार का उच्चारण किया। फलस्वरूप उन ऋषियों को विस्मृत वेदों का स्मरण हो गया। पितामह प्रजापति ने इस उपलक्ष्य में आज्ञा देकर भगवान भृगु को यज्ञ सुसम्पन्न कराने यहाँ भेजा। इस प्रकार यह भार्गवों और आंगिरिसों के महामिलन का महापर्व सम्पन्न हो रहा है।

इस प्रकार बेत्रवती और जम्बुला का यह संगम स्थल महाप्रयाग वन गया है। क्योंकि जो ॠग्वेद को जानता है वह सम्पूर्ण पृथ्वी को जानता है, जो यजुर्वेद जानता है वह अंतरिक्ष को जानता है, जो सामवेद को जानता है वह स्वर्गलोक को जानता है और भृगु और अंगिरा ऋषि को जानता है, वह तो सभी लोकों को भली भाँति जानता है। (गोपथ ब्राह्मण पूर्व ५/१३/१६)

पावन पुनीत रूप में प्रतिष्ठित ब्रह्मा एवं तुंग ऋषि की तपोभूमि तुंगारण्य एवं भागीरथी के समान पुण्य सलिला बेत्रवती के दर्शन का लोभ पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक महाप्रभु बल्लभाचार्य भी संवरण नहीं कर सके। इस पावन पुनीत भूमि के दर्शन की अदम्य लालसा लिए हुए वे यहाँ पधारे। पं. दामोदर देव तैलंग कृत 'प्रताप वंशार्णव' के दशम तरंग के पच्चीसवें श्लोक से उन्चासवें श्लोक तक महाप्रभु बल्लभाचार्य के इस भूमि पर पधारने, श्रीमद् भागवत का सप्ताह परायण तथा उज्जैन स्थित सांदीपन आश्रम के तांत्रिक मायावादी विद्वान 'घट सरस्वती' को शास्त्रार्थ में पराजित करने सम्बन्धी विस्तृत विवरण उपलब्ध है।

रुद्र प्रताप ने तुंगारण्य में बेत्रवती एवं जम्बुला के संगम स्थल पर बैशाख सुदी १३ सम्बत् १५८८ वि. (२८ अप्रैल रविवार सन् १५३१ ई.) को नवीन राजधानी ओड़छा नगर का शिलान्यास किया। इसके कुछ माह बाद ही एक सिंह के शिकार से गाय की रक्षा करते हुए वे स्वर्गवासी हो गए।

ज्ञातव्य है कि जिस स्थान पर ओड़छा नगर का शिलान्यास रुद्र प्रताप ने किया, उसका पूर्व नाम गंगापुर था जो कभी परमार शासकों की राजधानी थी। तुंगगिरि और कंचनपुरी भी इसके प्राचीन नाम जनश्रुतियों में सुरक्षित हैं। तुंगगिरि नाम तुंगारण्य के कारण होना संभव हो सकता है। बेत्रवती के तट के एक घाट का नाम अब भी तुंगारन्य घाट के नाम से प्रसिद्ध है। १२ फरवरी सन् १९४८ ई. को राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की अस्थियों का विसर्जन यहाँ हुआ था। कंचनपुर नाम की संभावना की पुष्टि भी बेत्रवती के एक वर्तमान घाट 'कंचना घाट' से होती है। अनुश्रुति है कि नगर की महिलाएँ नित्य प्रति यहाँ स्नान करने आती थीं। वे अपने स्वर्ण-आभूषणों को माँजकर साफ करती थीं तो मनों स्वर्णकण बेत्रवती में समा जाते थे।

ओरछेश रुद्र प्रताप के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र भारतीचंद राजा हुए। अपने राजत्व काल (१५३१-५४ ई.) में उन्होंने ओरछा दुर्ग एवं उसके विशाल परकोटे, राज मंदिर, रानी महल एव दीवानखाना नामक भवनो का निर्माण कराया और कुंडार से अपनी राजधानी पूर्ण रूप से ओड़छा ले आये। पुत्र विहीन दिवंगत होने की स्थिति में उनके अनुज मधुकर शाह जू देव (१५५४-९२ ई.) राजा हुए।

मधुकर शाह जू देव सनातन हिन्दू धर्म के कट्टर अनुयायी एवं भगवान श्रीकृष्ण के उपासक थे। वह मथुरा से राधा-माधव एवं जुगल किशोर के विग्रह ओरछा लाये थे। राजा-माधव के विग्रह किले में प्रतिष्ठित थे एवं जुगल किशोर का मंदिर पृथक से नगर के मध्य निर्मित कराया गया था। पं. हरिराम जी व्यास के साथ वे नित्यप्रति रात्रि में नियमित रूप से जुगल किशोर के दर्शन करने जाते थे। एक बार किसी राजकीय कार्य के कारण उन्हें मंदिर जाने में विलम्ब हो गया और शयन आरती पश्चात् मंदिर के कपाट बंद हो गए। मधुकर शाह बहुत विलम्ब से मंदिर पहुँचे। अपने नित्य नियम के अनुसार उन्होंने पैरों में घुंघरू बाँधे और यह विचार कर कि भगवान की शयन में बाधा न पहुँचे वे मंदिर के पीछे जाकर नृत्य-गायन करने लगे।

चमत्कार हुआ। पूर्वाभिमुख मंदिर का द्वार पश्चिम की ओर हो गया। कपाट स्वतः खुल गए और बाल रूप में भगवान श्री कृष्ण स्वयं उनके साथ नांचने लगे। यह दृश्य देखकर देवताओं ने आकाश से स्वर्ण पुष्पों की वर्षा की। ज्ञातव्य है कि यह स्वर्ण पुष्प अब भी उनके वंशज के कोष में सुरक्षित हैं। राज तिलक के समय ही नवीन राजा को इनका दर्शन एवं स्पर्श करने की परंपरा है।

एक और महत्वपूर्ण घटना के उल्लेख का लोभ संवरण कर पाना संभव नहीं हो पा रहा है। एक बार अकबर ने मधुकर शाह से सिंह की शिकार करने हेतु चलने के लिए कहा। मधुकर शाह ने जाने से यह कहकर इंकार कर दिया कि 'नरसिंह' भगवान के रूप की हम पूजा करते हैं। अस्तु हम सिंह का शिकार नहीं करते। अकबर, इस बात से चिढ़ गया। दूसरे दिन अकबर ने दरबार में यह आदेश प्रसारित किया कि कल से इस शाही दरबार में तिलक लगाकर और कंठी माला धारण कर कोई भी नहीं आयेगा। आज्ञा की अवहेलना दण्डनीय अपराध होगा।

कटट्र सनातनधर्मी मधुकर शाह भला ऐसे आदेश को कैसे मान सकते थे। दूसरे दिन दरबार में एक मात्र मधुकरशाह पूरे ललाट पर तिलक लगाये गंठ में अनेक मालाएँ धारण किये हुए उपस्थित हुए। अकबर मधुकरशाह को देखकर आग बबूला हो गया। तत्कालीन एक कवि ने इस घटना का वर्णन निम्नलिखित छंद में किया है -

हुकुम दियो है पातसाह ने महीपन कौ,
मानों रावराजन प्रमान लेखियतु है।
चन्दन चढ़ायो कहूँ देव-पद वन्दन को,
देहों सिर दाग जहां रेखा रेखियतु है।
सूनों कर गये भाल छोड़-छोड़ कण्ठमाल,
दूसरौ दिनेश तहाँ कौन पैखियतु है।
सोहत टिकैत मधुशाह अनियारो जिमि,
नागन के बीच मनियारौ देखियतु है।

समय और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपने रुख में परिवर्तन कर अकबर ने कहा - ओड़छेश, मैं तो परीक्षा ले रहा था। आप परीक्षा में सफल हुए। आपने अपने ललाट पर जिस प्रकार तिलक लगाया है आज से वह 'मधुकरशाही टीका' के नाम से जाना जायेगा।

मधुकर शाह की राजमहिषी गनेश कुँवरि, काशी नरेश अनुरुद्ध सिंह की पुत्री थी। माता विजय कुँवरि से उन्हें भगवान श्रीराम की उपासना बिरासत के रूप में प्राप्त हुई। महाराजा मधुकर शाह कृष्ण उपासक और महारानी गनेश कुँवरि राम उपासक। इस कारण राजा और रानी के मध्य उपासना को लेकर विवाद होने सम्बन्धी अनेक जनश्रुतियाँ लोककण्ठ में व्याप्त है। किसी विवाद की चर्चा करना उचित न मानते हुए इतना निर्विवाद सत्य है कि महारानी गनेश कुँवरि अयोध्या जी गईं। वहाँ उन्होंने साधना की और जैसी कि लोक मान्यता है - सरयू में उन्हें भगवान श्रीराम का विग्रह प्राप्त हुआ, भगवान ने उनके साथ ओड़छा इन शर्तों पर चलना स्वीकार किया कि १. उनकी अयोध्या से ओड़छा तक की यात्रा केवल पुष्य नक्षत्र में ही होगी। २. जिस स्थान पर विराजमान कर दिया जायेगा वहाँ से अन्य स्थान पर नहीं जाऊँगा। कुछ लोग एक शर्त और बताते हैं कि जहाँ मैं रहूँगा वह स्थान ऊजड़ हो जाएगा।

इस घटना का समाचार जंगल में आग की तरह अयोध्या में फैल गया। साधु-संतों ने संगठित होकर भगवान श्रीराम के ओड़छा जाने का विरोध किया। ऐसा कहा जाता है कि संत गोस्वामी तुलसीदास जी की अध्यक्षता में इस विवाद को सुलझाने हेतु पंचायत हुई। जिसमें यह निर्णय हुआ कि श्रीरामजी को अकेला ही ओड़छा प्रस्थान करने दिया जाए। माता सीता का निवास अयोध्या में ही रहेगा तो श्रीराम को अयोध्या पधारना ही होगा।

उपरोक्त निर्णय अनुसार भगवान श्रीराम के विग्रह के साथ रानी गनेश कुँवरि ने अनेक साधु-संतों सहित श्रावण शुक्ल पंचमी संवत् १६३० वि. को पुष्य-नक्षत्र में अयोध्या से ओड़छा हेतु प्रस्थान किया और ८ माह २७ दिन इस यात्रा में मात्र पुष्य नक्षत्र में ही यात्रा करने के कारण लग गए। चैत्रशुक्ल नवमी (रामनवमी) संवत् १६३१ वि. को श्रीराम जी का आगमन ओड़छा में हुआ। मंदिर का निर्माण पूर्ण होने तक की अवधि हेतु उन्हें महारानी के महल में ही विराजमान कराया गया। और तभी से निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध हो गया-

मधुकर शा महाराज की रानी कुँवरि गनेश।
अवधपुरी से ओड़छा लाईं अवध नरेश।।

ऐसी मान्यता है कि प्रातः से संध्या तक श्रीराम जी का निवास ओड़छा में रहता है और रात्रि में निवास अयोध्या में।

श्रीराम राजा सरकार के दो निवास हैं खास।
दिवस ओड़छा में रहत, रैन अयोध्या वास।

अयोध्यापति श्रीराम के ओड़छा आगमन के साथ ओड़छाधिपति श्री मधुकर शाह जू देव ने अपना राज्य भगवान के श्री चरणों में समर्पित कर दिया। भला एक राज्य के दो अधिपति होना कैसे संभव है। फलस्वरूप भगवान श्रीराम ओड़छा के 'राम राजा सरकार' हो गए। ओड़छेश कार्यवाहक नरेश हो गए।

महाराजा मधुकर शाह एवं महारानी गनेश कुँवरि की निष्ठा के कारण श्री नाभादास जी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'श्री भक्तमाल' में दोनों विभूतियों का उल्लेख किया है। भगवतरसिक जी प्रणीत भक्त नामवली एवं राजा नागरीदास जी रचित 'पद प्रसंगमाला में भी मधुकरशाह के नाम का उल्लेख है। विस्तार भय से विवरण नहीं दिया जा रहा है।'

ओड़छेश मधुकर शाह जू देव, ओड़छा की तुलना विन्द्रावन से करते हुए लिखते हैं -

ओड़छौ वृन्दावन सौ गाँव।
गोबरधन सुख-सील पहरिया जहाँ चरत तृन गाय।
जिनकी पद-रज उड़त शीस पर मुक्त-मुक्त हो जाँय।।
सप्तधार मिल बहत वैत्रवे जमना जल उनमान।
नारी नर सब होत पवित्र कर कर कें स्नान।
सो थल तुंगारण्य बखानों ब्रह्मा बेदन गायौ।
सो थल दियौ नृपति मधुकर कौ श्री स्वामी हरिदास बतायौ।।

मधुकर शाह जू देव के सुपुत्र ओड़छेश वीर सिंह जू देव 'प्रथम' भी अपने पिता के समान ही धर्म परायण थे। उन्होंने मथुरा में कृष्ण जन्मभूमि पर मित्र मिश्र की देखरेख में तैतीस लाख रुपया व्यय करके 'केशवराय' के भव्य मन्दिर का निर्माण कराया था। मंदिर में केशव देव की प्राण प्रतिष्ठा के साथ उन्होंने यमुना के विश्राम घाट पर ८१ मन स्वर्ण का तुलादान किया था। विश्रामघाट पर प्रतीक रूप में अब भी तुला बनी हुई है। तत्कालीन किसी कवि ने इस दान का वर्णन निम्नलिखित दोहे में किया है-

बलि बोई कीरति जमी, कर्ण करी दो पात।
सींची बिरसिंघ देव ने, जब जानी कुम्हलात।।

वीरसिंह जू देव प्रथम धर्म परायण होने के साथ ही साथ, कुशल, नीतिज्ञ, न्यायप्रिय, बुन्देला स्थापत्य के जनक, साहित्यकारों, कलाकारों के आश्रय दाता भी थे। उनके दरबार के राजकवि हिन्दी भाषा के प्रथमाचार्य पं. केशवदास मिश्र ने तत्कालीन ओड़छा का बहुत सुन्दर शब्द चित्र प्रस्तुत किया है। यथा -

नदी बेवतै-तीर जहँ, तीरथ तुंगारन्य।
नगर ओड़छो बहु बसै, धरनीतल में धन्य।
आश्रम चारि बसे जहाँ, चारि बर्न शुभ कर्म।
जप, तप, विद्या वेद-विधि, सबै बढ़े धन धर्म।
दिन प्रति जहँ दूनो लहै, जहाँ दया अरु दान।
एक तहाँ केसव सुकवि, जानत सकल जहान।
अपने अपने धर्म तहँ, सबै सदा सुखकारि।
जासो देस विदेस के, रहे सबै नृप हारि।।

तथा - चहुँ भाग बाग बन मानहु सघन घन,
सोभा की सी शाला, हंसमाला सी सरितबर।

ऊँचे ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु,
कौसिक की कीनी गंगा खेलत तरल तर।
आपने सुखनि आगे निंदत नरिंद और,
घर घर देखियत देवता से नारि-नर।
केसोदास त्रास जहाँ केवल अदिस्ट ही को,
वारियै नगर और ओड़छे नगर पर।

तत्कालीन संस्कृताचार्य मित्र मिश्र ने 'आनन्दकन्द चम्पू' ग्रंथ के अष्टम उल्लास में श्लोक संख्या ५१ से ६४ तक में ओरछा का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। एक श्लोक प्रस्तुत है -

उत्तुगैः सौध सवैः स्फटिकसुविशदैर्द्योतते द्यौरिवोद्यतारेन्दु -
र्भूपतीन्द्रोरभिमतफल भूरौड़छा राजधानी। पद्मायाः सद्म
पद्मान्तिकगत विशद ब्रेत्रवत्याः प्रवाहं तत्यान्तप्राप्तनाहं
कलयति तपसां यः परीणाहवाही।।५५।।

अर्थात् - ओड़छा नगरी उच्चातिउच्च सौध शिखरों एवं स्फटिक मणि पाषाणों से विरचित पृथ्वी पर स्वर्गोपम वैभवशाली बन रही है। लक्ष्मी की निवास भूमि बेत्रवती की जलधारा मानो तपस्याओं को फल प्रदान कर प्रवाहित हो रही है।

वीर सिंह जू देव के राजकुमार हरदौल, जिन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता जुझार सिंह ओड़छेश को, अपनी मातृतुल्य भावी के सतीत्व की प्रतीति कराने हेतु विषपान कर अपना जीवन होम कर दिया। लोक देवता के रूप में जिनका समस्त बुन्देलखण्ड में ही नहीं देश के अन्य भागों में पूज्यनीय स्थान है। एक कवि के शब्दों में -

धन्य ओड़छा जहाँ भये, धर्मवीर हरदौल।
दिये प्राण सतधर्म पै, पाल वीर व्रतकौल।।
धर्मवीर हरदौल जू, अजहुँ तुम्हारे गीत।
हैं घर-घर नित गावतीं, समुझि सनातन रीत।।

बुन्देली गरिमा का सजीव स्थल, वेत्रवती एवं जम्बुला का संगम, तुंगारण्य में स्थित ओरछा, रामराजा सरकार के विराजामन होने से परम धाम हो गया। इसकी पावनता श्रेष्ठता, समपन्नता, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, शौर्य, साधना, स्थापत्यकला सम्बन्धी वैभव ऐसा समृद्ध और सम्पन्न रहा है कि जिस पर कोई भी युग कोई भी काल गर्व एवं गौरव का अनुभव कर सकता है।

बारह कोस के क्षेत्र में बसे ओरछा में बेत्रवती के तट पर निर्मित दुर्ग, गगनचुम्बी भव्य मंदिरों, राजप्रासादों, भव्य भवनों के ध्वंसावशेषों, तोरणद्वारों, आकर्षक समाधियों उनका स्थापत्य, चित्रांकन, इनके निर्माताओं की सुरुचि सम्पन्नता के प्रतीक रूप में विद्यमान इस मध्यकालीन श्रेष्ठ नगर आज भी देशी ही नहीं विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। ओड़छा की गणना देश के एक श्रेष्ठ तीर्थ के साथ ही साथ एक सुप्रसिद्ध पर्यटक स्थल के रूप में होती है।

अंत में श्री गीतेश उरई की निम्नलिखित, ओड़छा के प्रति भाव विगलित पंक्तियाँ उद्धृणीय है -

चरण चलैं जो मग, ओड़छा नगर जाएँ
कर केलि करैं बेतवा की लहरान में।
शीश नवै रामजू के मंदिर की देहरी पै,
वाणी वर होय सियाराम के गुणगान में।।
नयन सुखी हो, रघुनाथ रूप दरस में,
श्रवण सुखी हो सतसंग रस पान में।
मन मधुकर मंजु मोद में मगन रहै,
रामराजा के सुचरणारविन्द ध्यान में।।

ओड़छाधीश रामराजा सरकार के चरण कमलों में शत-शत् नमन, शत्-शत् वन्दन। भगवान के रूप में श्री राम देश-विदेश में विराजामन हैं, किन्तु देश में एक मात्र है जहाँ श्रीराम 'राजा' के रूप में विराजमान हैं।

– किले का मैदान, टीकमगढ़ (म.प्र.)

गाँव की छटा

- रतिभानु तिवारी 'कंज'

गाँव हमाए सुरग लोक से ओजू सांसी मानों।
बिरछन तरें हरी काँदी पै परतन लगै सुहानों।।
भुका भुके, में चलै बैर बिजना सौ आन डुलाबै।
ओस इतै सबरे खेतन में मोती से बगराबै।
सगुन चिरइया हारन में नित गाय मधुर परभाती।
ऊषा उठकें बड़े भोर सूरज खों देवै पाती।।
उजयारौ सौ हौबै जब तब रमुआं जाबै हारै।
देख उरैयाँ रूपा भौजी अपनों काम संवारै।।
बिन्नू के संग चकिया औरै बन्न-बन्न कौ गाबै।
करै उसार बगर कौ उठतन गइयाँ ढीलन जाबै।।
उयै आउतन देख सार में बच्छा बंदौ रमानों।
चित कबरा बैलन की जोड़ी है रमुआ कौ गानौ।।
ढीली गइयां कड़ीं बायरें कड़तन्न भव उजयारौ।
ऐसें लगतइ आसमान से उतर परौ ध्रुवतारौ।।
उसनींदे से सोसें मनमें हो गई अब लौलइयां।
ईसें फैल गई चंदा की नोनी सेत जुनइया।।
अरुनाई लख कएँ कोउ सूरज कौ भयौ पसारौ।
ईसें धरती के आँचर में दुकन लगौ अंदयारौ।।
जे स्वभाव कीं, भोरीं भारीं, आड़पेंच न जानें।
रमुआं काम करै खेतन में उतइ मड़इया तानें।।
बिरचुन मठा लटा कौ रौजउं, उठतन करें कलेवा।
बेर मकोरा और मकुइयाँ, गुलगुच मउवा मेवा।।
फिल्मी गीत इनैं न भावैं, लोकगीत नित गावें।
सैरौ और दिवारी सुनबे इनके मन ललचाबें।।
अदबइयां पँचा पैरें जे लगें देखतन नोंनें।
जैसें बिधि ने रूप ढारदय, गोरे बरन सलोनें।।
प्यारी छटा कंज गांबुन की जियै देख सब हरषें।
इतै बास करबे सुरपति जू सुरग लोक में तरसें।।

– नैगुवाँ, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड में रकत की पुतरियाँ

- डॉ. काशीप्रसाद त्रिपाठी

बुन्देलखण्ड, विन्ध्येलखण्ड उर्फ विन्ध्येला का अपभ्रंश शब्द है। मूल रूप में इसे विन्ध्येला ही कहा जाता था। विन्ध्याचल पर्वत की श्रेणियाँ, पहाड़, पहाड़ियाँ एवं टौरियाँ जितने भूभाग में विखरी फैली हुई थीं, उसे ही विन्ध्येला कहा जाता था। यह विन्ध्येला शब्द ही बुन्देली बोली में बुन्देलखण्ड कहा जाने लगा था।

विन्ध्याचल पर्वत सबसे प्राचीन पर्वत है। समूचा विन्ध्यक्षेत्र कठोर से कठोर तेलिया पत्थर (ग्रेनाइट) से भरा पड़ा है। वैसे भौगोलिक रूप में भारत के चार प्राकृतिक भागों में यह तीसरा मध्य का पठारी भूभाग है। इसका ढाल दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व को है। पहाड़-पहाड़ियाँ भी दक्षिण से उत्तर की ओर हाथ की उंगलियों की भाँति लम्बाकार फैली पसरी हैं। कहीं कहीं गोलाकार ऊँची, बड़ी-छोटी टौरियाँ हैं। तात्पर्य कि समूचा विन्ध्यक्षेत्र पहाड़-पहाड़ियों और टौरियों वाला ऊँचा-नीचा वनाच्छादित ढालू क्षेत्र रहा है। टौरियों, पहाड़ियों और पहाड़ों की तलहटी से वर्षाती धरातलीय पानी के नदी-नाले प्रवाहित हैं। वैसे दक्षिणी बुन्देलखण्ड तो बिल्कुल ही पहाड़ी पथरीला है।

लिखित इतिहास के आरंभकाल से पूर्व अथवा यों मानिये कि आर्य सभ्यता से बहुत पूर्व को प्रागैतिहासिक काल अथवा पाषाण काल कहा गया है जो बहुत लंबे समय से चलता आने वाला काल था। पाषाण काल को भी तीन काल खंडों में विभक्त माना गया है - १. पूर्व पाषाण काल, २. मध्य पाषाण काल एवं ३. उत्तर पाषाण काल। पुरातत्व वेत्ताओं ने इसका काल निर्धारण भी किया है, कि पूर्व पाषाण काल (पैलियोलिथिक) ५००००० से ८००० ईसा पूर्व तक, मध्य पाषाण काल (मैसोलिथिक) ८००० से ४००० ईसा पूर्व तक एवं उत्तर पाषाण काल, (कैलिकोलिथिक) ४००० ई.पू से ताम्र पाषाण एवं लिखित इतिहास तक।

यों भी कहा जा सकता है कि मानवीय सभ्यता संस्कृति के प्रादुर्भाव के पूर्व का युग जिसमें आदि वनमानुस सघन वनों में एवं पहाड़ों की गुफाओं में रहता था। पत्थर के नुकीले एवं चीप (पटिया) से, फलकदार औजारों हथियारों से शिकार किया करता था। वन्य फल-फूल एवं वन्य पशुओं का कच्चा मांस खाता था। वन्य पशुओं की तरह ही नंगा रहा करता था। हम आप उसे वन मानुस कह सकते हैं जो पहाड़ों, पत्थरों की चुलों (गुफाओं) में रहता था, पहाड़ी झरनों अथवा नदी की दहारों-भरकों का पानी पीता था, नदियों में प्राप्त नुकीले एवं फलकदार चौड़े पत्थरों को पैना और धारदार बना कर, औजारों के रूप में प्रयोग करता था। ऐसे लिखित इतिहास के पूर्व के लाखों वर्षों के लम्बे समय को पाषाण काल कहा गया है।

दक्षिणी बुन्देलखण्ड के वनाच्छादित घनघोर जंगलों में से बहते नदी-नालों से संलग्न पहाड़ों की गुफाओं में, जहाँ पानी के स्थाई जल स्रोत होते थे, आदि मानव रहते थे। चंदेरी क्षेत्र में, बेतवा, उर्वशी घोड़ा पछाड़ एवं सूकर नदियों से संलग्न पहाड़ों में लगभग ५० गुफायें हैं, जिनमें मढ़ी गुफा, चदैरी, चिरौली, आमखो एवं उर्वशी गुफायें विशेष प्रसिद्ध हैं। यहाँ के पहाड़ों की गुफाओं में गुफा-मानव रहते थे, जिनमें मानव, हिरण, सुअर, बंदर, बैल एवं पक्षियों के लाल, गेरू, सफेद एवं हरे रंग के चित्र बने हुये हैं। इन चित्रों को लोग लिखी दातों की पुतरियाँ कहते हैं।

प्रो. रामेश्वर सिंह ने बेतवा घाटी का सर्वेक्षण कर बतलाया था कि चँदेरी क्षेत्र की पहाड़ी गुफाओं में पाषाण कालीन मानव रहते थे, जो पत्थर के औजारों का प्रयोग शिकार करने में किया करते थे। डॉ. एच.डी. सांकलिया ने बतलाया है कि ललितपुर के खुलीपुरा में ग्रेनाइट पत्थर के औजार बनाने की एक उद्योगशाला थी, जिनका उपयोग बेतवा कछारिय क्षेत्र की पहाड़ियों की गुफाओं में रहने वाला गुफा-मानव करता था।

टीकमगढ़ जिला के धसान कछारीय क्षेत्र के पहाड़ों में गुफायें हैं जिनमें धसान के किनारे बड़ागाँव के फलकोही पहाड़ की गुफा, जतारा क्षेत्र के बैदपुर पहाड़ की गुफा, अब्दापीर पहाड़ की गुफा, झिनगुवाँ में विन्ध्यवासिनी देवी की पहाड़ी की गुफा (चुल), बल्देवगढ़ के बड़ा पहाड़ की चुल (सिद्ध गुफा), जिनागढ़ पहाड़ की गुफा (चुल), इमलिया पहाड़ की गुफा, अहार में सिद्धन की गुफा एवं परशुवां में नाला पार पहाड़ी की गुफा। इन गुफाओं का अभी तक सर्वेक्षण नहीं हुआ। इन गुफाओं में वनमानुस पाषाण काल में रहते रहे, परन्तु गुफाओं के पास स्थाई जल स्रोत न होने से, वे घनघोर वनाच्छादित क्षेत्र में स्थाई जल स्रोतों के पास अर्थात केन नदी के कछारीय अंचल में चल गये रहे होंगे क्योंकि टीकमगढ़ जिले के धसान के कछारीय क्षेत्र की गुफायें वर्षाती नालों के पास ही हैं। फिर जहाँ जल नहीं वहाँ मानव कैसे जीवित रहता?

झांसी के मऊरानीपुर के पास लहचूरा धसान नदी के तट पर पहाड़ी क्षेत्र है। इस क्षेत्र में चापर, चापिंग एवं पैबुल प्राप्त हुये हैं जो स्फटिक पत्थर के बने पाषाणकालीन हैं।

खजुराहो के जतकारी में एवं आसपास के बैनीगंज, सकेरा ग्राम में पाषाणकालीन औजारों के अवशेष प्राप्त हुये हैं। सर्वेक्षण में यहाँ माइक्रोलिथ उद्योगशाला होने के अवशेष मिले हुये हैं।

छतरपुर जिले में अनेक गुफायें (शैलाश्रय) हैं। जिनमें देवरा पिपरा, शाहगढ़ (बिजावर) प्रमुख हैं। इन गुफाओं में लाल गेरू रंग के मानव, वन्य प्राणियों एवं प्रस्तर औजारों के रेखाचित्र हैं। इन्हें स्थानीय लोग 'रकत की पुतरियाँ' कहते हैं। छतरपुर जिला के बड़ामलहरा के पहाड़ में, मनिया पहाड़ में, बारीगढ़ के पहाड़ में भी गुफायें हैं, जिन्हें ऐतिहासिक काल में देवालयीन गुफाओं में बदल दिया गया है।

बांदा क्षेत्र का पश्चिमी भूभाग पहाड़ी पठारी है। यहाँ कोल,

भील, कौंदर जैसे वनवासी आज भी रहते हैं। पठा क्षेत्र में वे ही बसे हुये हैं। यहाँ की पहाड़ी गुफाओ में भी रकत की लाल पुतरियाँ हैं। यह लाल पुतरियाँ वन्य पशुओं एवं मानवों के रेखा चित्रों के रूप में है। लाल पुतरियाँ सरहट, मकड़ी, मझावन, अमवा, उल्दन, बरगढ़, करिया कुण्ड और करपटिया ग्रामों की गुफाओं में हैं। यहाँ के पाषाणकालीन गुफ्रा-मानव पत्थर के औजारों का उपयोग करते थे।

डॉ. पी.सी. पंत ने बाँदा परिक्षेत्र एवं यमुना घाटी का सर्वेक्षण किया था जिसमें गोपीपुर एवं निही में गुफा मानव द्वारा प्रयोग में लिये जाने वाले पत्थर के औजारों के बनने की उद्योगशाला होने की पुष्टि हुई है। यहाँ हस्त कुठार अधिक बनते थे।

बाँदा जिला के अन्तर्गत, यमुना नदी के तटीय ग्राम बरियारी के आसपास खुदाई में पाषाणकालीन औजारों के अवशेष मिले जिनमें हस्तकुठार, क्लीपर्स अधिक पाये गये। नरैनी के पास रामचंद्र पर्वत पर पाषाण के औजार बनाने की औद्योगिक शाला थी। सिद्धपुर (बांदा) में भी पाषाणकाल के औजार मिले हैं। कर्बी के लोधवारा में भी पाषाणकाल के (प्रस्तरयुगीन) औजार प्राप्त हुये हैं। कालिंजर के पास भी एक उद्योगशाला थी जिसमें नुकीले औजार बनते थे।

सागर परिक्षेत्र में आवचंद की गुफाओं का सर्वेक्षण सन् १९५५ ई. में डॉ. के.डी. बाजपेई ने किया था। आवचंद सागर से ३५ किलोमीटर दूर, सागर गढ़ाकोटा बस मार्ग पर, ३ किलोमीटर घने जंगलों में सुनार की सहायक नदी गंधारी नदी के तट पर है। यहाँ १०-१२ शैलाश्रय हैं, जिनमें लाल, गेरू सफेद, कत्थई एवं काले रंग के चित्र अन्दर की शिलाओं पर बने हुये हैं। यह चित्र मानव, मृग, सिंह, श्वान, घोड़ा, हाथी, बारहसिंघा, मोर एवं सारस आदि के हैं। आवचंद की गुफाओं में आयुधीय चित्र भी हैं।

आबचन्द की गुफायें ७ समूहों में विभक्त हैं - प्रथम मंदिर समूह गुफा - इसकी एक गुफा को लोगों ने शिव मंदिर बना लिया है, दूसरा भदभदा शैलगृह, तीसरा रपटा घाट, चौथा ढबुआ घाट, पाचवाँ इमली करार, छटवां इमला घाट एवं सातवां शैल समूह गढ़वात घाट। आवचंद की गुफाओं के चित्रों को मध्य पाषाण एवं उत्तर पाषाणकालीन माना गया है।

सागर परिक्षेत्र में ही सागर-धामौनी मार्ग पर स्थित मड़ैया गौंड़ ग्राम के पाड़र खोड़ा पहाड़ में दो गुफायें हैं। प्रथम में लोगों ने सिद्ध बाबा का मंदिर बना लिया है। दूसरी पुतरियों की खोह कही जाती है। इसमें लाल एवं गेरुआ रंग के चित्र हैं, जो वन्य पशुओं के हैं।

पिपरई की गुफा - सागर-रैहली मार्ग पर बरौदा से ८ कि. मी. की दूरी पर पिपरई है। यहाँ के पहाड़ में गुफा है, जिसमें रकत से बनी हुई लाल पुतरियाँ हैं जो वन्य पशुओं की हैं।

तार गुवारी की गुफा - यह सागर-रैहली बस मार्ग पर स्थित बरौदा ग्राम से १२-१३ किलोमीटर की दूरी पर घने जंगल में तारगुवारी पहाड़ में गुफा है, जिसमें घोड़े एवं बारहसिंघा के लाल रंग के चित्र हैं।

कड़ता की गुफा - कड़ता ग्राम सागर-रैहली मार्ग पर है। यहाँ के नाले से संलग्न पहाड़ में गुफायें हैं जिनमें हिरण, मोर आदि के लाल गेरुआ रंग के चित्र हैं। एक चित्र में नग्न आदमी भाला से हिरण को मारता हुआ बना है। कड़ता गुफा की छतशिला में भी चित्र हैं।

पथरी कोटा की गुफा - दलपतपुर से नैनागिर जैन तीर्थ क्षेत्र जाने वाले मार्ग से एक रास्ता पथरी कोटा को जाता है पथरी कोटा पहाड़ की गुफा में लाल गेरु रंग की पुतरियाँ (चित्र) बने हैं जो वन्य पशुओं की हैं।

खानपुर की गुफा - सागर-बीना मार्ग के बरखेड़ी गाम से ५ कि.मी. की दूरी पर खानपुर ग्राम है। यहाँ के पहाड़ की गुफा में लाल रंग के चित्र हैं जो वन्य पशुओं के हैं।

राधाकुमुद मुकर्जी ने अपने ग्रंथ 'हिन्दू सभ्यता' में उल्लेख किया है कि 'प्रागैतिहास का गुफा मानव पत्थरों के औजारों से पशुओं का शिकार किया करते थे जो अनगढ़ होते थे। उन्हें घिस घिस कर चिकना, पैना कर नुकीला बना लिया करते थे। वे शिकार के खून से गुफाओं की शिलाओं पर चित्र बना दिया करते थे जो लाल गेरू रंग के दिखते हैं।

राय कृष्णदास ने अपने ग्रंथ 'भारतीय मूर्तिकला में प्रागैतिहासिक काल को १२वीं शदी से दूसरी शताब्दी तक का मानते हुये लिखा है कि यह प्रस्तर युग था, जिसमें गुफा मानव केवल अनगढ़ पत्थर के औजार वन्य पशुओं के शिकार करने के काम में लाता था।'

प्रागैतिहासिकालीन मानव नदियों से संलग्न पहाड़ों की गुफाओं में रहा करता था, जो नंगा ही रहता था। गुफा से संलग्न नदी की दहारों अथवा झिरनों का पानी पीता था। जब वन्य पशु गुफा से संलग्न दहारों में पानी पीने आता था तब उसे पत्थर के औजारों से मार कर अथवा घायल कर उसे दौड़ा दौड़ा कर पत्थरों के नुकीले पैने औजारों से मार डालते थे। फिर गुफा में ले जाकर, फलकदार पैने पत्थर के औजारों से काट कर कच्चा मांस ही खा लेता था। उस समय न आग थी न वस्त्र। माँस खाकर वह मोद में आकर, वन्य पशुओं, मानव और पत्थर के औजारों के, पशुओं के रकत से ही चित्र बना दिया करता था।

पाषाण युगीन गुफा मानव ने अथवा जिसे हम वनमानुस भी कह सकते हैं, अपने शिकार के रक्त से जो रेखा चित्र, आकृतियाँ गुफाओं की शिलाओं पर बनाये थे, वह हजारों लाखों वर्षो बाद, आज भी गुफाओं की शिलाओं पर बने हुये हैं। जो गुफा मानव द्वारा निर्मित संभवतः चित्रशैली के इतिहास में प्रथम हों। परन्तु इन रकत की पुतरियों से, जो बुन्दलखण्ड के दक्षिणी भाग के पहाड़ों की गुफाओं में हैं, सपष्ट तौर पर सिद्ध होता है कि यहाँ गुफा मानव रहते थे। जो इतिहास काल में, आग के अन्वेषण के पश्चात्, गुफायें त्याग कर घने जंगलों में विचरण करते हुये, वनवासी, आदिवासी, कोल, भील, कौंदर, गौड़ आदि अनेक नामों से आज भी आदिवासी-वनवासी हैं। गुफाओं की 'रकत की पुतरियाँ' कहती हैं कि आदिवासी, वनवासी बुन्देलेखण्ड का मूल निवासी मानव था जो इतिहास काल में सिमिट सिमिट कर घने जंगलों का वनवासी बन गया है।

- भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़

पैली बेटी धन की पेटी

(कन्या भ्रूण हत्या पर आधारित)

- सुधा रावत 'क्षमा'

पात्र परिचय -

कल्लू	-	पुरुष सूत्रधार
कजरी	-	महिला सूत्रधार
अम्मा	-	सासू माँ
लल्लू	-	बेटा
कमली	-	बहू (लल्लू की पत्नी)
सल्लो	-	पड़ोसन (अम्मा की सहेली)
राधा	-	लल्लू की बहन
डॉक्टर	-	डॉ. साहब

(लघु भूमिकाओं में कुछ महमान कलाकार)
इन्सपेक्टर, राधा की पत्नी, झल्लो का पुत्र

(पर्दा उठता है)

(कल्लू व कजरी दोनों का अलग-अलग दिशाओं से एक साथ प्रवेश। दोनों हाथ जोड़कर दर्शकों का अभिवादन करते हैं)

दोनों - सकरी-सकरी गैल, गैल में बगरी बजरी सी।
राम-राम सबरे पंचन खों कल्लू-कजरी की।।

कजरी- सुनो-सुनो भैया सुनो, सुनों-सुनों बैना।
कान खोल कें बैठियो, कै झपकें न नैना।।

कल्लू - एक कथा तुमसें कहें, सो सुनों लगा के कान।
बड़े मजे की बात है, पै हुइयो न हैरान।।

कजरी- एक गाँव की गली, गली में कोने बारो घर।
सास-बहू लड़बे दर्तीं, नईं काऊ कौ डर।।

लोकगीत- जीरे बगर गये रेत में चंदन के दौना।
सास-बहू की न्याव भई, चंदन के दौना।।

(हाथ में सब्जी का थैला लेकर अम्मा प्रवेश करती हैं और दरबाजे से ही चिल्लाती हैं)

अम्मा -कमली अरी ओ कमली, काँ मर गई? पौंड़ी हुइयें महरानी जू। और कामईं का है? खाओ और परौ। काँ गईं का नईं गईं? कमलीSSS

कमली -आ रई अम्मा (भागती हुई आती है और थैला हाथ से लेने लगती है)

अम्मा -का कर रईं ती? सुनाई नईं देत का? डेढ़ घण्टा से चिल्ला रये, बैरीं हो गई का?

कमली -अम्मा वो SS थक गये तो, परे सो झपकी लग गई ती।

अम्मा -देख लो हमने कई ती कै पौंड़ी हुइयें महरानी जू माने असास हो रये ते रानी जू के!

(कमली बिना कुछ कहे थैला लेकर अन्दर जाने लगती है, तभी उसे चक्कर सा आता है, थैला नीचे रखकर वह झूमते हुये बैठ जाती है। यह देख कर अम्मा दौड़ कर उसके पास पहुँचती है)

अम्मा -अरे-अरे का भओ? कछु खाओ-पियो है कै नईं अरे इन आज-काल की मोड़ियन के संगै जई तौ मुसीबत हैं, खाती-पीतीं कछु हैं नइयाँ। चिरइया सौ चुन लओ और हो गओ। उठो-उठो, लो, ठीक हौ कै नईं?

कमली -हओ अब तौ तनक ठीक हैं। अम्मा ऐंसई तौ दुपारी के भी चक्कर आ गओ तो, जबई तो हम तनक पर आ रये थे।

अम्मा -अरे तौ ऐसो पैलें काय नईं बताओ। चलो आराम करौ। और हाँ जा तौ बताओ कै जौ लल्लू काँ चलो गओ कछु बता कें गओ कै नईं?

कमली -अम्मा वे अस्पतालै गये, हमाई रिपोर्ट लैबे!

(लल्लू खुशी-खुशी आता है।)

लल्लू - अम्मा ओ अम्मा काँ हौ तुम? अम् S S

अम्मा -अरे जे तौ ठाँड़े तुमाये सामू दिखात नइयाँ का इकाऊ अंदरया गये, का भओ? तुम तौ बहू की रिपोर्ट लैबे गये ते?

लल्लू - अम्मा वो - वो अम्SSमा (हकला कर शर्माते हुए)

अम्मा -अरे मिमया काय खों रओ, बोल तौ का बात है?

लल्लू - अम्मा तुम दादी बनवे बारी हौ (जल्दी से कहता)

अम्मा -दादी, का कै रये? फिर कऊं कइयौ। अरे वा मोरे राम जी का खबर सुनाई तुमने, जी जुड़ा गओ

(हाथ जोड़ कर ईश्वर का धन्यवाद करती है)

जाओ लल्लू सवा रुपइया कौ भोग ले आओ अब्बई चढ़ाउने। (कजरी कल्लू का प्रवेश)

कजरी- अम्मा ने जैसई सुनी शिशु आवन की बात।
बौरा कें नाचन लगी, मटका-मटका हाँत।।

कल्लू - बेसुध सी अम्मा भई, फूली नईं समाय।
लेय बलइयाँ बहू की, नाची-नाची जाय।।

कजरी -काय कल्लू जौ अच्छो भओ?
चुप न बैठो कछु तौ कओ
भाग खुले कमली के माने?

कल्लू - हम का जाने ईसुर जाने।

कजरी -का भओ चलौ देखिये आँगें।
भलो होय विधना सें माँगें।।

कल्लू - बैठें सबई कोऊ न भागें।
देखौ का भओ आँगे-आँगे।।

(कल्लू कजरी जाते हैं और झल्लो का प्रवेश होता है)

झल्लो -कल्लू की अम्मा, ओ कल्लू की अम्मा? काँ हौ अरे काआ कर रईं? आज काल तौ दरसई नई हो रये।

अम्मा -(हंसकर) झल्लो! अरे आओ- आओ बैठो का बतायें ई कमली के मारें कऊँ निकरई नईं पा रये।

झल्लो -अरे काय! का भओ कमली खों? (आश्चर्य से)

अम्मा -(फुसफुसा कर) अरे बच्चा होवे बारो है।

झल्लो -अरे तौ जा तौ खुशी खबर है। जा कओ कै आजी बनबे बारी हौ? जबई आ फूलीं नईं समा रईं।

अम्मा -अरे तौ तुम काय रूखो खातीं। हमसें पैलें तौ तुमाओ हक्क है आजी बनवे कौ

झल्लो -(हँस कर) - हओ काय नईं? वौ तौ हैई। अब देखौ कमली कें का होत? हमाई रज्जो के तौ तीन-तीन मोड़ी हो गईं। हमाये तौ खपरा बिक जानें उनके ब्याओ में।

अम्मा -साँसऊँ झल्लो तुमने तौ गजबई करो। अबकी बेर तौ रज्जो कौ अपरेशन कराई दइयौ।

झल्लो -(पास आकर फुसफुसा कर) एक बार पतो भर पर जाये कै होवे वारो मौड़ा-मोड़ी का है? फिर देखौ तुम।

अम्मा -अकेलें जौ पतौ परहै कैसें?

झल्लो -सोनोग्राफी सें, और कैसें।

अम्मा -अगर फिर मौड़ी भई तौ?

झल्लो -(हाथ के इशारे से गर्दन के पास ले जाकर खिच्च कहती है।) लल्लू की अम्मा और कौनऊँ उपाय नइयाँ तीन-तीन तौ पैलेइ सें हैं। एक और आ गई तौ का करहैं? एक और आफत हमें नईं चानें।

अम्मा -कैसीं बातें कर रईं झल्लो, मौड़ा-मोड़ी तो भगवान की देन होत है।

झल्लो -हओ एक दो होंय तौ! अगर चार-चार हो गये सो श्राप हो जात! काँ सें खुवायें जाँड़ भरे खों। हमाई मानो तौ तुम भी कमली की जाँच करा लो।

अम्मा -जाँच (आश्चर्य से)

झल्लो -अब बड़ी देर हो गई हम तौ चलत हैं।

(झल्लो जाती है और कल्लू कजरी प्रवेश करते हैं।)

कजरी -झल्लो गई पै छोड़ गई, पाछें कैऊ सबाल।
अम्मा पर गई सोच में, हाल भये बेहाल।।

कल्लू - जो कऊँ मोड़ा न भओ, कैसें चलहै काम।
कौन चलाहै बाद में, उन पुरखन कौ नाम।।

कजरी -जो कऊँ मोड़ी आ गई, जागी किस्मत सोय।
कुटुम कबीला न बड़े, तारन-तरन न होय।।

दोनों साथ में - चलौ देखिये का भओ आँगे।।
भलो होय विधना सें माँगें।।

(और चले जाते हैं।)

अम्मा -कमली ओ बेटा कमली?

कमली -हाँ अम्मा

अम्मा -अरे जब देखौ तब कामईं काम में लगी रहती हौ तनक हमाये ऐंगर सोई बैठो (कमली आकर बैठ जाती है) अरे तुम साँचियई कै रईं ती कै जादाँ मौड़ा-मौड़ी अच्छे नईं होत। अब रज्जो की हालत देखो। हम तो एक संतान के बादई लल्लू कौ आपरेशन करा दैहैं।

कमली -(खुश होकर)- अम्मा आप कित्ती अच्छी हैं कितनी समझदारी की बातें करती हौ।

अम्मा -हैं, हैं, हैं, (हँसते हुए), हम सोचत हैं कै काय न तुमाई जाँच करा लैवें।

कमली -(चौंककर) जाँच कैसी जाँच?

अम्मा -अरे झल्लौ बता रई ती कै सोनोग्राफी सें जौ पतो पर जैहै कै तुमाये गर्भ में पल रओ शिशु मोड़ा है कै मोड़ी। मोड़ा होय तौ ठीक है, नईतर फिर आँगे देख हैं।

कमली -जौ का कै रई अम्मा? ई सें बड़ो दुनियाँ में कौनऊँ पाप नइयाँ और हम अपने जियत भये जौ पाप न होन दैहैं।

अम्मा -अच्छा ई में पाप-पुन्न की का बात है? जाँचई करा वे की तौ कै रये। और हाँ कान खोल के सुन लो अगर तुमने जांच नई कराई तो तुम ई घर में ना रै पाहो।

कमली -देखो अम्मा, जा तो सीधी-सीधी भ्रूण हत्या है। तुमे पतो है कन्या भ्रूण हत्या एक अपराध है और भ्रूण हत्या करवाबे बारे खों ५ साल की सजा और एक लाख रुपइया तक जुर्माना हो सकत है।

अम्मा -तुम तौ बात कौ बतंगड़ बनाउती हो। हम का भ्रूण हत्या की कै रये हम तौ सोनोग्राफी करवावे की कै रये।

कमली -सोनोग्राफी करवावे वारे खो भी उतनी सजा मिलत है जितनी भ्रूण हत्या करवावे वाले खों। समझीं।

अम्मा -अच्छा तो अब अपने कुल खों चलाबे के लाने लरका की चाहना करबो भी पाप है? येई में सजा मिलहै?

कमली -लरका की चाहना करबौ पाप नइयाँ। बिटिया खों ई दुनियाँ में नईं आन दैवौ पाप है। और तुम बोई करबे की कै रई हौ अम्मा!!

अम्मा -(गुस्सा होकर) जुबान तौ तुमाई कतन्नी सी चलत है, जा गज भर की जुवान अपनी मताई के आँगे चलाइयो, हमाये पास जादाँ करी सो ठीक न हुइये। हाँ!!

(कल्लू-कजरी लोक-गीत गाते हुये आते हैं)

जीरे बगर गये रेत में चंदन के दौना
सास-बहू की न्याओ भई चंदन के दौना

(अम्मा पैर पटकते हुये गुस्सा से आंगन में बड़बड़ा रहीं हैं)

अम्मा -आउन दो आज लल्लू खों। आज आये तौ जै काँ? आज तौ फैंसला हो केई रैहै। कै तौ ई घर में कमली रै है कै हम! हाँ!!

लल्लू - अरे अम्मा ऽ इतै-उतै काय टैल रईं? का बात है अरे तुम तौ रो रईं? काय का भओ?

अम्मा -अरे होने का है हम तौ अपनी किस्मत खों रो रये पढ़ी-लिखी बहू ल्यावे की शौक तो आ लगो तो हमें।

लल्लू - आखिर भओ का? कछु हमें भी तौ पतो परै।

अम्मा -अपनी रानी जू सें पूछौ जा कें!

लल्लू - कमली ने कही कछु! हम अबै जा कें देखत हैं - कमली ओ कमली (जाने लगता है)

अम्मा -अरे हमाई तौ किस्मतई फूटी है

(और हाथों से माथा ठोकने लगती है)

लल्लू - का कर रईं अरे अम्मा जी का कर रईं (उसे पकड़ता है)

अम्मा -हमईं में खोट है। हम काय खों ऊ के मोंय लगे। अरे आज तौ ऊ ने अच्छे से हमाई कॉय उतारीं।

लल्लू - अच्छा जा मजाल ऊ की का का कई ऊ ने तनक बताओ तो

अम्मा -अरे का का बतायें वा तौ इतै तक कत ती कै तुमने जुर्म करो तुमे सजा मिलहै। खूबई खरी-खोटी कई ऊ ने तो।

लल्लू - ऐसी कई कमली ने हम अबे देखत। अकेले जा बताओ अम्मा इत्ती मुलक बातें भईं काय पै भयें?

(अम्मा फुसफुसा कर उसके कान में धीरे-धीरे कुछ बतला कर उसके कान भरती है)

कल्लू - गुरुमंत्र फूंको अम्मा ने, लल्लू के कानन में।
लल्लू आसानी से आ गओ, अम्मा की बातन में।

कजरी -उथल-पुथल मच जीवन में, घर में मचो बवाल!
लल्लू खिस्याकें कमली सें, पूंछन लगो सवाल।।

(कल्लू कजरी जाते हैं और कल्लू कमली का प्रवेश होता है)

लल्लू - ऐ कमली, का कई तुमने अम्मा सें। हमने पुमें पचास बेर समझाओ है कै अम्मा सें न उरझो करे। अकेलें तुम फिर लरीं अम्मा सें।

कमली -लड़ाई हमने नोईं करी। अम्मई हमाये पाछें परी हैं

लल्लू - अच्छा तुम बड़ी सीधी हो! अम्मा खों का परी तुमाये पाछें परबे की?

कमली -इने समझा लो, जे बेर-बेर हमसें जाँच कराबे की कै रईं हैं

लल्लू - जाँच करावे की कै रईं सो का भई? करा लो जाँच ऊ में का नुकसान है। और अच्छी मौड़ा-मौड़ी की चिनार हो जैहै।

कमली -तुम जे कैसीं बातें कर रये? अम्मा तौ मानों कम पढ़ी लिखी हैं। बे नईं जानती कै बे का कै रईं। अकेले तुम तौ समझदार हौ। जाँच करावो अपराध है तुम नईं जानत का?

लल्लू - तुमाई जेई आदत बुरई है तनक बात करौ सो उपदेश देन लगतीं हौ।

कमली -(प्यार से समझाती है) देखौ आजकाल समय भौत बदल गओ है। अब मौड़ा-मौड़ी सब एक समान है। आज की मोड़ी कौनऊँ तरीका सें मौड़न से कम नइयाँ।

लल्लू - देखौ कमली बेफालतू की बहस कौ कौनऊँ फायदा नइयाँ। एक बात अच्छी तराँ सें समझ लो कै हमने और अम्मा ने जो फैसला कर लओ सो कर लओ।

कजरी -अम्मा के सुर लल्लू बोलत।
अपने मन कीं गाँठें खोलत।।

कल्लू - कमली दुःखी और हैरान।
फंस गये हैं आफत में प्रान।।

(कल्लू-कजरी जाते हैं झल्लो का प्रवेश होता है)

झल्लो -लल्लू की अम्मा, लल्लू की अम्मा

अम्मा -हाँ झल्लो, आओ-आओ।

झल्लो -का कर रईं?

अम्मा -कछु नईं अपनी किस्मत खों रो रये।

झल्लो -काय का भओ? परेशान दिखा रईं?

अम्मा -हमाई छोड़ौ, तुम सुनाओ कैसीं आईं?

झल्लो -अरे अस्पताल जा रये ते रज्जो की जाँच कराबे सोची तुम सें पूँछ लें अगर कमली खों लै कें चलो तो दोइयन की इठक्की जाँच हो जैहै।

अम्मा -अरे झल्लो हमाये ऐसे भाग कहाँ? रज्जो तो है भोली-भाली तुमने कई सो चल दईं तुमाये संगै। हमाई जे महरानी जू तौ मानईं नईं रईं!

झल्लो -है काँ कमली?

अम्मा -अपने कमरा में। कोप भवन में है कैकई।

झल्लो -अरे तौ अब हम तौ चलत हैं। तनक जल्दी बुलाओ है डाँकटरनी नें।

(झल्लो जाती है और लल्लू की बहन राधा प्रवेश करती है तथा अम्मा से लिपट कर रोने लगती है - अम्मा ऊँ हूँ)

अम्मा -राधा अरे बेटा का भओ? कैसीं आईं? पाँवने काँ हैं की के संगै आईं कछु तौ बताओ?

राधा - का बतायें, काऊ के संगै नईं आये, हम तौ अकेलेई आये।

अम्मा -अकेली? ऐसी का आफत आ गई जो तुम अकेली चल दईं। तुमें पतो नइयाँ ऐसी हालत में न तो इतै उतै जाबो ठीक है न रोबो गावो।

राधा - आफत आई तबई तौ हम इतै भगे चले आये।

अम्मा -अच्छा चलौ पैलें अंसुआ पौछौ, पानी पियौ फिर बताओ का भओ।

(अम्मा और राधा धीरे-धीरे बातें करती हैं। कल्लू कजरी कान लगा कर उनकी बातें सुनते हैं)

कल्लू - कओ कजरी का आफत आई? जी में राधा है घबराई?

कजरी -कमली कैसौ किस्सा लग रओ, ओई कथा कौ हिस्सा लग रओ।

कल्लू - बात तुमाई साँसऊँ साँची, गरें लगी अम्मा कें फाँसी।।

कजरी -राधा की सासो कहै, कै जाँच जरूरी है। और पति की सहमती, पूरी-पूरी है।

कल्लू - बिटिया हो तौ मार दो, लरका गरें लगाओ।
नईं मानो तौ फिर बहू, तुमईं भाड़ में जाओ।

कजरी -कओ कल्लू कैसी रही, जा विधना की मार।
ई कर दो ऊ कर मिले, उतै न रहै उधार।।

राधा - का बतायें अम्मा तुम इतै भौजी खों परेशान कर रईं। उतै हमाई सास हमाओ जीबो हराम करें। हमाई समझ में जौ नईं आउत कै लरका अपने संगै ऐसौ का लै कें आउत है जो बिटिया नईं लै आउत। ऐसौ का कसूर है मोड़ियन कौ कै उने दुनियाँ में आबे के पैलईं खतम कर दओ जाय बिटिया होवो का पाप है।

डॉ. साहब -बिल्कुल नहीं राधा बेटी। बेटी होना पाप नहीं बल्कि

सौभाग्य की बात है। बेटा तो एक ही कुल का दीपक होता है। पर बेटी वह तो दो कुलों को आलोकित करती है।

अम्मा -अरे डॉक्टर सांब आप अच्छे आ गये। जा एक नई आफत आ गई।

डॉ. साहब -मैंने सब सुन लिया है भाभी। इसमें नई बात क्या है? तुम भी तो कमली की जाँच करवाना चाहती हो।

अम्मा -लेकिन डॉक्टर साब (अम्मा की बात काटते हुये डॉ. साहब बोल पड़ते हैं)

डॉ. साहब -लेकिन-वेकिन कुछ नहीं भाभी हमारी इसी दकियानूसी सोच के चलते आज अपने पूरे देश में लिंग अनुपात में गड़बड़ी आई है। लड़कियों की संख्या दिन पर दिन घटती जा रही है। सोचो कल क्या होगा? लड़कियाँ नहीं रहेंगी तो लड़के क्वाँरे रह जायेंगे।

अम्मा -ये दइया जौ तो हमने सोचियई नईं हती।

डॉ. साहब -तो अब सोचो वर्ना लिंग अनुपात बिगड़ने के दुष्परिणाम आने वाले समय में हम सबको ही भुगतने पड़ेंगे।

(उधर झल्लो बहू को लेकर घर से निकलती है तभी पुलिस आ जाती है)

इन्स्पेक्टर -झल्लो देवी आपका नाम है?

झल्लो -हओ हमाओई नाम है काय का काम है?

इन्स्पेक्टर - थाने चलो फिर बताता हूँ क्या काम है

झल्लो -काय? काय चलो थाने। हमने का जुरम करो।

इन्स्पेक्टर - तुम ही अपनी बहू की सोनोग्राफी करवाने ले जा रही थीं। लिंग परीक्षण करवाना भी अपने आप में एक जुर्म है। कहाँ है तुम्हारा लड़का?

लड़का -हम जे हैं साब, काय? (लड़का हाथ जोर कर कहता है)

कल्लू - थानेदार ने ललकारो चंदन के दौना!

(लोकगीत)-हरी लबुदियन सें मारो चंदन के दौना!!
तैं पाजी गधा है - हओ साहब
तोरी जेई जया है - हओ साहब

कजरी -फिर दईं लबुदियाँ चारा रे चंदन के दौना
सो मच गई आरा रा रा रे चंदन के दौना (गीत समाप्त)

कल्लू - चल कजरी चल कें तकें, अम्मा के का हाल।
ऊपर-तूपर हँस रहीं भीतर भौत मलाल।।

कजरी -देख सहेली की दशा, अम्मा काप रई।
अब मुश्कल में जान हैं, तुरतईं भाँप गईं।।

डा. सा. -क्यों भाभी अब क्या ख्याल है? चलें कमली की जाँच कराने।

अम्मा -अरे राम-राम भैया। राम के लो नाम। हम तो ऐसे कान पकरत नाक घिसत, हमाई तौवा, हमाये पुरखन की तौवा हमें नईं कराने जाँच-माँच।

डॉ. सा. -नई-नई तुम कहो तो (अम्मा बीच में ही बात काटते हुए)

अम्मा -हम तौ जा कत हैं कै पैलईं - पैल तौ जो कछू भी ईसुर देय सब अच्छो है। अगर मोड़ी होय तौ फिर कनेई का है। काय कै - पैली बेटी धन की पेटी

(सभी एक साथ हंसते हैं - वाह अम्मा वाह)

कल्लू - पहली बेटी धन की पेटी, जा भी खूब कही।
पूछों-पूछौ-पूछौ कजरी, तुम का पूँछ रही?

कजरी -वौ कौ आ रओ रम्मू कैसौ। राधा के घरबारे जैसौ?

(आते हुये एक युवक की ओर इशारा करते हुए कहती है)

कल्लू - लगत ओई की खुल गईं अँखियाँ।
बिगरत-बिगरत बन गईं बतियाँ।।

(जनता से मुखातिव होकर)

कजरी -बात समझ में आ गई, कै भूल गई एकाध।

कल्लू - कथा इतईं पूरी भई, 'क्षमा' होंय अपराध।

कजरी - माला के गुरिया सबई, मिल गये इतै हिराने।

कल्लू - चल कजरी घर खों चलैं, फिर कऊँ आबूं भ्यानें।

साथ में -सास-बहू में सुला भई चंदन के दौना

लोकगीत - बहू हती सो पइयाँ परी चंदन के दौना
सासू बलइयाँ लैं कें हंसी चंदन के दौना
जीरे बगर गये रेत में...।।

(पर्दा गिरता है)

समाप्त।

- एफ-७, गीत बंगले, फेस-।।,
दुर्गेश विहार, जे.के. रोड, भोपाल

बुन्देली हरयानी

- भारतेन्दु अरजरिया 'इन्दु'

साँसी सूदी गैल निकारी, चौकड़ियन की प्यारी।
दिखतन में जा लगत तनक सी, भली भावनाँ भारी।
गंगा छोड़ बघौरा में जरबे की बात विचारी।
'इन्दु' रजउ जग जाहिर कर दई, तीन लोक सें न्यारी।।

सूधी सरस 'ईसुरी' बानी, तनक पढ़े बढ़ ग्यानीं।
गाँव-धौर्रा डाँग-बघौरा डगर-डगर कें छानी।
मन मन्दिर में रजउ आतमा, सबने प्यारी जानी।
'इन्दु' न रजउ काउ के घर में फाग राग रसदानी।।

साँसी हती 'ईसुरी' बानी, हिरदे बीच समानी।
धीरे पन्डा ने जा गाई, गंगिया नची दिवानी।
बुन्देली की धरती ऊपर, इनकौ नइयाँ सानी।
'इन्दु' ईसुरी चौकड़ियन सें, बुन्देली हरयानी।।

ईसुर भये अमर कवि जाने, गाउत नईं अघानें।
पढ़े लिखे पंडित पाछें भये, जे सिरमौर दिखानें।
सूदी सरस लिखीं चौकड़ियाँ, जीत लये फड़ बानें।
'इन्दु' 'ईसुरी' छाया पाकें, चौकड़िया लिख पानें।

- २०, मैथिलीशरण गुप्त मार्ग,
महोबा, (उ.प्र.)

महाकवि ईसुरी - शंका और समाधान

- डॉ. रामनारायण शर्मा

विन्ध्यभूमि के रज-कन में अनेकन रत्न छिपे रये। जिनकी अभिराम छटा सें सारो भू-भाग जगमगात रओ। ऐसे ई अलौकिक प्रतिभावान कविवर ईसुरी प्रसाद ने साहित्य जगत में प्रगट हो १६वीं सदी में बुन्देली और बुन्देलखण्ड कौ मान बढ़ाओ।

पुरातन से महा-पुरुषन सें जुड़ी बातें जन-मन में कछू मौखिक और फिर लिखित में जब-तब सामें आउत रती। कविवर 'ईसुरी' के जन्म, जन्म अस्थान के बारे में विद्वान ने समय-समय पै अपने विचार रखे। किन्तु अब इन शंका दुविधान कौ ठोस समाधान हो गओ। तब भी विषाद और प्रतिवाद तो हमेशा बने रत। इनकौ समाधान नई नई उमरती जानकारी के आधार पै इतै कछू सार-संक्षेप में चर्चा करबो जरूरी हो गयो।

जन्म व स्थान - ईसुरी बचपन से अपनी जन्म भूमि से बायरें निकर के कर्मभूमि में रचे। ऐईसी शुरू में इनें 'बगोरा वारो' मानो मयोरो परन्तु विद्वानन ने खोज करके 'ग्राम मेंड़की' झांसी इनकी जनम-भूमि निश्चत करी। कृष्णानन्द गुप्त को ईको श्रेय मिलो। ईसुरी के जन्म और परिवार के बारे में सोई अनेकन विचार जब-तब सामें आये और इन सबई नें अपने-अपने विचार व दाबे सई बताये। किन्तु ईसुरी के जन्म की तिथि-वार सें एक मत की पुष्टि होत जो ई फाग में देखबे मिलत -

ईसुर जनम मेंड़की मइयाँ दे दये राम गुसइयाँ।
बड़ी खुशी भई सब बस्ती में, घर घर बजी बधइयाँ।
संवत १८८१ में पुष्य नक्षत्र अबइयाँ।
रवि मधुमास लगन थी सुन्दर लौट रईती गइयाँ।
भोला घर सुन्दर सुत जन्मो उपमा मो पै नइयाँ।

यह फाग मेड़की के पुजारी रामलाल के मुख से लोगों ने सुनीती जो ईसुरी के पिता के समय के माने जातते। ऐईसे ई पै विचार करबो जरूरी बन जात। वैसें ईसुरी की जनम-कुंडली तक बन गई। परन्तु शंका और विवाद बरकरार चले आ रये। अब समय आ गयो कै हमें ई पै एक मत हो कैं निन्नों कर ई विवाद कौ अंतिम समाधान करनें।

ईसुरी कौ मेंड़की व परिवार से सम्बन्ध - ईसुरी के माता-पिता के सुरग सिधारे सें उनें उनके मामा भूधर नायक अपने संग कौनियाँ लिवा लयाये। ई बात सें विद्वानन की एक राय है। मामा निःसंतान हते सो उनने ईसुरी कौ लालन-पालन और पढ़ाई-लिखाई अच्छी तरां सें करी। ईसुर (ईश्वर) की कृपा सें भूधर नायक कें संतान पैदा भई तो ईसुरी और मामा के सम्बन्ध में तनक दूरी आई। परन्तु मामा ने ईसुरी की शादी सीगोन के ब्राह्मण परिवार में करा दई। शादी में ईसुरी के सबई कुटुम्बीजन शामिल भयेते। जा बात की पुष्टि मेंड़की के बड़े-बुजुर्ग जन करत रये। शादी के छः, मइना बाद ईसुरी के बड़े भैया उनें सपरिवार मेंड़की लिवा ल्याये। जौ प्रसंग-पैले काऊ विद्वान नें नई लिखो। ईसुरी ने मेंड़की की अपनी रहस में घर की खेती बारी काम में हाथ बटाउत रये। परन्तु ई में खर्च-पानी की किल्लत बनी रई। गिरस्ती चलाबो कठिन हतो। ईसुरी ईसें धीरे पंडा के कैबे सें बगौरा जाकें रज्जब अली के इते 'करिन्दा' कौ काम करन लगे। जे विचार ई फाग में देखबे मिलत-

जब सें मूड़ें परी गिरस्ती, भूल गई सब मस्ती।
काँसे खर्च ल्यायें रोजउ, कौन चीज है सस्ती।
हाथी के हौदा दोबे की नहीं हमारी हस्ती।
एइसें ईसुर गये बगोरा, छोड़ मेंड़की बस्ती।

ईसें ई विचार की पुष्टी होत कै ईसुरी मामा के इते सें पै लें मेंड़की आकें रयेते और बाद में धीरे पंडा के संग ३ साल बाद बगौरा गयेते। ई बात में तत्त है। काय सें ईसुरी कौ मेड़की में आबौ-जाबौ न होय तनिक अटपटौ लगत। इतनोई नईं ईसुरी जब ओरछा और टकटौली, मऊरानीपुर आदि घूमत गयेते तो रस्ते में परत मेंड़की ना गये हों, ऐसो होय नईं सकत। ओरछा कौ बखान ईसुरी कर कै रये -

जग में नगर ओरछो नामी, रामचन्द्र राजधानी।
पुक्खन-पुक्खन आये अवध सें, ल्याई कमलापत रानी।
गैर दिवारें धरी कलसिया, धजा रही फहरानी।
कात 'ईसुरी' सुन लो प्यारी, राज बड़ी रजधानी।

दूसरी नई जानकारी मिलत कै 'ईसुरी' जब बगौरा के लांछन से दुखी होकें अपनी कारंदा की नौकरी छोड़ गाँव-नगर भ्रमण पै निकर गये ते और बाद में अपने इष्ट-देव के दरसन करबे मथुरा-वृन्दावन की यात्रा कर फिर सें अपने गाँव मेड़की आकें रयेते। ईकौ प्रमान मेड़की और आस-पास के बड़े बुजर्गजन की सुनी व लिखी बातन सें हो जात। बैसें दुख-तकलीफ व विपत के समय मनुष्य अपनी जनम-भूमि की शरण में जात। जैसे एक बालक अपनी माता के आँचल में शांति व सुरक्षा महसूसत। सो इन बातन में वजन है। गुनी जनों को इन पै गम्भीरता से सोच-विचार करबो जरूरी है। कायसें ईसुरी की फागन के संकलनन में इन बातन कौ उल्लेख नईं मिलत। इते जा भी बात खुलासा भई कै ईसुरी को गलत चोरी के फसाद में फँसाबे कौ जब भंडाभोर हो गयो तो तो निष्कलंक ईसुरी को मेड़की सें फिर सें रज्जब अली की बेवा बीबी ने मनाकें बगौरा बुला लओ तो। जिते वे अंतिम समय तक रये ते जब उनें अपनी लड़की के इते भेज दयो तो। अपने अंत काल (इन्तकाल) सें पैलें ईसुरी ने उनकी दाह क्रिया के समय मेड़की सें कुटुम्ब-कबीला को बुलाबे की बात कई ती जो उनकी ई फाग में देखबे मिलत -

अब हम जा रये देश बिराने जेई सबई से कानें।
हंसी खुशी में पहुँचा दइयो जोई इशारो चानें।
कुटुम्ब कबीला रहे मेढ़की बुलवा लइयो भ्यानें।

'ईसुर' कात मोरी माटी खाँ लगवा दियो ठिकानें।

ई तरां बात साफ हो जात कै ईसुरी अपने कुटुम्ब परिवार व मेड़की गाँव सें नाता जोरें रये। ईमें अब कोनऊँ शंका व दुविधा की बात नई रई। सो आगे विद्वानन को अपने विचार रखबे में ई तत्त की बात जरूर लिखें चइये।

राजा विश्वनाथ सिंह और ईसुरी प्रकरन- राजा विश्वनाथ सिंह और ईसुरी प्रकरन सबई संकलनन में लिखो मिलत पै ईसुरी नें महाराज को अपनो मान बढ़ावे सें जो आशीर्वाद दयोतो, ऊमें कछू शंका और समाधान की बातें सामें आ गईं। राजा विश्वनाथ सिंह (सन् १८६७-१६३२ ई.) के बाबत डॉ. के.पी. त्रिपाठी ने अपनी पोथी 'बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास' पन्ना १८०-१८१ पै दर्ज करो। राजा विश्वनाथ सिंह को सन् १८८७ ई. में राज्याधिकार प्राप्त हुये। ई के पैले उनकी शादी फरवरी १८८४ ई. में ओरछा के महाराजा प्रताप सिंह की पुत्री से भई ती। राजा विश्वनाथ सिंह और ईसुरी की भेंट १८वीं सदी के अंत में सम्भवतः हुई और तब तक महाराजा निःसंतान हते। किन्तु ईसुरी ने उनें आशीर्वाद देत कई - 'तुमने राखे मान हमारे, हूँ है भले तुम्हारे'। ऐई बात के आगें एक संकलन में ईसुरी द्वारा महाराज के पुत्र होबे कों आशीर्वाद देबे की बात लिखी और निःसंतान राजा को ऐसो आशीर्वाद कों सच करबे की फाग लिखी-

मिथ्या नहीं कविन की मानी जिव्हा रहत भवानी''

ई के बाद महाराज कों पुत्र प्राप्ति भई। उननें ईसुरी को राजकवि के पद को स्वीकारने की कई पै कवि ने प्रस्ताव नईं मानो। ई प्रकरन में कछू बातें उभर कें सामें आईं जिन कौ समाधान ईसुरी की मिली नई फागों में सुलभ भयो।

शंका - राजा विश्वनाथ सिंह की पैली शादी सन् १८८४ ई. में ओरछा नरेश प्रताप सिंह की पुत्री से भई ती। उनसे कोउ पुत्र नई हतो। जिनकी मृत्यु १५ अप्रैल सन् १६२० को हो गईती। फिर महाराज की दूजी शादी पाय ग्राम में भईती। जिनसें बाद में उनसें भुमानी सिंह पैदा भयेते। महाराज सन् १६३२ ई. में सुरग सिधारे।

तर्क की बात - १. अबै तक दूसरी रानी से संतान होबे की बात कोनउ संकलन में नई लिखी गयी। २. विश्वनाथ सिंह और ईसुरी की भेंट के समय राजा निसंतान हते। ३. ईसुरी की मृत्यु सन् १६०६ (सं. १६६६ ई.) में हो गई ती। तब तक भुमानी सिंह पैदा नई भयेते। ४. पैली रानी की सन १६२० में भई ती

ऐसे में ईसुरी की जा फाग देखबे जोग है -

''तुमने राखे मान हमारे हुएँ भले तुम्हारे'' आदि के बाद पुत्र कों आशीर्वाद की बात पैली रानी के जीवित भयें दयो गयो या बाद में? दूजी रानी सें शादी के पैलें ईसुरी सुरग सिधार चुकेते। सो अब ई को समाधान ई नई फाग के मिले सें हो जात -

मिथ्या नही कवि की बानी जिव्या बसत भुमानी।

छत्ता ऊपर बसत छतरपुर चढ़ती बेल दिखानी।

राजा कही हमारी मानों ब्याह दूसरी रानी।

आशीष दे चल दयें ईसुरी सफल होय मम बानी।

अब ई फाग को छुठलाबो कुतर्क बने सो सई तर्क कों मानता मिलै चइये। जा फाग मेड़की के बुजुर्गवान से मिली। सई मानी जाये।

पंडा या पंडा -ईसुरी और धीरे पंडा की मिताई सबई संकलन में मिलत। अब बात जा आय कै १. धीरे पंडा कौ परिचय? २. उनकी ईसुरी से भेंट कब और किते भई?

अब तक की जानकारी से पतौ परत कै ईसुरी के मीत धीरे पंडा मचा गाँव जो बगौरा के पास है के रैबे बारे हते और ईसुरी की फागों की धूम सुन बगौरा उनसें मिलेते। धीरे पंडा कों 'राई' नाच भात हतो। फिर इन दोऊ जनन की मिताई अंत तक रई। अब ई विचार के आगें जो नई जानकारी मेड़की के जान बइयन सें मिली ऊपै ध्यान दैबो जरूरी है।

१. धीरे पंडा वास्तव में 'पंडा' कर्मकांडी पंडित हते। कायसें ई क्षेत्र में पांडेव पाण्डेय नाम के पंडित तो मिलत पै पंडा नाम से कम हैं जो कर्मकांडी, ब्राह्मण माने गये। जो अपने जजमानन को कर्मकांड संस्कार व तीर्थन में लै जाकें उनके काम करावे में सहायता करने और एवज में दान-दच्छिना पाकें अपनी गुजर बसर करतते। ऐसे इनके जजमान अनेकन गाँवन में हते और इनकी पैठ अमीर-गरीब सबई में हती। सो धीरे पंडा जब अपनी जजमानी के कारज से मेंड़की पधारे, तबई उनकी भेंट ईसुरी सें भईती जो अपनी शादी के बाद अपने मामा को घर छोड़ के मेंड़की आ गयेते। बिना काम-काज सें परेशान ईसुरी को 'कारंदा' बनावे की बात उननें बगौरा करी और ई तरां ईसुरी बगौरा गये।

तर्क - ई बात कों कछु सुजान हल्के-फुलके में लें कें मन-गढ़न्त कैकें टार सकत। पै पंडा और जजमानी की बात टार नईं सकत। ईसुरी अपने मामा के घर सें सपरिवार ससुरार जाबे की बात स्वाभिमानी ईसुरी के सोच के विपरीत लगत। सो विपत परे मेंड़की आबौ सई लगत। ईसुरी को 'किलेदार' के इते काम कीने दिलाओ? उनके ससुरारी जनों नें? या फिर काऊ और ने? तौ बो को हतो। फिर बगौरा का काम दिलाने की बात तो जग जाहिर है।

समाधान -ऊपर की बातन पै गहन विचार से पंडा और उनकी मिताई पै नये सिरे सें सोच के बाद निन्नों करनें। धीरे पंडा के वंशजों को खोज कर ई में सुधार करो जाये। धीरे पंडा ईसुरी के संग भ्रमण में प्रयाग, ओरछा व मथुरा वृन्दावन रये? या अपने काम-काज में लगे रये। ईसुरी ने विपदा परे पै उनें बुलाओ। जो प्रमान है कै पंडा अपने धर्म कर्म में लगे रतते और जब-तब ईसुरी सें आके मिलतते व इनके बुलाबे पै आउतते। बगौरा के फसाद और ईसुरी के निष्कासन के समय धीरे पंडा का उनसे मिलबो कऊ लिखो नई मिलत। ऐसेई नये विचार की पुष्टि अधिक है।

ईसुरी की राष्ट्रीय भावना की फागें - कछु कुतर्की विचार के जा बात फैलाबे में जब-तब लगे रत कै

ईसुरी नें अंग्रेजी सत्ता के खिलाप कछू नई लिखो। ईसुरी की फागों में राष्ट्रीय सोच देखबे नईं मिलत। जे सब विचार जानबूझ के फैलाबे की है और झूठी आय। इन शंकान के समाधान सें पैलें हमें तनिक कछू बातन पै विचार करबो जरूरी हो जात - १. ईसुरी के जीवन काल में सत्ता संघर्ष, २. अंग्रेजी दमन के समय में साहित्य के सच।, ३. अंग्रेजी सत्ता के विरोध का तरीका, ४. अँग्रेजी डर-भय सें विरोध का साहित्य छिपौ रओ जो अब सामें आ रओ, ५. बिना अध्ययन-मनन के कुतर्क की धारणा।

इन बिन्दुयन पै संक्षेप में विचार कर हम कुतर्कों के समाधान कर सकत -

(१) ईसुरी के शुरू की अवस्था में क्षेत्र में सत्ता की लड़ाई स्वार्थ के आधार पै लड़ी जा रईती जो शुरू में आपसी द्वन्द्व बनी रई। फिर बुन्देला विद्रोह और १८५७ की क्रांति के दौरान राष्ट्रभक्त और अंग्रेज परस्त राजा-जागीरदारों में उलझी रई। जनता शुरू में गौंड़ रई। परन्तु ईसुरी ने अपनी फागों में अंग्रेजी सत्ता-व्यवस्था का खुल कर विरोध करो तो। जो इनकी बेरोजगारी, भुकमरी, गरीबी, रोग-दोष की सम्बन्धी अव्यवस्था की फागों में देखबे मिलत। दूसरी ओर झांसी मानिकपुर रेल-लाइन बिछाबे में महुआ कटाई का विरोध एक साहसिक, जन कवि का ही काम मानो गयो।

(२) अँग्रेजी ताकत सें क्रांति की विफलता के बाद साहित्य रचनाओं में कवियन नें अंग्रेजों का विरोध करो। ईसुरी ने भी जन-विरोधी सत्ता का विरोध करो तो। वे "हंसा फिरें विपत के मारे, अपने देश बिना रे" की बात रखबे बारे एकमेव ई क्षेत्र के कवि रए। 'लुचई बिलैया ले गई' आदि फागों में अंग्रेजी हड़प नीति कौ खुलासा करोतो।

(३) अंग्रेजों के विरोध कौ तरीका तब दुष्ट-दलन काव्य रूप में कवि रच रयेते। इये 'प्रतीक साहित्य रूप' कै सकत। जो ईसुरी की फागों में खूब देखबे मिलत। सामाजिक चिन्तन प्रधान राष्ट्रवाद मानो गयो। जिसमें अँग्रेजी शासन एवं ऊसें उपजी आर्थिक, धार्मिक, एवं सामाजिक शोषन कौ विरोध कवि नें करो। ये विचार राष्ट्रीय भावना को जागृत करबे के हैं। जो आगे चलकर महाकवि 'निराला के काव्य', 'राम की शक्ति पूजा' में रावण रूपी अंग्रेजी शासन के विरोध के प्रतीक बने। जीमें राम के प्रति कहे शब्द वास्तव में देश के कर्णधारों, युवकों को रावण रूपी अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेकबे के काजे उद्‌बोधन आय। जैसे -

रघुकुल गौरव लघु हुये जा रहे तुम इस क्षण।
तुम फेर रहे हो पीठ हो रहा जब जय रण। आदि

ई तरां ईसुरी ने अँग्रेजी सत्ता का विरोध उनकी अव्यवस्था, अनाचार के साथ क्षेत्र वासियन को धर्म-कर्म के प्रति सचेत करबे कौ काम अपनी फागों द्वारा खुल कर करो। जब अन्य कवि ई तरफ सें मौन रये। ऐसे ईसुरी पै लगाए गये कुतर्कों कौ समाधान भयो।

(४) ईसुरी कें राष्ट्रीय भावना व अंग्रेजी विरोध के काव्य की रचना करबे के प्रमान आज हमें उनकी फागों की खोज के बाद मिल रये। जिनें हम इते प्रस्तुत कर रये।

१. इनको अन्त राज्य को आ रओ कातन हृदय डरा रओ।
जनता भड़क गई है सबरी शासक जोर लगा रओ।
उल्टी गैल में शासक चल रओ, सीधी छोड़े जा रओ।
ईसुर कात चन्द दिना में अब राज दूसरो आ रओ।

२. जनता अब स्वतंत्रता चाराई, बन्धन से अकुलाई रई।
कैसे देश तजे जे अपनों सब खाँ यही समा रई।
मारें मरें सबई खाँ केवल, एकई बात दिखा रई।
ईसुर भारत माता रो रो भारी रुदन मचा रई।

३. गोरन खाँ, अब दुःख दिखा रये, इते नहीं रै पा रये।
जनता भारत की सब पलटी, गोरा दुखी दिखा रये।

४. कुछ दिन बाद अंत आ जैहे, समय बदल अब जैहै।
जोन सल्तनत जुल्म करत है, वो कैसे रै पै है।
जीनें पेड़ बबूरा बै दये, आम कहासें खैहै।
ईसुर रो रो कैं कै रये जल्द दिया बुझ जैहै।।

एक 'भावई' के प्रतीक रूप में फाग देखिये -

५. भावई अगरेजन पै आ रई राज्य छुड़ायो चारई।
एक दिना जा अवध गई, तो रामें बने पठा रई।
एक दिना जा राजा नल खाँ, भारी दुःख दिखा रई।
ईसुर जा अब ब्रिटिश राज्य खाँ भारत सें भगवा रई।

ऊपर लिखी फागें मेंड़की के बुजुर्ग बारन के मुख सें निकसी, लिखी व कछु छपी मिली। जो पैरी दर पैरी सें बक्स व बस्तों में बन्द रही ती और ८० बरस के बाबूलाल पाठक नें हालई हमें बताई। ऐसेई भौत सी ईसुरी की फागें बस्तों में दबी-बँदी है। उनें ढूँढ़ निकारनें और ईसुरी-काव्य को समृद्ध करनें।

चख चख (चर्चा) - ई सामग्री को देख-परख कें हमें ईसुरी के प्रति फैले भ्रम मिटानें। इन फागों की सच्चाई पै चख चख न कर इनें मानता देने। कायसें संस्कृत, हिन्दी कवियन के काव्य की चीरफाड़ अबै तक हो रई। तुलसी-सूर की कविता पै मन्थन भयो और १७ तुलसी विद्वानन ने निकारे और उनके ग्रंथ छाँट दये। सूर, सूरदास, सूरजदास आदि छाप के कवित्त सूरसागर में संजाये हैं। परन्तु अब इन नाम के कवि अलग सें बनाये जा रये। (डॉ. किशोरी लाल गुप्त रचित ग्रंथ सूर और सूरजदास छापी पद) ऐसई जो मत बनो, चलो आ रओ कै-कछू फागें फगवारन नें बना कें 'ईसुरी' की छाप सें छाप दई या ईसुरी की रची फागें अपने नाम की छाप लगाकें कै रये। जौ तौ कबीर, सूर, केशव, चन्द्रसखी आदि कवियन के संग चलो आ रऔ। सो हमें ईसुरी की फागें ढूँढ़ कें ई महाकवि के काव्य कों सामें ल्यानें जैसे विद्वानन कौ मत है कै जैसे विद्यापति बिना महाकाव्य रचे महाकवि मान लये गये। बैसेई हमें ईसुर कों उनके समग्र काव्य के आधार पै 'महाकवि' मान कें उनके नाव कौ डंका बजा देनें। चखचख और तर्क-कुतर्क सें परे हमें ईसुरी की कविताई के मर्म और सच कों सब के सामें रखनें।

- ६९५/३, सिविल लाइन्स, झांसी

कविजू केशव की कबिताई

- डॉ. दुर्गेश दीक्षित

अपनौं बुन्देलखण्ड साहित्य कला और संस्कृति सें भरो पूरो है। इतै के ऋषि मुनियँन नें जंगलन के बीच अपने चिन्तन, अध्ययन के बल पै बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखकें ज्ञान के खजानें लुटाऊत रये। अठारा पुरानन उर महाभारत के रचबे बारे व्यास जू ऐई धरनी पै भये पजेते। बाबा तुलसी के रामचरित मानस ने सारे संसार में धूम मचा दई है। संस्कृत के लच्छन ग्रंथन खौं पढ़-पढ़ कैं हिन्दी में लच्छन ग्रंथ खिलबे बारे पैले आचार्य केशवदास जू ऐई धरनी पै पैदा भयेते। भगवान राम राजा की लीला भूम, लाला हरदौल की बलिदान भूम उर रानी गनेश कुँवरि उर राजा मधुकरशाह कौ सुहानौं नगर ओरछा शुरूअई सें धन्न बनो रओ। ई बेतवा की नदी कौ पानीं पी पी कैं वीरन ने अपनी तरवारन के बल पै दुश्मनन के छक्के छुड़ा दयेते। वीरसिंह, चम्पत राय, उर मधुकरशाह की हाँकें सुन सुनके दुश्मन जंग छोड़ कैं भगजात ते। अमर वीर छत्रसाल के नाम सें तो सारों संसार परिचितई है। रामराजा की नगरी ओरछा में राजा इन्द्रजीत के दरवारी कवि आचार्य केशवदास जू सें तौ पूरो हिन्दी संसार परिचितई है। उनकी शिष्या प्रवीणराय ने तौ अकबर सरीखे बादशाह खौ खरों जबाब दैकें भौचक्कों कर दओ तो। बे ऊकी बातें सुनकें चिन्टा कैसे कैसे काटे रै गये ते। उनके भीतरई भीतर उर्दा-मूंग से चुरन लगेते। उर मधुकरशाह 'टिकैत' की तौ कनई का है। इत्ते बड़े बादशाह के रोकबे की चिन्ता नई करकें बे नाक सै मोंटौ टीका ठैकें लगा कैं दरबार में पौंचेते। उनके शौर्य उर साहसखौं देख कैं अकबर उनके मौं कुदाँऊ देख कैं रै गओ।

ऐसी पुण्य पराक्रम उर विद्या वैभव सें भरी पूरी ओरछा नगरी में भयेपजे केशवदास जू की कविता सें को परिचित नई हो सकत? कजन उनें बुन्देलखण्ड कौ सांसो सरूप कई जाय तो कोनउ बात वेंजा नई हुइयै। हिन्दी में लच्छन ग्रंथ लिखवे बारे वे रीतिकाल के पैले आचार्य हते। उन दिनन भक्तिकाल समाप्त हो रओ तो उर रीतिकाल के कछू आसार दिखान लगेते। ईसे उनकी कविता पै भक्ति और श्रृंगार-रस की मिलौ जुरो असर दिखा रओ तो। ईसें उन्ने भक्ति भावना सें भरो पूरो 'रामचन्द्रिका' नाव कौ महाकाव्य लिख डारो। उर रीतिकाल की परम्परा कौ पालन करवे के लाने उर अपनी शिष्या प्रवीणराय खौं काव्य शास्त्र कौ ज्ञान कराबे के लाने कविप्रिय उर रसिकप्रिया नांव के दो हिन्दी के लच्छन ग्रंथ लिखेते। उर राजा इन्द्रजीत के दरबारी कवि तौ हतेई वे। ईसें एक दरबारी कवि के नातें उन्नें वीरसिंहदेव रचित, जहाँगीर जसचन्द्रिका उर रतनबावनी नांव के ग्रंथ लिखेते।

ऐसई गीता के बारे में नओ सोच पैदा करबे के लाने ''विज्ञान गीता नांव कौ ग्रंथ लिख डारो तो। सांसी कई जाय तो उनकी कविता में कौनऊ कमी नई हती। उनके दादा उर पिता पं. काशीनाथ जू मिश्र संस्कृत के खासे पण्डित हते। और तो और उनके परिवार के नौकर चाकर तक संस्कृत में बातचीत करत हते। हिन्दी तो बोलकें जानतई नईं हते। फिर केशवदास जू की भाषा कठिन काय नईं हुइयै। उनके मौसें कड़वे बारी भाषा में संस्कृत के शब्दन की मार तौ अपने आप हो जात हुइयै। ऐई सैं तौ उन्नें जा बात पैलऊ सैं साफ कर दई ती। ईमें जादाँ सोसबे समजवे की कोनऊ गुंजायश नईं हती।

''भाषा बोल न जानहीं, जिनके कुल के दास।
उपजो तेहि कुल मंदमति, जड़मति केशवदास।।''

जब उन्नें खुदई जा बात अपनई मौं सें कै दई फिर कछू ठलुआ भईयन खौं उनके पाछें परबे की का जरूरत हती? उन दिनन के समीक्षक रामचन्द्र जू शुक्ल तौ ''आरी बाँडी आरौ लिइये उर सो ऊने कई कै मैं तो पूछई उठाँय ठाँढ़ी। उन्ने तो ऐसौ ढिढ़ोरा पीटो कै उने कवियन की पांत में सै अलग करवे की कोशिश करत रये। वे तौ डण्डा लैकें उनके पाछें पर गयेते। उन्ने रामचन्द्रिका खौं छंदन कौ अजायब घर कै दई उनें हृदय हीन उर उनें कठिन काव्य कौ प्रेत कैकें घृणा फैलाउत रये। उन दिनन एक जा उक्ति चालू हो गईती कै -

''कवि को दैन न चहें बिदाई, पूछैं केशव की कविताई।''

शुक्ल जू की जा बात अच्छी नईं लगी अकेलै चंदा पै धूरा डारे सैं वौ मैलों नई हो सकत। उर ऐसी कानात कई जात कै ''कौवा के कोसै ढोर नई मरत'' ऐसई एक दोहा कविवर बिहारी जू नें सोऊ लिखो है -

शीतलतारू सुगंध की महिमा घटी न मूर।
पीनस बारौ ज्यों तजै, सोड़ा जान कपूर।।

कजन कोनऊ पीनस कौ रोगी कपूर खौं सोड़ा जानकैं मैंक देबै तौ कपूर की शीतलता उर सुगंध कभऊ नईं मिट सकत है। तौ बस जेऊ हाल केशवदास जू की कविता कौ हतो। अकेले शुक्ल जी के कयें सें हमाये कवि केशव जू हृदयहीन नई हो सकत्ते। लगत है कै वे अकेले एकई ग्रंथ 'रामचन्द्रिका' खौं पकर कैं रै गये उर अपनौं सबरऊ गुस्सा ओई पै उतारत रये। उनके औरये ग्रंथन खौं देखवे की उनें फुरसतई नई रई। कजन उन्नें रसिक प्रिया, वीरसिंह देव चरित उर रतनबावनी जैसे ग्रंथन खौं पढ़लओ होतो तौ इत्ती जादाँ आलोचना करबे की गुंजास नईं होती। लगत है कै उन्ने रामचन्द्रिकई खौं ध्यान सें नईं पढ़ौं। ओई में ऐसे अद्भुत छंद हैं कै जिनें पढ़कें विद्वानन खौं आनंद की प्राप्ति हो जात। रामचन्द्रिका में हर तरा की भाषा कौ प्रयोग करो गओ है। कितऊ भौतई कठिन भाषा है तो कितऊ बिलकुलई सूदीसादी।

एक दरबारी कवि तौ हतेई वे। बातचीत करबे कौ ढ़ंग लोक व्यवहार उर बड़न के आदर सत्कार कौ पूरौ ज्ञान हतो उनें। ईसें उनके सम्बादन की भाषा भौतई सहज उर सरल है। कछू सोसबे समजबे की जरूरत नइयाँ। केशव जैसे सम्बाद तौ आज

लौ हिन्दी साहित्य में कोनऊ कवि नें नई लिख पाये। आजके रामलीला के मंचन पै उनई सम्बादन कौ प्रयोग करोजात। ईसैं जादाँ लोकप्रियता और का हो सकत? अब बताव उनें हृदयहीन कवि कैसें कई जा सकत? कछू संवादन के नमूना देखवे लाख हैं-

परशुराम - कौन राम मैं न जानियो।

विश्वामित्र - शर ताड़िका जिन मारियो।

परशुराम - ताड़िका सँहारी तिय न विचारी काहि बड़ाई ताहि हनें।

विश्वामित्र -मारीच हुतो संग अरु सकल खल सुबाहु काहू न गनें।

ऐसई अंगद-रावन सम्बाद सोऊ कम नइयाँ।

रावण -कौन के सुत।

अंगद -बालि के सुत।

रावण -कौन बालि मैं न जानिये।

अंगद-काँख चापिन्हात सात समुद्र बखानिये।

सम्वादन के मामले में केशव की कोनऊ कवि बराबरी नई कर पाव। और तौ और रतनबावनी उर जहाँगीर जसचन्द्रिका में सोऊ उनके सम्बादन की झांकी दिख रई है।

उन्नें अलंकारवादी आचार्यन के ग्रंथन खौं पढ़-पढ़ कैं अपनी कविता में अलंकारन खौ महत्व देत रये। उर उन्नें ओई बेरां कई ती -

''जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनुन बिराजई, कविता बनिता मित्त।।''

आचार्य भामह, रुद्रट, मम्मट्, उर दण्डी के लच्छन ग्रंथ पढ़-पढ़ कैं अपनी शिष्या खौं काव्यशास्त्र की शिक्षा देवे के लाने कविप्रिया उर रसिकप्रिया नांव के हिन्दी में दो लच्छन ग्रंथ लिखेते। जिनें पढ़ पढ़ कै प्रवीणराय कविता लिखवे में पूरीतरा सैं कुशल हो गई ती। उर ऊने भरे दरबार में अकबर सैं निडर होकै कै दई ती-

''विनती राय प्रवीन की, सुनिये शाह सुजान।
जूठी पातर भकत है, बारी वायस श्वान।''

अकबर सुनतनई चिन्ता कैसे काटे रै गयेते। आखिर शिष्या तौ हती बा कविवर केशवदास जू की। विदुषी चतुर काय नईं हुइयै वा? जा तौ खुदई सोसबे की बात है कै जिनके परिवार में सात पीढ़ी सै पंडिताई चली आई होय उर जिनके परिवार के संस्कृत में बातचीत करत हौंय ऊ परिवार में भये पजे कवि की भाषा कठिन काय नई हुइये। अकेले कठिन कौ मतलब जौ नइयाँ कैं उनें कठिन काव्य कौ प्रेत उर हृदय हीन कई जाय। जौ तौ उनके सगे अन्याय करो रामचन्द्र जू शुक्ल नें तौ जातक लिख दई ती कैं -

''कवि को देंन न चहें विदाई, पूछें केशव की कविताई।''

ऐसी ऊलजलूल बातें कै कै कें लोगन कौ मन छरकाउत रये केशव की कविता सैं। लोग दूरई से डराऊत रये। फिर उनकी कविता कौ मूल्यांकन करवे बारो को हतो? कजन हिन्दी के विद्वान उनकी रामचन्द्रिकई खौं ध्यान सैं पढ़ते गुनते तौ उनें अनगिनते रतन अपने आप मिल जाते। छंद उर अलंकारन के सम्राट तौ हतेई वे। उनकी रामचन्द्रिका में अनेक तरा के छंद उर अलंकारन के उदाहरन भरे पड़े हैं। उतई दोहा, उतई सबइया, उतई कवित्त, उतई कुण्डलिया उर छप्पय छंद कौ सुन्दर प्रयोग करो गओ। उनके कछू उदाहरन देखवे लाख हैं। मिथिलापुरी में धनुष टोरकें राम उर सीता कौ व्याव करकैं बरात लौटत में अपनें बड़े-बड़े जटा फटकारें, लाल-लाल आँखें निकारें, दाँत पीसत, हात में फरसा लयें, गिरत-उठत विश्वामित्र जू सें पूछन लगे -

''वामदेव को धनुष यह को टोर्‌यौ ऋषिराज
मुँहसे 'रा' के सुनतही, समझ्यो रावन राज।।''

वे इतनी जल्दी में हते कै 'रा' के सुनतनई रावन राज समज बैठे उर अपनौ पूरौ पूरी गुस्सा रावन पै उतारन लगे उर दाँत किटकिटा कै बोले कै -

वरवान शिखीन अशेष समुद्रहिं,
सोखि सखा सुख ही तरिहों।
भल भूंज कैं राख सुकैं करिकैं,
दुख दीरघ देवन कौ हरिहौं।।
सित कंठ के कंठहिं कौ कठुला,
दशकंठ के कंठहिं कौ करिहौं।।''

अब बताव ई सबइया में कठिनता किते है। कित्ती सूदी सादी तौ जा बुन्देली शब्दन सैं भरी पूरी कविता है। अपने इतै एक ऐसी कानात कई जात कै ''कौवा कान लै गओ'' कान खौं टटोकें तौ देखऊ नइयां उर ऊसई दलुवा साँई मसकन लगे। परशुराम कै रये हैं कै हम अपनें अग्नि बानन सैं पूरे समुद्र खौं सुके कैं पार उतर जैय। उर फिर ऊ सोने की लंका खौं बार कें सोनें की भसम बना कै देवतान खौं खोआ कैं उनके डर के बुखार खौं उतार दैंय। उर फिर अपनें फरसा सैं रावन के दशई सिर काट कें भगवान शंकर खौं चढ़ा दैंय। अव सोसौ कै ईमें किते कठिनता है। महाराज दशरथ जू की महानता कौ वर्णन केशवदास जू ने कितनी अच्छी तरासैं करो है। भाषा कौ प्रवाह उर शब्दन की सहजता में कोनऊ कमी नइयाँ। मनहरन छंद कौ जौ उदाहरन कित्तौ नोंनौ बन परो है -

''विधि के समान हैं विमानीकृत राजहंस,
विविध विवुधयुत मेरु सौ अचल है।
दीपति दिपति अति सातों दीप देखियत,
दूसरों दिलीप मों सुदक्षिणा कौ बल है।
सागर उजागर सों बाहुवाहिनी कौ पति,
छनदान प्रिय कैधों सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजें राजा दशरथ,
भागीरथ पथ गामी गंगा कैसों जल है।।''

ई छंद में उपमा श्लेष उर संदेह अलंकार के दरसन हो रये हैं। एक और ऐसऊ छंद देखवे लाख है। जीमें राम की साज सज्जा कौ बरनन करो गओ है -

''कुंतल ललित नील, भृकुटी धनुष नैन
कुमुद कटाच्छ बान सबल दसाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन,
मध्यप्रदेश केशरी सु जग गति भाई है

रामचन्द्र जू की चमू राज श्री विभीषन की
रावन की मीच दरे कूच चलि आई है।
विग्रहानुकूल सब लच्छ लच्छ ऋच्छन बल
ऋच्छ राज मुखी मुख केशोदास गाई है।

ई छंद में राम की सेना की साज सज्जा कौ बरनन भौतई सुन्दर बन परो है। ईमें सांग रूपक अलंकार की झांकी दिखाई दै रई है। अलंकार तौ उने भौतई प्रिय हतेई कितऊ कितऊ अलंकार के मोह में परकै कविराज जू भौतई बड़ी गल्ती कर गये, उर वा गल्ती उनें खुदई समज में आई उननें भुन्सारे के सूरज कौ बरनन करत करत संदेह अलंकार की प्रस्तुति के लाने उयै कोनऊ कपालिक कौ खून सैं भरो खप्पर कैं दओ। जीसैं श्रृंगार रस में वीभत्स रस कौ समावेश विद्वानन खौं खटकन लगो। ऐंसें उनके एक छप्पय छंद को उदाहरण देखवे लाख है -

''अरुनगात अतिप्रात पद्मिनीप्रानंनाथ भय,
मानहु केशवदास कोकनद कोक प्रेममय
परिपूरन सिन्दूर पूर कैधों मंगल घट,
किधौं सक्र कौ छत्र, मड़यो मानिक मयूख पट।।
कैधों नित कलित कपाल यह किलं कापालिक कालको,
यह ललित लाल कैधों लसत, दिग् भामिनी के भाल को।।''

कवि की जा भूल आंख के अन्जन में किरकिरी की घांई कष्ट दै रई है। इयें छोड़ कैं पूरी कौ पूरी बरनन भौतई सुहावनौं बन परो है। कितँऊ कितँऊ कविराज की भाषा भौतई कठिन हो गई जियै हर कोनऊ नई समज सकत है। ऊकौ अर्थ अकेले विद्वानन लोग जान सकत हैं। उनकौ ऐसों एक दोहा इतै दओ जा रओ है। जीमें श्लेष अलंकार के दर्शन हो गये हैं। एक शब्द के दो दो अर्थ कड़ रये हैं।

''ते न नगर न नागरी प्रति पद हंसकहीन।
जलज हार शोभित न जहँ प्रकट पयोधर पीन।।''

रामचन्द्रिका के कछुअई पद्यांश ऐसे हैं जिनें कछू कठिन कई जा सकत जादांतर पद्यांश में तौ अलंकार उर रस कौ सुन्दर संजोग है। ईमें बड़े से बड़े विद्वानन के लाने उर साधारन से साधारन लोगन के आनंद लैबे खौ कोनऊतरा की कमती नइयां। अयोध्या नगरी कौ तौ कित्तो सुन्दर बरनन करो है कविराज नें। उनकी नजर में उतै हर तरा से सुख साधन भरे धरे हैं। बाबा तुलसी नें सोऊ कछू ऐई तरा की बात रामराज के बारे में कई ती।

''दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज काहुहि नहि व्यापा''
ऐसऊ केशव जू कौ अयोध्या कौ बरनन देखबे लाख है-

''मूलन हीकी जहां अधोगति केशव गाइय।
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाइय।
दुर्गति दुर्गनि ही जो कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल कौ अभिलाष प्रगट कवि कुल के जीमें।''

कवि की नजर में उतै काउ की अधोगति नई हती। मलिनता तौ नगर में अकेले यज्ञई के धुँअई की हती। दुर्गति दुर्गन में उर कुटिल गति नदियँन की हती। कवियन खौं छोड़कें और काऊयें धन सम्पत की जरूरत तौ हतिअई नई। कवि तौ दरबारी कवि हतेई दरबार में राजन कौ प्रशासन कैसो है जातौ वे अच्छी तरा सैं जानतई हते। कवि ने रावन के दरबार कौ प्रशासन कितनौ सुन्दर बरनन करो है बड़े-बड़े देवता ऊके दरबार में हाजरी देत ते। उनकौ एक छंद देखबे लाख है -

''पढ़ो विरंचि मौन वेद, जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर कै कही, न जच्छ भीर मंडि रे।।
दिनेश जाई दूरि बैठि, नारदादि संग ही।
न बोल चंद मंद बुद्धि, इन्द्र की सभा नहीं।।''

उनकौ रसिक प्रिया नाव कौ ग्रंथ भौतई सरस है। जीमें ग्रंथ कौ नांव अपनें आप सार्थक हो जात। ग्रंथ में राधा कृष्ण के प्रेम के प्रसंग भरे धरे हैं। एक दो उदाहरण देखबे लाख हैं -

''जौ हौ कहौ रहिए तौ प्रभुता प्रकट होत,
चलन कहों तौ हित हानि नाहि सहनौं।
भावै सो करहु तौ उदास भाव प्राननाथ,
साथ लै चलहु कैसे लोकलाज बहनों।
केशवदास कीसों तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जोपै नाहीं आज रहनों।
जैसियै सिखाओ सीख तुमहीं सुजान प्रिय,
तुमहिं चलत मोहि जैसों कछु कहनों।।''

ई छंद में ब्रज उर बुन्देली कौ मिलोजुलो रूप दिखा रओ है। प्रियतमा के कथन की सहजता के दर्शन हो रये हैं। एक और ऐसऊ रस सैं सराबोर छंद सुनबे लाख हैं -

''चंचल न हूजै नाथ, अंचल न खैचौ हाथ
सोबै नैक सारिकाऊ सुकतौ सोवायो जू।
मंद करौ दीप दुति चंदमुख देखियत,
दारिकै दुराय आँऊ, हार तौं दिखायो जू।
मृगज मराल बाल बाहिरे बिड़ारि देउ,
भयो तुम्हें केशव सो मोहू मन भायो जू।
छल के निवास ऐसे वचन विलास सुनि,
सौ गुनों सुरत हूँ तें स्याम सुख पायो जू।।''

ई छंद में रति क्रीड़ा कौ बरनन करो गओ है। कित्ती सूदी सादी बात कै दई कवि नें ''सौ गुनों सुरत हूँ तें स्याम सुख पायो जू।'' एक और ऐसऊ छंद प्रस्तुत करो जा रओ है। जीमें राजा बलि सैं दान माँगवे की बात कई गई है। सवैया की सुन्दरता देखकैं रसियन कौ मन मोहे बिना नई रै सकत -

''कैटभ सो नरकासुरसो पल में मधु सौ जिनमारयो,
लोक चतुर्दस रक्षक केसव पूरन देह पुरान विचार्यो,
श्रीकमला कुच कुंकुम मंडन पंडित देव अदेह निहारियो,
सो कर मांगन को बलि पैकरताहु ने करतार पसार्यो।।''

कितनौ सहज कथन है। जा बड़े अचम्भे की बात है कै साक्षात् भगवान राजा बलि के सामनें माँगबे खौं हात पसार रये हैं। एक पै एक उदाहरन भरे धरे हैं केशव के ग्रंथन के। जिनें सुन सुनकै रसिकन कौ मन अपनें आप झूमन लगत।

सीता जू के सुहानें मुखमण्डल के सामैं सबई उपमान फीके पर जात। कमल उर चन्द्रमा की कोनंऊ कीमत नइयां ऊके सामैं। कमल तौ रात में मुरजा जात अकेलें सीता जू कौ मुखतौ रात-दिन एक सौ खिलोरत। ऐसई चंद्रमा में तौ कलंक होत अकेले सीता जू कौ मुखमण्डल ऊजरौ है। ई कारन सैं सीता के मुख की तुलना कमल उर चंदा सैं नईं करी जा सकत। छंद में व्यतिरेक अलंकार की झांकी दिखाई दै रई है –

"देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चंद
ताते मुख मुखै सखी कमलो न चंद री।"

केशव के सबई छंद एक पै एक ग्यारा है। कोनऊ महाकवि सैं कैसऊँ कम नइयाँ। कजन उनके ग्रंथन खौं ध्यान पूर्वक पढ़ो जाय, तबई विद्वान उनकी गैराई नौ पौंच सकत। ऊपर ऊपर उतराबे में का धरो? ऐसौ लगत कै आचार्य शुक्ल जू उनकी कौनऊ बात सै उनसै रूठे ते। सो बातबात में बुराई ढूंढ़न लगे उर पूरौ हिन्दी संसार उनई की देखा देखी केशव के काव्य सें दूर रन लगो। आज जरूरत है उनके काव्य खौं ध्यान पूर्वक पढ़बे की। तबई हिन्दी के विद्वान उनके कृतित्व के मूल्य खौं समज पैयं उर पुरानी मान्यतायें अपने आप मिंट जैय। ईसैं आज के नवयुवक हिन्दी प्रेमियों सैं निवेदन है कै केशव के काव्य खौं ध्यान सैं पढ़े सोसें समजें। तबई उनके संगै सांसों न्याय हो पैय। उनके काव्य खौं कठिन मानकैं लोगन नें उनें पढ़ाबऊ बंद कर दओ। कजन जेई हालत रई तौ जे नई पीढ़ी के लरका केशव कौ नांव भूल जैंय। उर जौ उनके संगै भौत बड़ो अन्याय हो जैय। ईसैं उनके बारे में एकदार फिरकँऊ सोसबे समजबे की जरूरत है। कजन जेऊ हाल रओ तौ फिर अपनी गांठ में कछू नई रै जैय। अपनी सबई पुजीं पसारौ खो बैठें।

– कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली गजलें

– महेश कटारे 'सुगम'

(१)
जिनके हियरा पथरा हो गये
वे सब मक्का मथुरा हो गये।
हते आदमी कछू गाँव में
उनके गतरा गतरा हो गये।

जिननें धोखौ देवौ सीखौ
वे कुवेर के पुतरा हो गये।
बखत परे पै बाप कैहत्ते
बखत सरे नासुकरा हो गये।

चोला सें तौ लगत आदमी
आदत सें वे सुंगरा हो गये।
चिंता सें भये झरी कचरिया
दुख सें पक कें डंगराहो गये।

आँखें पितरा गईं आसा में
देखत देखत डुकरा हो गये।
'सुगम' धुँधक रये कछु अबै तौ
कछू सुलग कें अंगरा हो गये।

(२)
पत्तन बीच चिरैया गा रई,
चील डार पै मूसा खा रई,
बरत बाग खों देख गिलहरी,
पूँछ उठा के आ रई जा रई।
जाल बुनौ मकरी नें चोंड़ी,
कीरा फँसा फँसा कें खा रई,
आ रऔ है, इक विकट अँधूरा
संभर जाओ कोयल चिल्या रई,
'सुगम' देख आफत की बेरा
बिरखा छोड़ बंदरिया जा रई।।

(३)
नीत धरम की धरती कैसी हो गई है पथरीली
सई बात तौ लगत नीम सी झूठी लगत गुरीली।
आवभगत आदर मर्यादा टाँग धरे खूँटा पै
बोली बानी जी की देखौ ऊ की है बजरीली।
गाँवन गाँवन धुँआ उठौ है शैरन शैरन आगी
गैलन गैलन डरी जिंदगी हो रई पीरी लीली।
कैसें कै दयें सबके सब हैं सुखी आज के जुग में
सबकी साँसें रुकी रुकी सीं सबकी हंसी पनीली।
'सुगम' सुखी मिल जाय कोउ तौ ऊसें हमें मिलइयौ
जी की दुनियाँ चमकदार होय जी की हँसी रसीली।।

(४)
भलमंशी में दबत चपत रये जै जै सीताराम
साँड़ बने वे खेत चरत रये जै जै सीताराम।

वे तौ आये उठा कें लै गये आजादी की बन्नो।
हम सब कोरे बनत, सजत, रये जै जै सीताराम।

हम लुट गये तौ तुमनें हँस दऔ तुम लुट गये हम हँस दये।
ऐसेंई सबरे लुटत पिटत रये जै जै सीताराम।

कभऊँ राम पै, कभऊँ दाम पै अपनी मोहर लगा दई।
पाँच साल फिर कुचत पिसत रये जै जै सीताराम।।

अपनी तौ आदत सी हो गई रोवौ-धोवौ, सोवौ
फटे ढोल से 'सुगम' बचत रये जै जै सीताराम।।

– प्राथ. स्वास्थ्य केन्द्र, कुरवाई,
जिला विदिशा (म.प्र.)

स्मृति के झरोखे से -

एक नज़र : शायर जनाब अब्दुल रहमान 'मंज़र' के सफर पर

- कपिल देव तैलंग

ऊँची लम्बी कद-काठी, उस पर लम्बी शेरवानी कभी सिर पर झब्बेदार तुर्की लाल टोपी तो कभी दुपली या कभी कभार सिर पर रियासती साफा, ये थे टीकमगढ़ नगर के जाने माने शायर जनाब अब्दुल रहमान खाँ 'मंजर'। वे मंज़र नाम से शायरी करते थे। वे टीकमगढ़ के सवाई महेन्द्र हाईस्कूल में उर्दू परशियन टीचर थे। मनमौजी मस्तमौला अपने में ही खोए खोए से। सदा हँसते हुए मिलना दूसरों को भी हँसाना। शायराना अंदाज की बैठक में जब के शायरी पढ़ते तो कभी कभी पान की पीक के लाल धब्बे उनकी शेरवानी पर लाल छींटका अहसास करा देते थे। पर वे इससे भी बेफिक्र, बे परवाह। महाराजा वीर सिंह के दरबारी कवियों में एक मात्र शायर वे ही थे, जिन्हें हिन्दी और ब्रजभाषा के प्रेमी महाराज बहुत इज्जत देते थे। दशहरे या होली के अवसर पर जब महाराजा साहब के राजकवि एकत्र होते, तो किले के जुबिली होल में कवि सम्मेलन का आयोजन होता, जिसमें बिजावर के कविराज बिहारी लाल जी, श्री अम्बिकेश, रामादीन लाल खरे एवं रसाचार्य ब्रजेश (तीनों रीवा) के साथ मंजर साहब भी आमंत्रित होते। कवित्त-सवैयों की बौछार के साथ शेर और शायरी का दौर चलता। मंज़र साहब शेर, गजल, गीत सब कुछ लिखते। भाषा का परहेज उन्हें नहीं था। 'भाव अनूठा चाहिए भाषा कोऊ होय' के वे पक्षधर थे, अतः उनकी शायरी में उर्दू-फारसी के साथ हिन्दी (संस्कृतनिष्ठ) और अंग्रेजी की शब्दावली बेहिचक स्थान पा लेती थी। मुहावरों का संयोग और भी चार चाँद लगा देता। दुर्दशा, वाइफ कोल्हू के बैल आदि इसके उदाहरण हैं।

उनकी शायरी में जहाँ गंभीर, चिन्तन, आध्यात्मिकता या सामाजिक सम्वेदना होती वहाँ हास्य और व्यंग्य की पुट शायरी में और भी रंग ला देती, सरसता का संचार कर देती। उनकी शायरी के कहने का अन्दाजा ही कुछ अलग रहता आकर्षक मनोहारी। शायरी के हर विधा का परचम उन्होंने लहराया।

वे स्वयं तो एक अच्छे शायर थे इसके साथ ही वे अन्य नौजवानों के लिए भी प्रेरणाप्रद रहे। मानों उन्होंनें कलम या हाथ पकड़ पकड़ कर शायरी कराई जिनमें यूसुफबिसाती (जोकर साहब) खुदाबख्श साहब, रहीम साहब आदि आदि। आज भी उन्हीं से प्रेरणा लेकर भाई जफरूलन खाँ 'जफर', जनाब अब्दुल गनी साहब 'गनी' आदि अच्छी शायरी लिख रहे हैं। मंजर साहब अब दुनिया में भले ही न रहे हों, किन्तु उनकी अदृश्य चेतना अब भी कार्यशील होती प्रतीत होती है। कवि गोष्ठी हो या तरही मुशायरा या साधारण मुशायरा हो मंजरसाहब के बिना महफिल में रौनक नहीं आती। मुझे उनके सानिध्य का सदा ही अवसर मिलता रहा। रास्ते चलते मिल जाते तो साधारण दुआ सलाम के साथ कोई न कोइ शिगूफा अवश्य छोड़ रहे ते। मुस्कराते हुए चले जाते। वास्तव में उनके अन्दर कोई मजहबी तरफदारी नही थी वे एक मानव थे, सच्चे इन्सान और इनसान की कद्र करने वाले, चाहे वह किसी मज़हब या फिरके का हो। यही तो सच्ची इन्सानियत है।

उन्होंने 'उमर खैय्याम की रुबाइयो का उर्दू तर्जुमा प्रकाशित किया। व्यंग्य रचनाओं में उनकी 'गरीबों की दुनियाँ एवं 'दो बटा तीन' बहुचर्चित रही है।' इन व्यंग्य रचनाओं में कोरा व्यंग्य ही नहीं अपितु सामाजिक विसंगतियों को भी कुरेदा गया है। उनके व्यंग चुटीले और असरदार होते।

भारत छोड़कर पाकिस्तान की सरजमी पर बसने वाले इस शायर को आज भी टीकमगढ़वासी भुला नहीं पा रहे हैं। यही कुछ कुछ मेरे साथ भी हो रहा है कि ५-६ दशकों पश्चात् हिन्दी संस्कृत का अध्येता मैं मंजर साहब पर लिखने बैठा हूँ। उनके शेर आज भी मेरे जेहन पर छाए हुए हैं। स्मृति के झरोखे से झाँक झाँक कर यह आलेख लिख रहा हूँ, उन्होंने टीकमगढ़ में रहते हुए ही 'भारत का स्वतंत्रता दिवस' (१५ अगस्त १९४७) के समारोह को देखा। पश्चात् प्रथम गणराज्य घोषित होने पर ''प्रथम गणतंत्र दिवस (२६ जनवरी) के अवसर पर आयोजित हिन्दी उर्दू के मिले जुले काव्य पाठ के सुअवसर पर अपनी सुप्रसिद्ध शायरी पढ़ी। पंक्तियाँ इस प्रकार थीं -

सारी तारीखों की ये सरताज़ छब्बिस जनवरी,
कर रही मजदूर को महराज छब्बिस जनवरी।।

सच्चा लोकतंत्र तो यही है कि एक मजदूर वर्ग का व्यक्ति भी जनमन के माध्यम से शासक बन सकने का अवसर पा सके। हुआ भी यही। पंक्तियों में लोकतंत्र की सही भावना व्यक्त हुई है - ''कर रही मजदूर को महाराज छब्बिस जनवरी। व्यंग्य और हास्य के तो वे अनूठे रचनाकार हैं। समाज के सभी वर्ग को उन्होंने अपनी रचना का माध्यम बनाया, चाहे वह ''मुदर्रिस (शिक्षक)'' हो या पेशकार, गरीब हो या मजदूर। निर्धन वर्ग के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति रही है।

'मुदर्रिस' को उन्होंने 'कोल्हू का बैल' चित्रित किया है, जो चलता तो रहता है पर आगे नहीं बढ़ पाता। रिटायरमेण्ट तक वही मुदार्रिस का मुदर्रिस बना रहता है समाज और शासन से उपेक्षित।

एक शायरी में बेचारा मुदर्रिस कह उठता है कि पुराने जमाने में शिक्षक या गुरु को सगे बाप का दर्जा दिया जाता था, अब सगे बाप का नहीं तो सौतेले बाप का दर्जा तो मिलना ही चाहिए।

पेशी की मानसिकता में पिसता हुआ पेशकार, पेशी की धुन में ही खोया खोया रहता है -

पूछी वाइफ की खबर तो उसको फायल जानकर
बोल उठा आज ही रखा उसे पेशी में है।

पेशकारों की जुवाँ पर चढ़ गया पेशी में है।''

शासन और समाज से उपेक्षित गरीबों की दुनियाँ ही अलग है, इसी बात को शायर ने अपने संग्रह ''गरीबों की दुनियाँ'' में व्यक्त की है। दिन बदलते हैं, साल बदलते हैं, समय बदलता है, पुरातनता नवीनता से परिवर्तित होती है, पर गरीब गरीब ही रहता है। न तो शासन को तरस आती है और न समाज ही पसीजता है। गरीब गरीबी में ही जीता और मरता है शायद उसकी यही नियति बन गई है। इसी भावना को व्यक्त करते हुए मंजर साहब ने लिख दिया -

''मगर हाँ न बदली, न बदली, न बदली
गरीबों की दुनियाँ, गरीबों की दुनियाँ
बदलने को दुनिया में क्या क्या न बदला
कलीसा न बदला कि कावा न बदला।
मगर हाँ न बदली, न बदली, न बदली गरीबों की दुनियाँ।''

गरीबी की चक्की में पिसता हुआ दूसरा वर्ग मजदूरों का है, बड़ी बड़ी आलीशान कोठियों, बंगलों में रहने वाले धनाढ्य वर्ग और किसान मजदूर के शाब्दिक हिमायती नेता वर्ग को शायर ने ललकारा है और कोठी वालों से बाहर आकर मजदूरों की दशा देखने का आव्हान किया है। शाब्दिक सहानुभूति अपर्याप्त और वे असर है -

दुर्दशा मजदूर की मजदूर होकर देखिए
भूख में दो दिन की, बोझा सर पै ढोकर देखिए।

मजदूरों की सही पीड़ा का अनुभव मजदूर बनकर ही किया जा सकता है। कलियुगी इन्साफ, खुदा की खुदाई, दम ही नहीं रहेगी तो दुम लेके क्या करूँगा, आदि रचनाएं छोटी छोटी दन्तकथाओं पर आधारित हैं।

पड़ोस में रहने वाले किसान के पास घोड़ा था, कुम्हार के पास गधा था, गधे के रेकने से परेशान किसान ने गधे की मरने की दुआ मांगी, पर हुआ कुछ और ही घोड़ा मर गया, गधा ज्यों का त्यों बंधा रहा, इस पर किसान ने उलाहना देते हुए कहा -

''वाह रे खुदा,
सारी खुदाई करते मुद्दत गुजर गई
घोड़े गधे की पहिचान अब तक नहीं हुई।

गरीबों की दुनियाँ में ही 'कलियुगी इन्साफ'' के द्वारा शायर ने न्यायप्रणाली पर करारा व्यंग्य किया है। ऐसा न्याय जो पक्षपात, या भाई-भतीजावाद पर आधारित हो। घटना-हंसहंसिनी और कौआ के माध्यम से वर्णित की गई है -'

उड़ते उड़ते हंस का जोड़ा किसी दिन वक्ते शाम
एक कौए के यहाँ उतरा कहा वादे सलाम।
श्याम जी दीजे इजाजत तो मुसाफिर रात भर
ठहर जाएँ इस जगह उड़ जाएंगे वक्ते सहर।
रात के महमान जब सुबह को रुखसत हुए
श्याम जी बोले बिगड़कर हँसिनी को रोक के।
वाहवा क्या खूब, डाका डालते हैं हंसराज
गैर की जोरू उड़ाते आपको आई न लाज।
देखिए ये हंसिनी है कौए की मादा नहीं
ऐसा तो अन्याय दुनियाँ में कहीं देखा नहीं।

हुज्जत बढ़ने पर दोनों न्यायालय पहुंचे। न्यायाधीश ने दोनों पक्ष की बातें सुनकर फैसला सुनाया कि यह हमारे गांव का कौआ है। अतः झूठ नहीं बोल सकता। हंसिनी कौए को ही मिलनी चाहिए। फैसला सुन हंस की तो रोते रोते हिचकी बँध गई, जन्म मरण का साथ जो छूटा जा रहा था।

पर कौआ भी फूटफूटकर रोने लगा। जज के पूछने पर कौआ बोला मुझे रोना इसलिए आ रहा है कि आपके मरने पे ऐसा कौन देगा फैसला।

शायर या कवि जहाँ कल्पनाशील होता है, वहाँ सामाजिक असंगतियों, विसंगतियों का दृष्टा भी। मूक दृष्टा नहीं मुखर दृष्टा यह बात जनाब मंजर में जहाँतहाँ प्राप्त होती है। व्यक्तित्व बहुआयामी रचना भी समाज सापेक्ष्य।

किन्तु यह दुखद रहा कि मंजर साहब अचानक बिना कहे सुने पाकिस्तान चले गए। शायद पुत्र मोह ने उन्हें ऐसा करने को विवश किया, उनका बेटा अब्दुल मन्नान पहिले ही पाकिस्तान चला गया था किन्तु पाकिस्तान चले जाने पर भी उनका लगाव, यहाँ के लोगों से, यहाँ की जमीं से जुड़ा रहा। यदा कदा वे अपने मित्रों परिचितों को पत्र लिखते रहे। पत्र आना बन्द हुआ तो समझा अब वे इस दुनिया से कूचकर गए किन्तु स्मृतियों यादगारो को कौन भुला सकता है।

- तैलंग भवन, टीकमगढ़

बिन बादर गगरिया...!

- डॉ. एल.आर. सोनी 'सीकर'

बिन बादर गगरिया काये फोरी।
बिन बादर गगरिया काये फोरी।।
का कछु जानो जादू टोनो।
भरम-भरम कौ ओनो-पोनो।
अरे! काये चदरिया धरि ओढ़ी।
बिन बादर गगरिया काये फोरी।।
निबुआ काटो, हवन लगाओ।
काली जैसो रूप बनाओ।
हा! मन की मन में भरि जोरी।
बिन बादर गगरिया काये फोरी।
नेंकऊ न झूठी तुम तो गुनियाँ।
परबतिया, जमुना वा-मुनियाँ।
हाँ! 'सीकर' सबकी मति टोरी।
बिन बादर गगरिया काये फोरी।।

- सीकर भवन, न्यू दतिया पब्लिक स्कूल,
ठंडी सड़क, दतिया म.प्र.

माटी के लानें कछू करौ का भैय्या?

- दिनेश चन्द्र दुबे

वे आज होतीं तौ स्यात नब्बे के आसपास की होतीं। पर अब काँ धरीं। एक बेरै ऊपरे गओ कोऊ कभऊ लौटौ है का? खुद हमई तौ अरसठ के हौवे खौं हैं।

पर कछू कछू लोग कित्ते याद आऊत! वे मताई हती जा सैं नई कैरये यार। मताई तो हजारन हैं। नई, पुरानी। जुग बदल गओ। अब तौ मताईअन खौं मताई कैबे, सुनबे में शरम लगत। ''मामें सोचती कोऊ सुन न लेवै कै जिनको इतेक बड़ो मोड़ा है। और मोड़न खौ अधनँगी मताई देख कै लगत कै दोस्त कऊँ मताइअन पैई बुरई नजर न डारन लगैं। को रोकै? न मोड़ा रोक सकें, न खसम।

जा बेरै फिर आँखन में, सात सात हम जैसे कपूतन की मताई की सूरत, बा के गुन, आँखन के आगें लिख से गये हैं। पतली दुबली काया। रात के पानी में डुबा के सूखवे डार दये धोती, ब्लाउज। चार बजे उठकें, मुरगा बोलवे के पैलईं नहा धोकें पूजा पाठ, सबेरे कौ कलेऊ बनाकै, दादा के संगै, वनखण्डेश्वर के दर्शननू की तैय्यारी और लौट कैं घुसतनई हम नालायकनू को उठा कै स्कूल की तैय्यारी की मीठी डाँट - ''उठ बैठो नासमिटे हौ। बाप, महीना भर में वीस दिना, दौरा पै रैके तुमाये बड़े आदमी बनवे के सपने लयै, टी.ए. बना के पइसा जोरत और तुमखौं पढ़वे खौ भी उठाने परै तौ, तौ आदमी मरई जै।

वे दुखी रतती। खासकर हमाई बजें सै। भैया हमें का पतौ हतौ कै इत्ते बढ़े घर की मौढ़ी खौ, मताई बाप नै कछुअई गुन न सिकाये हुऐं औरत के, बहू के।

हम अनार के पेड़ के नैचे बैठे बैठे, उनकी बनाई रसेदार अरई और चूले में से गरम गरम रोटी सैककें, घी डूबी रोटी खात जात्ते। प्रकट करतते कै हैं कछू तकलीफ नईयाँ ताकि वे दुखी न रयैं। पर वे अम्माँ हतीं। मूड में ओठन पर आ गये कौनऊ गाना से सब समझ जातती।

बात कैई साल पैले की दिवारी की हती। वैसई रोटी खब रईती।

अकेलीई आओ? बहू काँ है? मायकैई हुयै। मताई की सेवा में जायदाद रखाये बैठी हुऐ।

''अम्मा तुम काये खौं... हमने सोची अबकी दिवारी इतैई की करै। और कोऊ शायद न आये। हम रीवा हते सो...

''अच्छी करी। दादा कै रये ते कै दस दस पूतन की माई तौऊ बिलइन खाई... अच्छा तुम बौ गाना सुनाओ - इक वो भी दिवाली थी, इक ये भी दिवाली है, उजड़ा हुआ गुलशन है... और जानै का। तुमाई आवाज ऐसी लगत जैसे रेडियोई सुन रये होंय।

अम्माई स्यात हमाई संगीत गुरु, साहित्य गुरु रई हुयैं। याद पर रई सब कछू। वे सवेरे उठकें किशन जू के बृज में रास के लोकगीत गाउतई रतती। भाई साब के व्याव में उनकी गाई गारी भी याद है, 'रसवादी के भौंरा रे... कुत्ता की पूँछ जैसै, समधी की मूँछ कुत्ता पाल लो रे समधी कुत्ता पाल लेओ...'

और वा दिना हम कभऊ नई भूल सकत। दतिया गये ते हम। सेवड़ा हो कें लहार जावे की तैयारी हती, लहार में मजिस्ट्रेट हते। तब 'धर्मयुग' में 'हस्तक्षेप' कहानी छपी ती। पिछली बेर हम पढ़वे के शौकीन दादा के पढ़वे खौ किताब घर गये ते। संगैई 'ईशुरी' बुन्देली पीठ सागर विश्वविद्यालय की वार्षिकी ईसुरी जौन में एक बुन्देली भाषा की कहानी छपी हती। दादा ने पढ़कै सुनाई हुऐ। या स्याद्द उनईने चश्मा लगाकै पढ़ डारी हुऐ। चलत चलत एकदम बोली ती। ''भैय्या दादा कै रये ते कै दिनेश कौ खूब नाव हो रऔ। अच्छौ लिख रये तुम। पर तुमसे एक बात कैनै। कयैं?''

अम्मा कौ चैरा आज एकदम नऔ लगो तौ हमें। बोलीती 'पर बेटा जौन दतिया की बुन्देली माँटी में जनम लैके इत्तो नाव, इतेक बढ़ी नौकरी पाई, इज्जत पाई, बाके लाने कछू कभऊँ सोची कै नई? कछू- अपनी बोली खौं जिन्दा राखवे करो?

अबाक रै गये ते हम। रस्ता भर बस में सोचत भये कै ... और तब पैली बेर मन के भीतरे कऊँ जम गई ती एक बात के, अगर कभऊँ मौका आऔ तो माँटी कौ करजा जरूर उतारें, जिन्दा रऊत भये। शायद औई अम्मा खौं भी कऊँ अशीश दैवे खौं मजबूर करें।

- पूर्व जज, अधिवक्ता उच्च न्यायालय
६८, विनय नगर-१, ग्वालियर म.प्र.

बुन्देली हायकू

- राजीव नामदेव 'राना लिधौरी'

१.
गैल-गैल में,
भड़या फ़िरत है।
ले बन्दूकन।।

२.
मूढ़ है फूटौ,
साँची-साँची कतते।
कलजुग में।।

३.
लाज न आवै,
उनखौ तनखऊ।
गद्दी पा पाखैं।।

४.
ऐसौ लगत,
चुनाव है आ रये।
पाऔ छू रये।।

५.
हीरा सी मोड़ी
आज लरकन से।
होत है नौनी।।

६.
कतते वोट,
हमई खाँ दइयौ।
नोट लइयो।।

७.
ऐसौ लगत,
आसो तो जा सूखा में।
प्यासे मरतें।।

८.
आवत कामै,
बखत परे पे ही,
भलो मानुष।

९.
छतरपुर,
छत्रसाल की नगरी।
बुन्देली प्यारी।।

१०.
होता सौ रण्डी,
के बराबर एक
बुन्देलखण्डी।।

- नई चर्च के
पीछे, शिवनगर
कालोनी
टीकमगढ़ (म.प्र.)

मुंशी ईश्वरी प्रसाद की साहित्य साधना

- वीरेन्द्र बहादुर खरे

१९वीं सदी में बुन्देलखण्ड में एक ही समय में दो ईश्वरी साहित्य साधना में रत थे। उनमें से एक फागों के ऋतुराज लोकगायक ईश्वरी थे, जो कम से कम बुन्देलखण्ड में परिचय के मोहताज नहीं है। पर मैं जिन मुंशी ईश्वरी प्रसाद खरे, महोबा निवासी के साहित्य अवदान की बात कहने जा रहा हूँ। उनका उल्लेख पाठ्य पुस्तकीय हिन्दी साहित्य के इतिहास में उल्लेख नहीं है। यहाँ तक कि स्वतंत्रता के बाद के बुन्देली साहित्य पर शोध करने एवं बुन्देलखण्ड के अज्ञात कवियों को प्रकाश में लाने का श्रेय लूटने वाले विद्वानों ने अपने लेखों में इनका उल्लेख तक नहीं किया। जबकि २०वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में किए गये शोधकार्यों में इनका उल्लेख है। पण्डित श्याम बिहारी एवं सुखदेव बिहारी मिश्र बंधुओं के मिश्रबंधु विनोद में एवं दीवान प्रतिपाल सिंह के प्रकाशित बुन्देलखण्ड का इतिहास प्रथम खण्ड में उनका उल्लेख हैं।

उनकी मृत्यु के लगभग ७५ वर्ष बाद मुंशी ईश्वरी प्रसाद का उल्लेख छतरपुर के विद्वान डॉ. बहादुर सिंह परमार एवं डॉ. हरि सिंह घोष द्वारा संपादित एवं आदिवासी लोककला अकादमी द्वारा प्रकाशित 'बुन्देलखण्ड की छंदबद्ध काव्य परम्परा प्रकाशन वर्ष २००५ में किया गया है।'

मु. ईश्वरी प्रसाद श्रीवास्तव खरे का जन्म सन् १८२६ में कन्नौज उ.प्र. में हुआ। वे बचपन में ही अपने पिता श्री केदार सहाय की मृत्यु के पश्चात् अपनी माँ के साथ अपनी ननिहाल महोबा आ गए। उनकी माँ ने किसी तरह उनका पालन पोषण किया। वे अपने बल बूते पर आगे बढ़े। उन्होंने उस युग की प्रचलित शिक्षा पद्धति के अनुसार मौलवियों के मकतब और पण्डित जी के पाठशाला में उर्दू हिन्दी, गणित, फारसी की शिक्षा पाई। उन्होंने मेरठ में उर्दू मदरसे दस्तूर में गणित अध्यापक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। वे १८८५ में कुलपहाड़ जिला हमीरपुर के मिशिन मिडिल स्कूल के हैडमास्टर के पद से सेवा निवृत्त हुए और अपने गृह नगर महोबा में रहने लगे।

वे हिन्दी, उर्दू, फारसी के ज्ञाता थे। उन्होंने काव्य शास्त्र का भी अध्ययन किया, वे रस-छंद अलंकार में पारंगत थे। वे तंत्र मंत्र विज्ञान में भी दखल रखते थे। मिश्र बंधु विनोद खण्ड ३४ संस्करण पेज ६६ में भी उनका जन्म स्थान कन्नौज माना है और उन्हें १. जीवन रक्षावली, २. व्याकरण मूलावली, ३. तारीखे महोबा, ४. नाटक रामायण और बिहारी सतसई पर कुछ कुण्डलियों का लेखक कहा है। दीवान प्रतिपाल सिंह जी ने अपने बुन्देलखण्ड का इतिहास प्रथम भाग में पेज २७६ कवि क्र. १५७ में उनकी दो रचनाओं 'राम विजयतरंग' नाटक और 'तारीखे महोबा' के उल्लेख के साथ कुछ फुटकर पद्य रचनाओं का उल्लेख किया है।

कविवर जगन्नाथ रत्नाकर ने भी अपनी पुस्तक कविवर बिहारी में इनका उल्लेख किया है। इन संदर्भों के लिए मैं पण्डित हरिविष्णु अवस्थी का आभारी हूँ। श्री विश्वनाथ मिश्र ने भी अपने ग्रंथ बिहारी में बिहारी सतसई टीकाओं वाले अध्याय में ईश्वरी प्रसाद कायस्थ की टीका का उल्लेख करते हुए उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार किया है।

उन्हें कालक्रम में भारतेन्दु युग में रखा जाता है यद्यपि वे सन् १९२७ ई. तक द्विवेदी युग तक जीवित रहे। उन्होंने ९८ वर्ष की लम्बी उम्र पाई। उनके विपुल साहित्य में मेरे पास उनकी पुस्तकें 'रामविजय तरंग' नाटक जो पद्य एवं गद्य में है और 'आल्हा समर सारावली' जिसे तारीखे महोबा कहा है। इसके अतिरिक्त मैने उनके दो नाटक ऊषा अनरुद्ध और नलदमयन्ती की हस्तलिखित प्रति देखी थी पर अब वह अप्राप्त है।

नाटक राम विजय तरंग नाटक ६ गुना १० इंच आकार का है नाटक में १०२ पृष्ठ हैं। वह ५ अंकों में विभाजित है। अंकों के लिए गर्भांक शब्द का प्रयोग किया गया है। यह नाटक राम जन्म से प्रारम्भ होता है और महाराज दशरथ के द्वारा राम विवाह की सूचना पा बारात की तैयारी पर समाप्त हो जाता है। इसका पहली बार प्रकाशन १९०३ में शुभ चिंतक प्रेस जबलपुर से हुआ और दूसरी बार उसी प्रेस से १९१४ में हुआ। यह नाटक रामलीला की शैली का है और इसमें पारसी थियेटर और इन्दर सभा का भी प्रभाव है। नाटक की कथावस्तु रामचरित्र मानस पर आधारित है पर जनरंजन के लिए कुछ घटनाओ में नया रंग भरा है। प्रथम अंक में ढाठी ढाठिन की वार्ता शिव-पार्वती संवाद, केवट-राम संवाद, विश्वामित्र और शिष्य राम स्नेही की कल्पना नाटक को रोचक बनाती है। इस नाटक में लोक राग रागिनियों का प्रयोग है। कवि ने दोहे चौपाई के साथ सवैया, कवित्त, छप्पय, सोरठा आदि छंदों का सफलता पूर्वक प्रयोग किया। इसमें विजयछंद, ताड़क छंद, आदि का प्रयोग है। सवैया उनका प्रिय छंद है। उर्दू फारसी के ज्ञाता होने के कारण उन्होंने कव्वाली, गजल रेखता का भी सफल प्रयोग किया। उन्होंने कजली, दादरा, लावनी आदि लोक रागों का भी प्रयोग किया है।

उनकी भाषा बृजभाषा है पर उसमें बुन्दली और कन्नौजी का भी प्रभाव है। गजलों, कब्वाली में उर्दू, फारसी शब्दों की भरमार है। कविता में उपमा उत्प्रेक्षा रूपक का अधिक प्रयोग है। विषय एवं समयानुकूल उन्होंने श्रृंगार रौद्र, हास्य, ओज एवं निर्वेद शान्त रस की रचनाएँ की हैं। इन्होने रीतिकालीन कवियों के प्रतिकूल कलापक्ष पर ध्यान देते हुए भी भाव पक्ष पर अधिक ध्यान दिया है।

कविताओं की वानगी देखिए -

राम के रूप चित्रण में संयोग श्रृंगार की वानगी देखें।

मैन सी मूरत सूरति पै वलि जाँव विलोचन सोच निहारे।
आनन चंद की चाह चुमै चहिचात चकोर रहे चित धारे
ईश्वरी सारस से सरसें करसें किमि कारन आप विचारे

फूल भरे उर फूल से हाथन हों कैसे सो फूल पियारे

इन्द्र ब्रह्मा ने अपनी पीड़ा इस सवैया में कैसे कहता है देखें -

आप ही को वर पाय अदैव प्रचण्ड वली होय ऊधम पारे
टोर दियो दिग्पालन को बल देव फिरैं विललात विचारे
ईश्वरी मेरु के कंदर में सब गोय रहे उरमें डर धारे
हे पितु कष्ट सहें कब लों निशि वासर शंकित प्रान हमारे

ओज का उदाहरण देखें -

कहो तो कूट काट चामीकर अचल चाप चारखूंट डारों चहु चित्त हुलसाइवे
कहो तो धरनी को तरनी सी हिलादेव है तोये सहज पील बांध लाइवो
ईश्वरी पुरानी औ धुरानी चाप के तीपर मोकौ न उचित आन शंभु कौ मिटाइवो
ये ही से उठाय हाथ भाषति सुनाय सवै राम ही को आय काम चाप चटकाइवो।

हिन्दी गजल का उदाहरण देखें -

जय जय जगत भवन पति वे मिति विपति विदारी
जय जय कृपाल गोविंद करुण अयन मुरारी
जय जय विजय अनंता भगवंत सर्व व्यापी
जय जयति जे अनीहा श्रुति वेद रक्षकारी

ईश्वरी प्रसाद जी की दूसरी प्रकाशित कृति 'आल्हा समर सारावली' जिसे विद्वानों ने तारीखे महोबा कहा है मेरे पास है। इसका प्रकाशन लेखक के ही शब्दों में 'सन् ईसा प्रमान उन्नीस सौ नौ जानिय, तीन जून शुभ आन ऋतु ग्रीषम अवदात तिथि, यानी ३ जून १६०६ में हुआ। इसका आकार ६ गुना ५ इंच हैं इसमें १६० पृष्ठ हैं। मेरे पास जो पुस्तक है उसकी भूमिका के एवं ३ पन्ने प्रारम्भ के और पीरों के मजारों के विवरण के पृष्ठ नहीं हैं। प्रकाशन तिथि को देखकर इसे हिन्दी का पहला बुन्देलखण्ड का इतिहास कहा जा सकता है। इसमें भले ही केन्द्र महोबा को बनाया गया हो पर अंग्रेजों तक का १६०६ तक का अविकल इतिहास है। इसमें चंदेलों चन्द्रब्रह्म से सभाजीत तक का, चंदेलों का, तुर्कों का, तोरो, मेवातियों, गोड़ो, गहरवारों, भरों बुन्देलों के शासन एवं उनके वंश के वर्णन के साथ मराठों और अंग्रेजों का वर्णन किया। इस ग्रंथ का नाम 'आल्हा समर सारावली' है और इसमें विस्तार से बनाफरों के जन्म की कथा से लेकर आल्हा-ऊदल द्वारा लड़े युद्धों का वर्णन है। इस दृष्टि से इसे आल्हा का गद्य रूपान्तर कहा जा सकता है। लेखक का उद्देश्य आल्हा के बारे में प्रमाणिक जानकारी देना था। वह कहते हैं - 'आल्हा का गायन रोजगारी तो योग्य अयोग्य पर बिना ध्यान दिये अपनी ओर से नमक-मिर्च मिलाकर ऐसे बढ़ाव से उछल कर गाते हैं कि सत्य बातें भी असत्यों में मिल जाती हैं।...' लेकिन सज्जन वृंद बुद्धिमान उनके मुख्यगान को सम्पूर्ण असत्य मान निरा गपास्टिक जानके कंचित ध्यान नहीं देते इसलिए मैंने बनाफर वंश अवतंश शूरवीर महान आल्हा-ऊदल जाहिर जहान का ही ठीक वृतान्त जानने के अर्थ परिश्रम करके यह आल्हा समर सारावली पुस्तिका तैयार की और जहाँ तक हो सका खोज तलाश कर सत्य वृतांत लिखा।

यह ग्रंथ इतिहास होते हुए भी ललित साहित्य में आ सकता है। इसमें प्राचीन भारतीय गाथा शैली का प्रयोग किया है। यह ग्रंथ पठनीय है। जगह-जगह कवित्त सवैया एवं लोक रागों का प्रयोग किया गया है। ग्रंथ में रोमांच, आश्चर्य एवं श्रृंगार होने से पाठक बंधा रहता है। लेखक सत्य लिखना चाहता था, तिथिवार लिखना चाहता था जो कि इतिहास की पहली शर्त है पर उसने कहने का ढंग सरस बनाया। उसने रोचक प्रसंगों को कथाकार की शैली में कहा है। इसमें रासो का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। भाषा खड़ी बोली है पर इसमें कन्नवाजिया एवं बुन्देली का भी प्रयोग है। भाषा कहीं-कहीं तुकांत, अलंकृत एवं आवेगमयी, भावुकता से भरी है। भाषा किलिष्ट संस्कृत प्रधान नहीं है, सरल है। भाषा इतिहासकार की नहीं लोककथा वाचक की सी है।

शैली का उदाहरण देखिए - 'पाठक जन सुजान बुद्धिमान पर गुप्त न रहे कि यह नगर महोबा कन्नौज, झांसी आदि प्राचीन नगरी के समान एक सिद्ध स्थान है। (भूमिका से आल्हा समर सारावली)

एक तौ अवला नारी दूजे गर्भधारी तीजे दुख की मारी बेचारी बनचारी हिंसक पशुओं से भयभीत हो रोती पीटती सिर मारती भूलती भटकती नदी कर्णवती अर्थात केन के किनारे मौजा चाँदपाटी बाँदा कालिंजर के करीब पहुँची।" (चन्द्रब्रह्म की माँ हेमवती का घर छोड़ कालिंजर आने का वर्णन, पेज ६)

ईश्वरी प्रसाद अच्छे उपन्यासकार थे, इन्होंने १८७२ में वामा शिक्षक अर्थात् दो भाई चार बहिनों की कहानी नामक उपन्यास भी लिखा। आजकल मासिक पत्रिका, प्रकाशन पटियाला हाउस, नई दिल्ली की हीरक जयन्ती वर्ष २००४ जुलाई के अंक में प्रकाशित लेख प्रेमचन्द्र पूर्व के हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थवाद में लेखक डॉ. रामनिरंजन परिमलेन्दु पूर्व हिन्दी प्रोफेसर, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय मुज्जफरपुर बिहार लिखते हैं "मेरठ के उर्दू मदरसे दस्तूर के अध्यापक द्वय मुंशी ईश्वरी प्रसाद मुदर्रिस रयाजी (गणित) और मु. कल्याण राय मुदर्रिस अव्वल प्रधानाध्यापक ने वामा शिक्षक अर्थात् दो भाई चार बहिनों की कहानी की रचना १८७२ में पूर्ण की इसके लेखन में दो वर्ष का समय लगा यह २२४ पृष्ठों का उपन्यास है। इसका प्रथम मुद्रण प्रकाशन १८८३ में विद्या दर्पण छापाखाना मेरठ से कल्याण राय के उद्योग से लेखन पूर्ण होने के ११ वर्षों बाद हुआ।"

मेरे पत्र के जवाब में श्री राम निरंजन परिमलेन्दु जी ने मुझे ६-१२-०३ के जवाब में लिखा "यह भी संभव है कि इसका आवश्यक व्यय कल्याण राय ने वहन किया हो इसकी क्षतिपूर्ति में कल्याण राय का नाम भी जोड़ दिया हो और सम्पूर्ण पुस्तक ईश्वरी प्रसाद ने ही लिखी हो, इसकी प्रबल संभावना है।"

भले ही मुंशी ईश्वरी प्रसाद श्रीवास्तव महोबा अपने क्षेत्र में भुला दिए गये हों पर उनका ऐतिहासिक महत्व है। उन्होंने एक ऐतिहासिक नगर एवं जनपद की अपने समय तक की संस्कृति, परम्परा, ऐतिहासिकता को लिपिबद्ध कर आगामी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखा और ईमानदार साहित्यकार का दायित्व निभाया।

- कटरा बाजार, टीकमगढ़

लोक चित्रों में समाया लोकहित

- सरोजा शिल्पी

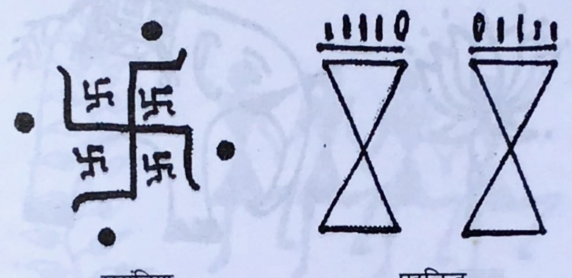
उर्मिला जल्दी-जल्दी अपने बैग में सामान रख रही थी। तनू ने कमरे में घुसते ही कहा - उर्मिला इस बार की छुट्टियों में तो तू मेरे साथ मेरे घर चल। इस बार तो तुझे पूरा दिल्ली घुमा दूँगी। उर्मिला हँस कर बोली - जी नहीं इस बार की छुट्टियों में तो मैं तुझे अपने गाँव ले जाने वाली हूँ! मेरे गांव में देखना त्यौहार कितने खुशी व उल्लास से मनाये जाते हैं। सब लोग कितने मिलजुल कर रहते हैं और खूब मजे करते हैं। हम भी खूब घूमेंगे और खूब मजे करेंगे।

तनु बोली-घूमना और मजे वो भी गाँव में? मैं तो सोच रही थी कि इस बार हम लोग शहर चल के खूब घूमेंगे और कुछ नई-नई बातें भी सीखेंगे। जी नहीं, इस बार तो हम दोनो गाँव ही चल रहे हैं। बस अब तो तू जल्दी से तैयार हो जा गाड़ी का समय भी होने वाला है। तनू बेमन से उर्मिला के गाँव जाने के लिए तैयार हो गई और गाड़ी पकड़ने के लिए बस स्टैण्ड पहुँच गई।

गाड़ी में बैठते ही तनु बोली - मुझे तो गाड़ी का सफर बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता, पर तू है कि बस हर समय अपने गाँव की ही रट लगाये रहती है। उर्मिला चिढ़कर बोली - तू भी न, अब ज़रा सी परेशानी तो झेलनी ही पड़ेगी। बस दो-चार घंटे की ही तो बात है, फिर देखना मजे ही मजे हैं। घर पहुँचते ही सारी थकान दूर हो जायेगी। भाभी के हाथ का गर्मागरम खाना खाकर! अच्छा-अच्छा ठीक है। अब चल तो रही हूँ न, फिर देख लेती हूँ आपका प्यारा सा गाँव। तनू तुनक कर बोली! उर्मिला ने तपाक से कहा - जी हाँ और हमारा गाँव देखकर आप अपने शहर को भूल जायेंगी और हमारी तरह आप भी गाँव की रट लगाने लगेंगी। तनू मुस्कुरा कर बोली - तुम्हारी तरह, हाँ-हाँ मेरी तरह! बातों-बातों में सफर कब कट गया दोनों को पता ही नहीं चला और गाँव आ गया।

गाड़ी रुकते ही उर्मिला ने खिड़की से बाहर झाँका तो दादा जी पर नज़र पड़ी। उर्मिला खुश होकर बोली देख तनु दादाजी भी आ गये हम लोगों को लेने! अब जल्दी उतर जल्दी। तब तक दादाजी गाड़ी के दरबाजे तक आ गये और उर्मिला के हाथ से बैग लेते हुये बोले - आ गई हमारी उर्मि बिटिया। उर्मिला खुश होकर बोली दादा जी ये हमारी सहेली तनू है। दादा जी ने दोनों के पैर छुये और रिक्से पर बैग रखते हुये बोले - चल भाई घन्सू लड़कियों को घर छोड़ दे। मैं भी पीछे-पीछे आता हूँ।

दस मिनट में ही उर्मिला का घर आ गया। उर्मिला को घर आया देखकर सभी लोग खुश हो गये छोटे बहन भाई दोनों को घेर कर बैठ गये, और दीवाली की तैयारियों के बारे में बताने लगे। थोड़ी देर बाद अम्मा की आवाज सुनाई दी, उर्मी बेटा खाने की थाली लग गई, खाना खा ले बातें बाद में करना। उर्मी न तनू खाना खाने बैठ गईं। भाभी गर्म-गर्म रोटी सैंक-सैंक कर दे रहीं थी और अम्मा घी लगा-लगा कर थाली में परोस रही थी। तनू रोटी तोड़ते हुये बोली उर्मी इतना सारा घी! दादी रसोई में दूध की बाल्टी रखते हुये बोली - अरे बिटिया घर का घी, दूध है। खूब प्रेम से खाओ यही तो समय है, शरीर बनाने का! अरे शहर में तो कुछ भी ढंग का नहीं मिलता ऊपर से जी तोड़ पढ़ाई, देखो तो लड़कियाँ कैसी सूक कर काँटा हो रही हैं। अरे यहाँ दो-चार दिन रहोगी तो लाल हो जाओगी लाल। दादी की बात सुनकर तनू को हंसी आ गई।



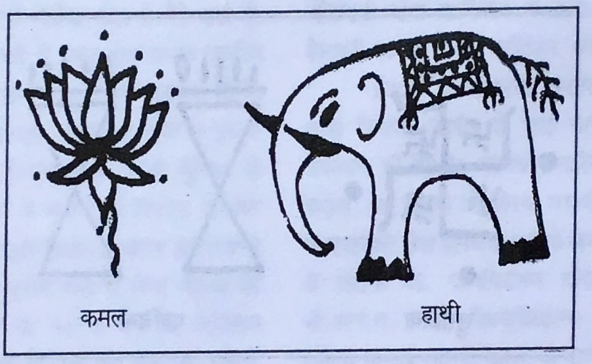
सुरांतिया पदचिन्ह

दादी, अम्मा की ओर देखते हुए बोली - लो ये दूध पकड़ो। आज त्यौहार का दिन है। सो जरा जल्दी लगा दिया और अब मैं जा कर शाम के लिए उरैंन व आँगन लीप दूँ। तब तक उर्मिला व तनू खाना खा चुकीं थीं। छोटी बहन सीमा को चित्तौर लिखने के लिए, छुई, गेओरी, महावर, सिंदूर आदि थाली में लगाते देख कर तनू बोली - 'अरे सीमा तू ये क्या कर रही है?' सीमा बोली - 'दीदी मैं लोक चित्र बनाने के लिए रंग रख रही हूँ।' चित्तोर ये चित्तोर क्या होते हैं सीमा? उर्मी महावर में सींक डालते हुये बोली - अरे बाबा लोकचित्र बनाना दीवाल पर या तो आँगन में बनाये हैं न वही। अभी देखना घर की दीवालें, बाहर उरैन, दरबाजा, आँगन, सब कैसे सुन्दर-सुन्दर व मांगलिक चिन्हों से सज जायेंगे। तनू ने जिज्ञासा से पूछा उर्मी क्या तुझे लोकचित्र बनाना आता है? हाँ-हाँ क्यों नीं, अच्छा चलो हमारे साथ तुम भी बनाना बड़ा मजा आयेगा। पर मुझे तो ये लोक-चित्र बनाना आता ही नहीं-तनू सकुचाते हुये बोली। अरे ये तो बहुत सरल होते हैं, चल मैं तुझे बताती हूँ, उर्मी तनू को बाहर ले जाते हुये बोली। पीछे-पीछे सीमा रंगों से भरा थाल लेकर आ गई।

उर्मिला ने सबसे पहले सिन्दूर से दरबाजे पर ऊँ लिखा व दरबाजे के एक तरफ सिंदूर से सुरांतिया (स्वस्तिक) बना दिया और तनू से बोली चल तू भी दूसरी तरफ ऐसा ही सुरांतिया बना दे। सुरांतिया देख कर तनू बोली अरे ये तो स्वास्तिक का निशान है, हाँ ऐसा तो मैं भी बना सकती हूँ और सुरांतिया बनाने लगी।

सीमा बोली दीदी मैं भी हाथी, कमल बना दूँ। उर्मिला सीमा को थाल थमाते हुये बोली हाँ-हाँ बना दे जरा जल्दी काम हो जायेगा। बाहर सजाकर जैसे ही तनू उर्मी के साथ आँगन में पहुँची तो दादी तुलसीघरा के पास 'पदचिह्न' बना रहीं थीं। तनू देखते ही बोली – अरे वा दादी आपने तो ये बड़े ही सुन्दर बनाये हैं। ये किसके चरण चिह्न हैं? दादी बोली बेटा ये भगवान विष्णु व लक्ष्मी माता के पद्चिह्न है। पर दादी ये क्यों बनाये जाते हैं? क्योंकि ये शुभकारी होते हैं। इन्हें 'श्रीचरण' भी कहा जाता है। ये पदचिह्न लक्ष्मी का आगमन सहज बनाते हैं इसलिए ये लक्ष्मी का प्रतीक भी माने जाते हैं। इनके अंकन से घर में सुख समृद्धि में वृद्धि होती है। ये जो तुम लोगों ने बाहर दीवाल पर शुभ चिह्न अंकित किये हैं ना, ये सारे के सारे हमारी संस्कृति का हिस्सा है और ये सभी चिह्न लोक हितकारी हैं।

ये लोक जीवन में स्फूर्ति, ऊर्जा व आनन्द का संचार करते हैं। ये सुख-समृद्धि, और सौभाग्य, उन्नति, व विजय के प्रतीक माने जाते हैं। पूजा-पाठ व्रत-उपवास, तीज-त्यौहारों जैसे लोकाचारों में चित्र विधान का कर्मकाण्ड महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ये नीरस जीवन में भी उत्साह भरने की क्षमता रखते हैं। इसीलिए बेटा इन शुभ चिह्नों को तीज त्यौहार के मौकों पर विशेष रूप से बनाया जाता है।



पर दादी ये जो शुभ चिह्न बनाये जाते हैं। इनमें किस चिह्न के क्या मायने होते हैं? अरे तनू बेटा हर आकार का अपना अलग-अलग महत्व होता है! हर चिह्न के अपने कुछ फल यानि कि शुभ संकेत होते हैं जैसे तुम लोगों ने बाहर दरबाजे पर जो सुरांतिया (स्वास्तिक) बनाया है। दरअसल ये केवल शुभ या कल्याणकारी ही नहीं है। बल्कि यह वह चक्र है! जिससे इस सृष्टि की रचना हुई है। यही वजह है कि (स्वास्तिक) सुरांतिया हमेश घड़ी की सुई की दिशा में बनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि यही सृष्टि के आगे बढ़ने की दिशा है। सुरांतिया को श्री गणेश जी का रूप भी माना जाता है। इसकी चार भुजाओं को चार आश्रमों के प्रतीक के रूप में भी देखा जाता है। ब्रह्मचर्य आश्रम, दूसरा गृहस्थ आश्रम, तीसरा वानप्रस्थ आश्रम और चौथा सन्यास आश्रम। सुरौतिया के केन्द्र में बिन्दु हैं बिन्दु आकार ब्रह्मा आदि के रूप माना जाता है। वैदिक धर्म के अनुसार सुरांतिया की चार भुजाओं का आशय चार दिशायें व उनके चारों देवताओं का प्रतीक रूप भी माना गया है। ये चार देवता है अग्नि, इंद्र, वरुण, व सोमदेव।

ये सुरांतिया चार पुरुषार्थ, चार वर्ण, चार लोक, चार वेद, चार देवों का भी प्रतीक हैं। ये लोक का शुभंकर चिह्न है। इस में सृष्टि के सुख और सब के कल्याण की भावना निहित है। सुरांतिया में देवताओं से प्रार्थना की जाती है कि केवल स्वतः के लिए नहीं, समाज और समस्त लोक का कल्याण हो। सुरांतिया का अर्थ है शुभ की सत्ता बनी रहे। यह जीवन पर पड़ने वाले बुरे ग्रहों के प्रभाव को समाप्त कर अच्छा प्रभाव डालता है। यह लक्ष्मी, समृद्धि, सौभाग्य का भी प्रतीक माना जाता है।

भविष्य पुराण में कहा गया है कि भगवान विष्णु का सुदर्शन चक्र और भगवान शिव का त्रिशूल भी सुरांतिया ही है। पद्म पुराण में कहा गया है कि यदि कोई स्त्री चतुर्मास में देव प्रतिमा के सामने सुरांतिया बना कर पूजा करे तो उस स्त्री का सुहाग अखण्ड रहता है।

यह सर्वदा मांगलिक एवं मुक्तिदायक है तथा किसी न किसी रूप में सारे विश्व में बनाया या अपनाया गया है। अरे वा दादी आप ने तो सुरांतिया के बारे में बहुत अच्छी-अच्छी बातें बताई, अच्छा दादी इस सीमा ने जो दरबाजे पर हाथी और कमल बनाये हैं। इनको क्यों बनाया जाता है?

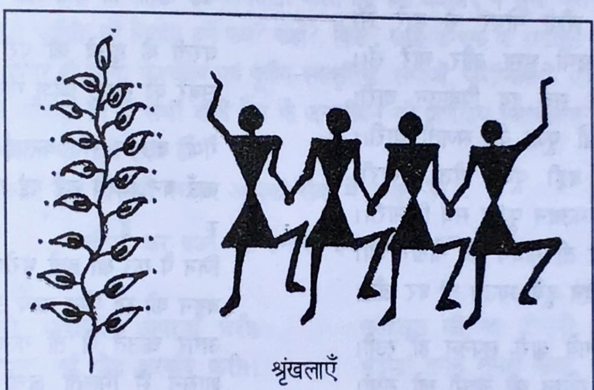
बेटा भारतीय जीवन प्रणाली का भाव सौन्दर्य दर्शाने वाला महान प्रतीक है कमल। इसे भगवान विष्णु व लक्ष्मी जी का भी प्रतीक कहा गया है। कमल सदैव सूर्य उगने पर ही खिलता है। इस प्रकार कमल अंधकार से उजाले की ओर जाने का मार्ग दर्शाता है। कमल सुन्दरता, शान्ति, सद्भावना बुराइयों से मुक्ति का प्रतीक भी माना जाता है। यह कीचड़ में खिलकर भी कीचड़ से दूर रहकर वातावरण में सुगंध फैलाता है और हमें प्रेरणा देता है कि हम विषम परिस्थितियों में रहकर भी अपने कामों और व्यवहारों में प्रेम बांटते हुये आगे बढ़ सकते हैं। कमल में सौन्दर्य, सुचिता, कोमलता तथा सहनशीलता की शक्ति विद्यमान है। भगवान विष्णु कमल हस्त, महालक्ष्मी, ब्रह्मा आदि देवता कमलासन पर विराजमान हैं। यदि हम कमल के गुणों को अपने जीवन में अपना लें तो हमारा जीवन सुखों से भर जायेगा।

और दादी 'हाथी बाबा टन गणेश' क्यों बनाये जाते हैं? चुन्नू ने भोलेपन से पूंछा दादी चुन्नू को गोद में बिठाते हुये बोलीं अच्छा अच्छा बेटा हाथी के बारे में भी बताती हूँ। हाथी को तो पुराणों में भी पूजित बताया गया है। ऐरावत हाथी की पूजा तो सभी महालक्ष्मी जी के दिन करते ही हैं। ये बुद्धि, चातुर्य, और ऐश्वर्य, सुदृढ़ता, तथा शक्ति और देवीय ऊर्जा का प्रतीक भी माना जाता है। दीवार पर इस का चित्रण करने से बुद्धि, शक्ति, व ऐश्वर्य में वृद्धि होती है। अरे वा हाथी इतना शुभकारी होता है और दादी अपनी दीवार पर ये श्रीफल और कलश क्यों बने

है? उर्मी के पूछने पर दादी बोलीं - भारतीय संस्कृति में नारियल एक ऐसा फल है जिसे अधिकांश देवाताओं को चढ़ाया जाता है। अपनी संस्कृति में तो कोई भी शुभ कार्य नारियल बिना संभव नहीं है। इसे श्रीफल अर्थात लक्ष्मी, तेज, संपत्ति प्रदान करने वाला फल माना गया है। और कलश तो सभी मांगलिक व पूजा कार्यों में रखा जाता है! इसमें जल, दूव, आम्रपत्ती, पंचरत्न, डालकर श्रीफल खड़ा करने के पश्चात ही कलशपूर्ण माना जाता है। कलश के बारे में कहा गया है कि -

कलशस्य मुखे विष्णु,
कंठे रुद्र समाश्रिताः
मूले तस्य स्थितो ब्रह्माः,
मध्ये मातृगणाः स्थिताः।।

इस प्रकार इस छोटे से कलश में सर्व वेद, सप्त सागर, सप्त द्वीप, सप्त सरिता, धात्री, चार वेद, गायत्री, सावित्री, सभी को एकत्रित किया गया है। वास्तु कला में कलश मंदिरों में गुबंदों के रूप में दिखता है। कलश यानी जीवन रूपी जल एवं प्राण रूपी ज्योति धारण करने वाला देह है। जल से भरा कलश प्यासे की प्यास बुझा कर उसे तृप्ति देता है। हमारा जीवन कलश भी सतकर्म, ज्ञान और प्रेम से भरा होना चाहिए, बेटा!


श्रृंखलाएँ

दादी ये जो आपने दरबाजे को बैल, बूटों और कई मोरों, मनुष्य आकृतियों से सजाया है। ये तो बड़ा ही प्यारा लग रहा है दादी ये तो मैं भी आपसे बनाना सीखूंगी, उर्मी दादी से लिपटते हुए बोली। हाँ-हाँ बेटा सीख लेना, सीख लेना। दादी ने हंस कर कहा और हाँ ये जो मैंने पत्ती फूल, मोरें, मनुष्य आकृतियाँ बनाई हैं ये श्रृंखलायें हैं श्रृंखलायें। जब भी कोई चित्त, आकृति जैसे मोर, तोता, फूल, पत्ती, हाथी, मछली या फिर मनुष्य आकृतियाँ या कोई भी चित्र पंक्तिवद्ध करके बनाई जाती हैं एक श्रृंखला में तो उन चित्रों को श्रृंखलायें कहते हैं। श्रृंखलायें भारतीय संस्कृति के मूल तत्व संस्कार एवं धारणाओं की कड़ी का प्रतीक हैं। श्रृंखलायें यह एक समन्वय सूचक चिन्ह है। एक दूसरे से जुड़े रहने का संकेत श्रृंखलाओं से हमें मिलता है। एक अकेला व्यक्ति जो काम नहीं कर सकता वह मिल-जुलकर करने से संभव हो जाता है। ऐसा माना जाता है कि जिस घर के दरबाजे पर श्रृंखलायें अंकित की जातीं हैं। उस घर में प्रेम, एकता, समृद्धि तथा सुख शान्ति और उन्नति सदैव बनी रहती है।

तनू गेरू रंग की सींक से घोलते हुये बोली और दादी इन बुन्देली लोक चित्रो में ये कौन से रंग उपयोग किये जाते हैं? बेटा लोक चित्रों के मूल रंग गेरू, खड़िया, हल्दी, चावल, सिंदूर, कोयला, व पत्तों के रंगों के रंग होते हैं। गेरू और खड़िया तो आदिम रंग हैं। विभिन्न रंगों का प्रभाव मानव शरीर पर सहज रूप से होता है। हर रंग की अपनी प्रकृति व स्वभाव होते हैं। आपके मन में आने वाले विचारों और भावनाओं का नियंत्रण विभिन्न रंगों से प्रभावित होता है। मानसिक क्षमताओं का बोध भी रंगों से किया जा सकता है। लोक चित्रों में अधिकांशतः सफेद, लाल तथा पीले रंगों का ही प्रयोग किया जाता है जो कि क्रमशः ज्ञान, सत्य, प्रेम, अनुराग, उत्साह, वीरता, प्रफुल्लता, स्वर्ण, व विस्तार के प्रतीक माने जाते हैं।

बुन्देली लोक चित्र उपासना और फलप्राप्ति के बीज हैं। इनसे जीवन स्वस्थ्य, सुन्दर, अभाव रहित, और निरोगी रहता है। इनसे जीवन हर दृष्टि से संरक्षित, सुरक्षित, मंगलकारी बना रहता है तथा इनके द्वारा मनुष्य व प्रकृति के बीच अटूट संबंध बना रहता है। इन लोक चित्रों को देखने मात्र से ही मंगल भावनाओं का संचार होता है। इन्हें बना कर मन की एकाग्रता, और तल्लीनता, रंगों का संयोजन, कलात्मक दृष्टि सहज ही प्राप्त की जा सकती है। इन लोक चित्रों की सबसे बड़ी उपादेयता यह है कि इन चित्रों के माध्यम से परिवार टूटने नहीं पाते ये हमारी परम्पराओं, संस्कृति, सभ्यता को सहेज कर पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ातीं चलतीं हैं। मेरी माँ ने अपनी माँ से सीखी थी। माँ से मैंने! और अब आप से मैने सीखी हैं - उर्मी हंसती हुई बोली, और तुम से तुम्हारी बेटी सीखेगी दादी झट से बोली। क्या दादी आप भी न उर्मिला शर्माते हुये बोली।

इतने में भाभी की आवाज सुनाई दी, दादी पूजा का मुहूर्त हो गया! सब लोगों ने मिलकर पूजा की खूब सारे पकवान खाये, ढेर सारे दिये जलाये। इन जग मगाते दियों ने अमावस्या की रात को पूर्णिमा के उजाले में बदल दिया।

दो दिन बाद उर्मी व तनू नम आँखों से फिर अपने सफर पर निकल पड़ी ढेर सारी सुखद यादों के साथ, चलते-चलते दादी ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा - तनू बेटा अगली बार छुट्टियों में फिर गाँव जरूर आना। उर्मी झट से बोली - नहीं दादी अगली बार तो हम दोनों इसके शहर जायेंगे शहर। तनू ने बात काटते हुये कहा - नहीं नहीं मैं फिर आऊँगी दादी जो उपहार आप से मुझे मिले वो ज्ञान का उपहार भला शहर में कहाँ, वह तो आप जैसे बुजुर्गों की गोदी में ही है। जिन्हें लेने मैं फिर-फिर गाँव आप से मिलने जरूर आऊँगी।

- एफ-७, गीत बंगले, फेस-२,
दुर्गेश बिहार जे.क. रोड, भोपाल

अंधेर

-लक्ष्मी प्रसाद गुप्त 'किंकर'

सपनन में लौ नइं देखो अंधेर जौन जौ हो रओ।
सबरे कौ सबरौ प्रदेश गाँवन की लक्ष्मी खो रओ।।

पाँच साल के पैल हतो तो जो प्रदेश कौ मुखिया।
साँसी पूँछौ ऊनें कर दओ गउ माता खौं दुखिया।।
जानें बोटन कौ भूँकौ तो के ऊनें का सोची।
कै तौ ऊकी मति मर गई ती कै हो गइ ती ओछी।।
गउवन कौ हक छुड़ा लओ गउचर पट्टन में बाँटी।
गउवन की अब दशा देखलो उनपै बज रइ लाठी।।
गैयाँ जुगन जुगन सें जीनें अपनौ दूद पिवाओ।
बैला दये खेती खौं पुरखन खौं लौ पार लगाओ।।

खाद भूल गओ है घूरे कौ आज मान्स बिष बो रओ।
सबरे कौ सबरौ प्रदेश गाँवन की लक्ष्मी खो रओ।।

धरती बाँज न होबै जीके गोबर के डारे सें।
ऐसी जा पल जात लक्ष्मी भुसा और चारें सें।।
गैयाँ और भैंसियाँ जे सब दूद पिबाउन वारीं।
हरचट और द्वासती खौं पूजा कीं सजतीं थारीं।।
पूजन में तौ सबसें बड्डी पूजा होत दिवारी।
घर घर पुजत सबइ कैं गउधन पूजत सब सिंसारी।।
गाँवन गाँवन में गउचर ती गाँवन की गौंखर खौं।
दिन भर चर कैं गैयाँ दिन डूबें आउत तीं घर खौं।।

रुँदें मिटीं बरेदी मिट गये चारौ सपनन हो रओ।
सबरे कौ सबरौ प्रदेश गाँवन की लक्ष्मी खो रओ।

रातन पानी भरो मान्स पानी पीबे खौं तरसो।
गउयें दूर भगा रये जीके भागन पानी बरसो।।
उतै मुख्यमंत्री तौ बैठो खूब घोषणा कर रओ।
नैचे के अधकारी उर नेतन कौ भाग सुदर रओ।।
लुगुआ होय जौन सो अब जा रोकै सत्यानाशी।
मिटवे सैं बचबै किसान उर गउ की कटबै फाँसी।।
जरिया ठोकें मंत्री निकरत जौ मंत्री पशुवन कौ।
जब जाने जब लेखौ होवै ई गउ के असुवन कौ।।

का कल्लेय प्रदेश आज जब जिला-प्रशासन सो रओ।
सबरे कौ सबरौ प्रदेश गाँवन की लक्ष्मी खो रओ।।

इनकी श्राप लगै तौ खेती बनी बनाई मिट जै।
ऊपर सैं पथरा बरसै तौ धरती लौ जा कुट जै।।
गैयाँ जें गाँवन में रन दो इन खौं ना हँकवाव।
साल समैया मिली मसा कैं आफत न बुलवाव।।
दिन उर रात एक करकैं जा खेती करत किसान।
सो ईकौ उजार ना होबै जौ भी दैनें ध्यान।।
अपने प्यारे गैयाँ बछवा इनखौं भुसा चराव।
घर घर बाँदौ गैयाँ इनकौ दूद प्रेम सैं खाव।।

मैं तो इन गउवन के गुन की गुन गुन माला गो रओ।
सबरे कौ सबरौ प्रदेश गाँवन की लक्ष्मी खो रओ।।

धन्य धन्य रे पटवा तैंनें गउ की खबर करीती।
गउवन ने गउचर में ठाँड़ी ठाँड़ी फसल चरीती।।
धोकौ दओ देश खौं जिनने जा गउचर बटवाई।
सिर्री हो गये ते सबरे तैसीलदार पटवाई।।
पशुअन की लेखौ जोखौ कागज भर पै ना लेखै।
मुखिया होय जिले कौ ऊ अब दशा जिले की देखै।।
गैयाँ राई राई भरे लवइया लै कै जा रईं।
गउ माता की दशा देख धरती माता पछता रईं।।

धरती के डुगबे कौ पूरौ इन्तजाम सौ हो रओ।
सबरे कौ सबरौ प्रदेश गाँवन की लक्ष्मी खो रओ।।

गैयाँ बछवन संग कसाई खाँनन हँकतीं जा रईं।
कउँ बन बिरवै ठर्र दईं गईं सो असुआ ढार रमा
र इ । ।
जिन पै गउ खौं हतो भरोषौ बे लौ गउ के ना भये।
बड्डन की सो कौन काय उननें लौ ढोर हँका दये।।
अगर चाउते जे तौ गउधन गाँवन गाँवन रातो।
शासन सैं मिलतो खर्चा के पंच्यात में जातो।।
जिलन जिलन में सबइ मनइ जो जिलाधीश लौ जाती।
बटी बटाई गउचर लौ जा गउवन खौं मिल जाती।।

तीन लोक के मालिक देखौ! धरती पै का हो रओ।
सबरे कौ सबरौ प्रदेश गाँवन की लक्ष्मी खो रओ।।

जो मोरे प्रदेश कौ सिजरा देखौ सबइ प्रदेश।
जौ कातन में चमक लगत कै जौ गाँधी कौ देश।।
किलपा किलपा गउधन भारत कतल करत ढोरन कौ।
नैवती कर रये बाढ़ और सूका कौ कउँ ओरन कौ।।
क्रूर कतलखानन खौं देख देख कै भारत रो रओ।
जौ मोरे गौतम गुपाल की धरती पै का हो रओ।।
संसद में सो रये नेतन की नींद कबै जा टूटै।
कय जब जा धरती माँता लौ सबइ मनइ पै रूठे?

जौ अंधेर मिटा दो जौ भारत के प्रान निचो रओ।
सबरे कौ सबरौ प्रदेश गाँवन की लक्ष्मी खो रओ।।

– ईशानगर, जिला छतरपुर

चौपट कर दओ देश

- भानुप्रताप शुक्ला 'भानु'

(आजादी के पूर्व तो देश केवल राजनैतिक पराधीनता का ही शिकार था, पर अब तो सांस्कृतिक एवं आर्थिक पराधीनता की ओर भी ढकेला जा रहा है। जनसामान्य को, उसकी गौरवमयी संस्कृति से विमुख कर, एक ऐसी अपसंस्कृति के मोहजाल में फँसाया जा रहा है जो उसे उसकी अपनी धरती से ही काटे दे रही है। भौतिकतावादी अभिजात्य वर्ग तो आज अपनी संस्कृति को स्वीकार करने में भी अपनी हेटी समझता है। पाश्चात्य प्रचार तंत्र के द्वारा हमारी गौरवमयी संस्कृति पर जो कुठाराघात किया जा रहा है, उससे स्वयं अपने को, और विशेष कर, इस नई पीढ़ी को बचा पाना बड़ा असम्भव सा लग रहा है। आजादी के पश्चात् देश के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नगरीय, ग्रामीण ढाँचे में जहाँ-अप्रत्याशित परिवर्तन हुआ, वहीं मानव-जीवन एवं उसके, आचार-विचारों में, रहन-सहन एवं आस्थाओं में, वेशभूषा तथा धारणाओं में भी अन्धाधुन्ध क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है।

प्रगति बनाम 'उत्थान' और 'विकास' की मिथ्या चमत्कारी चकाचौंध से आज नवोदित पीढ़ी की न केवल आँखें, बल्कि बुद्धि एवं सोच-शक्ति भी चौंधिया गई है। नई पौध इस अंधाधुन्ध अनुकरण का परिणाम और हानि सोचे बिना ही, पाश्चात्य संस्कृति के उन्माद में अपनी मंगलकल्याणमयी, संस्कृति की स्निग्ध शीतल छाया को छोड़कर, विधरमी 'ताड़तरु की चपल-चंचल, अस्थिर, क्षणिक-छाया के आश्रय में निश्चिन्त पाँव पसार कर सो रही है। पता नहीं ये। नशीली नींद, उसे कभी सचेत कर जगायेगी भी, या सदा को सुला देगी।

आज हम खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, आचार-विचार, रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, शिक्षा-सदाचार, धर्म-कर्म पाश्चात्य अपना चुके हैं। उनके दूरगामी परिणामों की उपेक्षा एवं अनदेखी करते हुए हम बवन्डर में सूखे पत्ते की भाँति, लक्ष और दिशाहीन उड़ते चले जा रहे हैं। पता नहीं ये 'आँधी' की नियति हमें कब? कहाँ?, किस? खाई-खन्दक या रसातल में ढकेलेगी? और उसका अंजाम क्या होगा? इसे तो भविष्य, या ईश्वर ही जाने। पाश्चात्य एवं पूर्वीय-संस्कृतियों, समाजों, परिस्थितियों, एवं प्राकृतिक परिस्थितियों, जलवायु आदि में ठीक ३६ का विरोधी आँकड़ा है। ये सभी चीजें देश के जनजीवन की प्राणवायु (आक्सीजन) हैं, इन्हें दूसरों की अपनाकर कोई राष्ट्र जिन्दा नहीं रह सकता। यह ध्रुव सत्य है।

इन्हीं बिन्दुओं के मद्देनजर कुछ पंक्तियाँ रचकर आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं)

चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(१)

सुना सुनाकें काम कहानी, चरितहीन अपराध भरी।
ई!टी.वी. ने दिखा 'सीरियल' नई पौध बरबाद करी।।
जर्जर कर दओ सबई हमारी 'आर्य संस्कृति' कौ चोला।
'लैला-मजनू' भये भारत के, 'पारवती-शंकर भोला'।।
सब मर्यादा, शील बोर दओ, इनके प्रगति विचारों ने।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(२)

बारे, बूढ़े सब आशिक हैं, हाय! तुमें का हाल सुनायें?
सब टी.वी. से चिपके बैठे, मौंड़ा-मौंड़ी आँख गड़ायें।
खीस निपोरें, बाप-मताई, तनक उमर कौ भेद न लेखें।
हाव, भाव अश्लील अदायें, बड़े गौर सें सबरे देखें।।
लाज-शरम सब बोर बहा दई 'धरावाहिक' धारों नें।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(३)

धारमार, हत्या, डाँके के, देख दृश्य सब हर्ष-विभोर।
घर घर पैदा कर दये इन्नें, छली, कृतघ्नी, हिंसक, चोर।।
अब लौ ग्रसें हती जा 'तनखाँ', अब 'चरित्र' हाँ हो गई टी.वी।
बुथ गये 'क्षय' की बीमारी सें, पुरा-पड़ोसी, बच्चा बीबी।।
घूम रहीं बन कें 'अभिनेत्री', बहुयें बीच बजारों में।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(४)

छुआछूत की जा बीमारी, ईसें यार! बरकते रईयौ।
भईया! हमनें तुमसें कैदई, पाछें दोष हमें ना दईयौ।।
जा! प्लेग, हैजा सी फैली, फूले, फलते चमन उजारे।
पश्चिम छोड़, आज पूरब में, ई! ने अपने पाँव पसारे।।
वातावरण प्रदूषित कर दओ, संक्रामक बौछारों नें।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(५)

करकें नकल विदेशी हमनें, सहज सुलभ सुविधा ठुकराई।
भौतिकता के चक्कर में पर, साँची चिर-सुखशान्ति गँवाई।।
चमत्कार की चकाचौंधने, ज्ञान दृष्टि हर लई हमारी।
अपनें पाँवन, उठा कुलरिया, हमनें अपनें हाँतन मारी।।
लूला-लँगड़ा हमें बना दओ, इनके कपट विचारों ने।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(६)

धोती, कुर्ता, साफा तज कें, 'गोरन' की भूषा अपनाई।
पेन्ट, शर्ट डटकें 'बाबूजी' बन गये बाँध गरे में टाई।।
करिया अक्षर भेंस बराबर, पक्के मूसरचन्द, धुरईयाँ।
हर हाँकें हारन में सब दिन, कछू चराबें भैंसें, गईयाँ।।
लैंय रेडियो सबदिन सुनबें, फिल्मीगीत बहारों में।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(७)

खान पान, दिनचर्या, फैसन, सबरी पश्चिम की अपनाई।
सात्विक भोजन, भक्ति-भजन की, वैदिक मर्यादा ठुकराई।।
भूल गये मंदिर का मारग, गिरजाघर झुक झाँक रहे हैं।
'राम-कृष्ण' से मोड़ मुखौटा, ईसा का मुख ताक रहे हैं।।
छोड़ धार्मिक, घरघर फिल्मीं चित्र टँगे दीवारों में।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(८)

घूँघट की मर्यादा मिट गई, बिटियाँ बनी फिरें, नारीं।
जेठ, ससुर की मूँछें बारें, खसमन हाँ देबें गारीं।।
चुटकीं, छला-छिगुरियन नईंयाँ, छोरें लटें, उगारें केश।
उल्टे पल्लू, नंगे पाँवन, धरें फिरें विधवा कौ भेष।।
शतपीढ़ी की शाख वोर दई, इनके बद आचारों नें।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(९)

परिवारिक सुखशान्ति नदारद, सबदिन लरबें मुंश लुगाई।
बऊ बेटा सें खट पट करकें, न्यारे हो गये बाप-मताई।।
कोउ काउ की अदल न मानें, हीर पीर के लदे जमानें।
पतनी घुसी परोसिन के घर, सबदिन पति के देत उरानें।।
मर्यादा सब दीमक खा गई, फरी पींठ सहारों नें।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(१०)

डार विदेशी खाद-रसायन, ऊसर कर दई सब धरती।
कैसें पलत रखत जौ! बोलौ? बचे न कउँ जगल, परती।।
क्वाँर, बरसना मेघ बरस रये, पर रंये सूका, और दुकाल।
गाँव छोड़ दिल्ली हाँ भग रये, खस्ता है कृषकन के हाल।।
मेंन्त मजूरी की आशा कर, कछु जा बसे बजारों में।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(११)

मिट गईं खन्तीं, खोंड़ा, बन्डा, कर डारो कुठियँन कौ नाश।
नाज भरो बोरन, ड्रामन में, मिलामिला गोलीं सल्फास।
डार पुटास, डी.ए.पी., सबरौ, खेतन भर कौ तत्व निचो लओ।
बारामासी फसलें बैकें, धरती हाँ गईया सौ दो लओ।।
उत्पादन की खाल खींच लई, सब्जी, तिलहन, दारों नें।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(१२)

उड़ी धज्जियाँ मर्यादा कीं, सबरे हो गये, सड्डम गड्डा।
देव और विद्या मंदिर भये, जुआ और दारू के अड्डा।।
शादी - व्याह, पर्व, जन्मों पर होते भंग भोज आयोजन।
भूल गये टाठी कौ खाबौ, अरु पलाश पत्तल कौ भोजन।।
मर्यादा की लीक मिटा दई, फैशन के फगवारों नें।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(१३)

वाशिंगटन बनी है बम्बई, दिल्ली लंदन के उपमान।
खजुराहो हो रहा अयोध्या, उतरत लागे 'पुष्प-विमान'।।
'रतिकौशल' की पूजा हो रई, त्याग, तपस्या करै गुहार।
धर्म, भक्ति आचार सभी पै, पड़ी आज पश्चिम की मार।।
फूँक दई साधू की कुटिया, धूनी के अंगारों नें।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(१४)

मातपिता, गुरु बन्दन तज कें, पुत्र करें पतनी अभिवन्दन।
बेर, बमूरा बो रये बंशज, काट काट मलयागिर चन्दन।।
महुआ, आँमन के बागन में, 'यूकेलिपटस' करें विहार।
बेला, तुलसी के गमलन में, 'मनीप्लान्टन' की भरमार।
हो रई खूब देश की उन्नति, आज पोस्टर, नारों में।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों में।।

(१५)

अपनी वैदिक मर्यादा कौ, वेदी पै बलिदान चढ़ा दओ।
गुटका, सिगरिट, चाय, सुरा कौ, घर घर घोर लगा चश्का दओ।।
संयम, नियम, मान-मर्यादा, सब समाज की बोर बहाई।
कहनें को हम, हिन्दुस्तानी, मगर आचरण से ईसाई।।
गूँज रहे चहुँ ईसा के स्वर, मठ, मन्दिर, गुरुद्वारों में।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(१६)

हमने हर तकनीक विदेशी, आँख मूँद करकें अपनाई।
पकर भगे अंधन कौ कन्धा, देखी कुँआँ, बेर न खाई।।
घोर पतन के गिरे गर्त में, तौऊ मूसरचन्द न चेते।
बड़े चाव सें फिर भी मूरख! 'मधुर जहिर' की चुश्की लेतें।।
ई फैशन के आशिक हो कें दै दये प्रान हजारों ने।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(१७)

शारीरिक श्रम की महिमा सब, भूल गई नव युग की पीढ़ी।
शैशव ऐमालन में फँसकें, खा रओ गुटका, पीरओ बीड़ी।।
सदाचार कौ काढ़ जनाजौ, दै रओ भ्रष्टाचार दुहाई।
पेट भरैं कौ पाठ पढ़ा रये, बेटन हाँ, सब बाप मताई।।
ऐसी जमीं बेशरम दईया! जा! 'नई पौध कछारों में'।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(१८)

बैलन कैसी रकम गिनाकें बेंच रहे बेटन हाँ बाप।
कैसौ चलो जमानों दईया! बिटिया भई बंश हाँ शाप।।
करा भ्रूण हत्या अवला की, घोर पाप, व्यभिचार बढ़ाओ।
भर ज्वानी में पकर पकर कें, बछवन सौ बदिया करवाओ।।
जीबे के अरमान कुचर दये, नई चलन की मारों ने।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(१९)

हँड़ियाँ और करइयाँ गायब, कूँद कुकर नें, धाक जमाई।
कण्डा-ईंदन हाँ चकमा दै, 'गैस' रसोई में घुस आई।।
भोजन के रस और रसायन, हो रये फैशन पै बलिहारी।
अण्डा, मछली, माँस गुटक रये, बैठे पण्डा और पुजारी।।
धूम मची चहुँ, मधुर पौष्टिक भोजन की अखबारों में।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(२०)

पौंर, अटारीं सब फो डारीं, खपरैलन की मिटी निशानी।
छोड़ मधुरजल, जे! मटका कौ, पियन लगे सब 'फ्रिज' कौ पानी।।
हीटर, कूलर की कोठिन में, सो रये आज देश के लल्ला।
चार गधा, बैला से जुत रये, खा रये बैठे बीस निठल्ला।।
बची न कौनउ कौम अछूती, कलह मची परिवारों में।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(२१)

छोड़ पालकी, पीनस, घोड़ा जीप कार में बैठे दूला।
बज रये बैण्ड बनारस बारे, भूल गये ढपला-रमतूला।।
घुरवन के बदलें टीका में, बड़े चाव सें नचें बराती।
उचकें डुकरा घूँघट डालें, करबें 'नोट' निछावर नाती।।
आन बान मर्याद बहा दई, बस इनके! आचारों ने।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(२२)

सदाचार औ धर्म उठा के, स्कूलन सें दूर ढकेलो।
भोगवाद कौ पाठ पढ़ा गये, 'मस्त रहो, नित खाओ खेलौ।।'
वेद, शास्त्र सन्तों की सारी, सीख और सिद्धान्त बहाकें।
नष्टकरी 'गुरुकुल' शैली, पश्चिम की पद्धति अपनाकें।।
शिक्षा की सब शकल बदल दई, 'बापू' के हत्यारों ने।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(२३)

हो गओ असली रक्त नदारद, बनीं वर्णशंकर सरकारें।
धर्मनिष्ठ धुन रहे शीश नित, चाटुकार चमचन के मारें।।
भ्रष्टाचार लगा छाती सें, सदाचार हाँ मारो धक्का।
गद्दी हो गई बपौती, सत्ता में घुस परे उचक्का।।
बुरी तरह डस लिया राष्ट्र को, इन विषधर मनियारों नें।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

(२४)

गजरा, हार उतार पहारे, पहना दी जूतों की माला।
थोप संस्कृति फूहड़ अपनी, बन्टाढार राष्ट्र कर डाला।।
अब भी चेतो 'शूर सपूतो' स्वाभिमान तुमको समझाता।
लख कें नैतिक पतन तुम्हारा! विलख रही है 'भारत माता'।।
श्रोणित बन कर बहते देखो? अश्रु वेदना धारों में।
चौपट कर दओ देश हमारौ, इन पछयार बयारों नें।।

– संदीप सदन, कंचनपुरा, निवाड़ी, जिला टीकमगढ़

अंग्रेजों के दंश को समेटे बुन्देली बोल : एक बानगी

- हरगोविन्द तिवारी

अंग्रेज यहाँ व्यापार के लिये आये मगर दुर्योग से उन्होंने यहाँ अपना राज स्थापित कर लिया जिसे यहाँ के लोगों ने भारी झेला। इस दौरान बुँदेलखण्ड के लोगों ने जो अनुभूति की भला उससे यहाँ का लोक साहित्य अछूता कैसे रह सकता था? यहाँ के लोकमन ने जो अनुभूतियाँ की उसे बुन्देली लोकगीतों की एक स्वतंत्र विधा के माध्यम से अपने उद्गार व्यक्त किये जिनके प्रमुख बोल बानगी स्वरूप यहाँ प्रस्तुत हैं –

- भरत भूमि पै आज, उद्यम के मिस गोरा आ गये।
- बिछो अंग्रेजी जाल, गोरा कुचालें खूबई चल रये।
- बच कें रईयौ यार, गोरा गांव में आ गये।
- मजले लंबरदार, गोरों के सँगै आज हो गये।
- गोरा पाछूं परै, दुष्टन में लग जा लुगरिया।
- गोरा मूंड़ पै चड़े, दुष्टन नें खा लई खपरिया।
- गोरी पलटन नें आज, लूट लई प्यारी बजरिया।
- मोरे जोत की जमीन, गोरों ने जबरई छुड़ा लई।
- फिरंगी बैरन सरकार, महसूल वसूल खूबई कर रई।
- अंग्रेजी सरकार, गाँव के किसानन खौं लूट रई।
- लूटे-लूटे किसान, गोरन नें सँगै राजन लूट लये।
- अंगरेजन कौ राज, करील के कांटे सौ जानी।
- गोरा गाँव में घुसे, दहशत सबई ने खूब जानी।
- बहु-बिटियन की लाज, पापी अंग्रेज जबरईं लूट रये।
- बैरन गोरी सरकार, तैनें गजब करडारो।
- गोरन कौ बतकाव, कान सैं कनेऊ सौ झारो।
- अंगरेजी है राज, सपनन में सुख नईं दिखानें।
- प्यारे लंबरदार, गोरन खौं काये पछियानें।
- मोरे माते उठो, दुष्टन खौं चलकैं समझाईयौ।
- गौरन के सँगै लगे, दुष्टन खौं माते समझा रये।
- बुंदेली वीरन कौ वास, बच कैं बुँदेलखण्डै रईयौ।
- इतै चल है नैं राज, गोरा विलायत चले जईयौ।
- भलो चाहौ अंगरेज, चले जाव तुम भारत छोड़ कैं।
- बुँदेली वीरन उठो, गोरन खौं देश सैं निकार दे।
- भारत कर दे आजाद, वीरन अंगरेजों खौं मार कें।
- गोरन सैं लड़बे तैयार, ठाँड़े बुँदेली वीर भैया।
- हो रई भारी जँग, बुंदेली वीर गोरन सें भिड़ गये।
- बुँदेली वीरों की मार, खाकें कुलाटें गोरा मर रये।
- बुँदेली वीर हो गये शहीद, देश की आजादी के लानें।
- गोरा लूट कैं चले, सोने की भरत चिरैया।

– ६/२७, इंदिरा प्रियदर्शिनी वार्ड, तिवारी मुहल्ला,
शाहगढ़, जिला सागर

सर्वप्रथम बुंदेलखण्ड के कवि-पंडितों ने किया था बिहारी सतसई के दोहों को क्रमबद्ध

- उदयशंकर दुबे

कविवर बिहारी के दोहों के विषय में कहा जाता है कि 'सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर। देखन में छोटे लगें घाव करैं गम्भीर।।' वास्तव में बिहारी सतसई के दोहे भाव और काव्य सौष्ठव की दृष्टि से उच्च कोटि के हैं। यही कारण है कि अब तक बिहारी सतसई की समय-समय पर विभिन्न रसिक कवियों द्वारा लगभग पचपन टीकाएँ लिखी जा चुकीं हैं और कई एक चित्रकारों ने दोहों के भावानुरूप चित्रों का निर्माण किया है। कवि बिहारी बुन्देलखण्ड की धरती के देन हैं -

जन्म ग्वालियर जानियै खंड बुंदेले बाल।
तरुणाई आई सुघर बसि मथुरा ससुराल।।

अर्थात् बिहारी का बुन्देलखण्ड अंतर्गत ग्वालियर में जन्म हुआ, बचपन यहीं पर बीता, उनका विवाह मथुरा में हुआ और वे अपनी ससुराल में ही निवासित हो गये। इस प्रकार बिहारी बुन्देली और ब्रज दोनों संस्कृतियों में पले-पुसे। इसका प्रभाव उनके कुछ दोहों पर पड़ा है। मथुरा से ही वे जयपुर के राजा जयसिंह के दरबार में पहुँचे और उन्हीं के आश्रय में रहकर दोहों की रचना की। लोक में ऐसा कहा जाता है कि महाराज जय सिंह बिहारी के एक एक दोहे पर एक-एक मुहर प्रदान करते थे और उन्होंने ही सर्वप्रथम बिहारी के दोहों को एकत्र संग्रहीत कराया। जयसिंह का शासनकाल संवत् १६७८ (सन् १६२१ ई.) से लेकर संवत् १७२४ (सन् १६६७ ई.) तक है। जिस समय वे गद्दी पर बैठे उनकी अवस्था मात्र दस वर्ष की थी। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि जब जयसिंह की अवस्था बीस-पच्चीस वर्ष की हुई होगी तब बिहारी उनके दरबार में पहुँचे होंगे या कुछ पहले ही उपस्थित हुये तो किन्तु इतना तो निश्चित है कि बिहारी जयसिंह के दरबार में उनके आश्रित थे। कविवर बिहारी द्वारा रचित दोहों का संग्रह स्वयं राजा जयसिंह के आदेश से तैयार किया गया था। उस समय देशी रियासतों में ग्रंथ तैयार करने की एक अच्छी परम्परा थी। यदि किसी कवि पंडित द्वारा किसी राजदरबार में रहकर कोई उत्कृष्ट ग्रंथ की रचना की जाती थी तो उस ग्रंथ की कई प्रतियाँ तैयार कराकर उस राज्य की ओर से अन्य रियासतों के राजाओं के पास भेज दी जाती थी। इस विशिष्ट परम्परा के कारण, ग्रंथ एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाते थे। महाराजा जयसिंह ने भी बिहारी सतसई की कई प्रतियाँ तैयार कराकर पंडितों को भेंट किया था तथा अन्य रियासतों में भेजा था। दतिया (म.प्र.) के प्राचीन राजकीय ग्रंथागार में समय-समय पर लिपिबद्ध की गई बिहारी सतसई की पाँच हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित थीं जिनमें से एक संवत् १७१२ वि. (१६५५ ई.) की थी जो जयपुर में लिपिबद्ध हुई थी। बुन्देलखण्ड के राजघरानों और राजस्थान के रजवाड़ों का पारस्परिक संबंध रहा है। इसका साक्ष्य है एक दूसरे को राजकुमारों के राजतिलक और विवाहादि उत्सवों पर भेजे गये प्राचीन निमंत्रण पत्र एवं खलीते। महाराज जय सिंह (जयशाह) का दक्षिण भारत से लौटते समय संवत् १७२४ वि. में स्वर्गवास हो गया। मुगल बादशाह औरंगजेब ने शिवाजी के भाग जाने के कारण जयसिंह के पुत्र रामसिंह को दण्ड दिया और उसे असम के युद्ध पर भेज दिया।

श्री जगन्नाथदास रत्नाकर ने संवत् १६५२ (१५९५ ई) में बिहारी का जन्म होना स्वीकार किया है तथा संवत् १७२१ वि. (सन् १६६४ ई.) में वृन्दावन में उनके गोलोक वास का उल्लेख किया है। इस प्रकार बिहारी का उनके आश्रयदाता जय सिंह से तीन वर्ष पूर्व निधन होना स्थिर होता है। कहना न होगा कि बिहारी का जन्म एवं मृत्यु दोनों संवत् अनुमानाश्रित हैं। क्योंकि अपने इसी ग्रंथ में रत्नाकर जी ने वृद्धावस्था में बिहारी के बुंदेलखण्ड जाने की चर्चा की है - 'यदि बिहारी का बुन्देलखण्ड जाना सत्य है तो वह वहाँ संवत् १७३० वि. (सन् १६७३ ई.) के आसपास गये होंगे। इस अनुमान का यह कारण है कि उस समय उनकी अवस्था ७५-८० वर्ष की रही होगी।'' बिहारी का जन्म बुन्देलखण्ड की धरती पर हुआ था। हर व्यक्ति को अपनी जन्मभूमि के प्रति अनुराग होता है। मेरा अपना अनुमान है कि न केवल वृद्धावस्था में अपितु उसके पूर्व भी बिहारी दो-चार बार बुंदेलखण्ड अवश्य आये होंगे क्योंकि बुंदेलखण्ड की रियासतों में कवियों को बराबर आदर और सत्कार मिलता रहा। संभवतः यही कारण है कि सबसे पहले बुंदेलखण्ड के कवि पंडितों ने बिहारी सतसई के दोहों को क्रमबद्ध करने का कार्य सम्पन्न किया। यहाँ पर हम बुंदेलखण्ड के उन कवि-पंडितों की चर्चा करेंगे जिन्होंने बिहारी सतसई के दोहों को क्रमबद्ध किया था।

बिहारी ने स्वतंत्र रूप से दोहों की रचना की थी। उन्होंने अपने द्वारा रचित दोहों को साहित्यिक या वैषयिक क्रम नहीं दिया था। संभव है मुक्तक काव्य होने से उन्होंने उसे ज्यों का त्यों रहने दिया हो। यही कारण है कि समय समय पर कई कवियों ने अपने-अपने ढंग से बिहारी सतसई के दोहों को क्रमबद्ध किया। बुन्देलखण्ड के तीन कवियों १. राम जू, २. पुरुषोत्तम और ३. कोविद मिश्र ने अपनी-अपनी मति अनुसार बिहारी सतसई के दोहों को क्रमबद्ध किया।

१. कविराम जू द्वारा दिया गया क्रम - पं. गौरीशंकर द्विवेदी ने सर्वप्रथम कवि रामजू और उनके द्वारा बिहारी सतसई की तैयार की गई अनुक्रमणिका के विषय में जानकारी दी थी। (बुन्देल वैभव, भाग-२, पृष्ठ २६६)। विद्वानों ने द्विवेदी जी रचित बुंदेल वैभव को आधार मानकर राम जू के विषय में अपनी सम्मति दी है। मुझे रामजू द्वारा तैयार की गई बिहारी सतसई की अनुक्रमणिका की हस्तलिखित प्रति देखने को नहीं मिली। शिव सिंह सरोज में इनके विषय में मात्र इतना

उल्लेख मिलता है कि 'सं. १६६२ में उ. (उपस्थित) इनके कवित्त हजारे में हैं।'' (शिव सिंह सरोज - संपादक - डॉ. किशोरी लाल गुप्त पृ. ४८१, ७८०)। पृ. ७८० पर राम जी कवि का उपस्थित काल सं. १६६२ लिखा है। डॉ. गुप्त ने सरोज सर्वेक्षण में बुंदेल वैभव को आधार मानकर राम जी कवि के विषय में लिखा है - राम जी कवि ७१८/६०२

(३) राम जी कवि-१ सं. १६६२ में उ. इनके कवित्त हजारे में हैं।

सर्वेक्षण - हजारे में इन राम जी के कवित्त थे। अतः सं. १७५० के पूर्व इनका अस्तित्व सिद्ध है। बुंदेल वैभव में इन्हें ओरछा निवासी एवं ओरछा नरेश महाराज सुजान सिंह का आश्रित कहा गया है। संवत् १६६२ को जन्मकाल माना गया और रचना काल सं. १७२०। कहा गया है कि इन्होंने बिहारी सतसई का अनुक्रम लगाया। (बुंदेल वैभव भाग-२, पृ. २६६) विनोद में (४३२) इनके नाम पर बरवै नायिका भेद एवं श्रृंगार सौरभ नामक राम भट्ट फर्रुखाबादी की कृतियाँ चढ़ा दी गई हैं।'' (सरोज सर्वेक्षण, पृ. ६००, डॉ. किशोरी लाल गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १७६६ ई.) ओरछा के राजा सुजान सिंह का राजत्व काल संवत् १७२० वि. से १७२६ वि. तक है। (बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ. १५१-१५३, ना.प्र. सभा वाराणसी संवत)।

अतः रामजू कवि ने संवत् १७२० और सं. १७२६ के मध्य बिहारी सतसई की अनुक्रमणिका तैयार की होगी। डॉ. नगेन्द्र सिंह 'कमलेश' ने भी राम जू के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी दी है। उनका भी आधार बुन्देला वैभव और शिव सिंह सरोज ग्रंथ हैं। उन्होंने लिखा है - 'राम जू, ओरछा (जन्म सं. १६६२, कविता काल १७२०)' महाराज सुजान सिंह के आश्रित और दरबारी कवि थे। इन्होंने कविवर बिहारी लाल की बिहारी सतसई की अनुक्रमणिका लिखी है, अनुक्रमणिका अत्यंत श्रम से तैयार की गई है। इस अनुक्रमणिका के अतिरिक्त श्रृंगार रस में इनकी और स्फुट रचनाएँ भी मिलती हैं। जिसमें राधा ठकुराइन के पायन के तीर कवि उक्ति मंडराती खिसियाती फिरि जाती है, की बात कही गई है। (विन्ध्यांचल का आधुनिक हिन्दी काव्य - डॉ. नगेन्द्र सिंह कमलेश लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद सन् १६७५ ई. पृ. ६६)। शिव सिंह सरोज में राम जू का उक्त छंद इस प्रकार उद्धृत है -

वारि जात वारिजात, दोऊ पारिजात देखि,
प्रबलप्रताप की कुमांच कुंभिलाती है।
आब ना दिखात आफताब सो भुलात देखि,
गालिब गुलाब की गरूर गरकाती है।
'राम जी सुकवि' जाहि देखत प्रकास होत
पाप की प्रनाली पास पास कै बिलाती है।
राधा ठकुराइन के पाँइन के तीर
कवि उक्ति मँडराती, खिसियाती फिरि जाती है।

(शिवसिंह सरोज, छंद १३६४, पृ. ४८१)

डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया' ने बुन्देलखण्ड के अज्ञात रचनाकार ग्रंथ में राम जू कवि का उल्लेख करते हुये उनके द्वारा तैयार की गई बिहारी सतसई की अनुक्रमणिका'' विषयक छः दोहों को प्रस्तुत किया है, जिससे निश्चित होता है कि राम जू कवि ने विषय क्रम से अनुक्रमणिका तैयार की थी। राम जू ने बिहारी सतसई में ७५० दोहों के होने का उल्लेख किया है। संभव है उनके पास बिहारी सतसई की जो हस्तलिखित प्रति रही हो उसमें साढ़े सात सौ दोहे रहे हों किन्तु इतने अधिक दोहों की प्रतियाँ सुलभ नहीं हैं। रामजू ने अपनी अनुक्रमणिका के विषय में लिखा है -

विप्र बिहारी नाम हुव, सो विख्यात प्रवीन।
जिन कवि साढ़े सात सै, दोहा उत्तम कीन।।
बीते काल अपार ते, भये वितक्रम लेखि।
करे अनुक्रम फेर ते, प्रोहित प्रेम विशेषि।।
करे कृष्ण जू नैन के, साठ पाँच घट ईस।
इक खंडित चालीस कहि, मानवती द्वै बीस।।
तीन तीस कहि सुरति के विरहन नौ अरु साठ।
लगन पिचोत्तर जुगत के, दो सै उनसठ पाठ।।
मूक प्रश्न के चार हैं, केस वरन के आठ।
अस्लेष्टक सैंतीस कहि, अन्योक्ति अभि-साठ।।
प्रस्थाइक छै आगरे, चालिस बरने विप्र।
करे अनुक्रम राम जू, जातैं समझौ छिप्र।।

(बुन्देलखण्ड के अज्ञात रचनाकार, पृ. २६८)

इस प्रकार राम जू ने बिहारी सतसई के दोहों का वैषयिक क्रम लगाया और साढ़े सात सौ दोहों की विषयवार संख्या भी दे दी है। उन्होंने सात सौ दोहों के अतिरिक्त पचास अधिक दोहों पर विचार न कर उन्हें भी बिहारी कृत मान लिया। इन अतिरिक्त दोहों पर विचार करने के लिये राम जू कृत सतसई की मूल प्रति का अवलोकन करना आवश्यक है।

राम जू कवि द्वारा बिहारी सतसई की तैयार की गई अनुक्रमणिका की प्रति उपलब्ध न होने के कारण यह कहना कठिन है कि उन्होंने दोहों का क्रम वैषविक रखा था या साहित्यिक। वैसे वे बुन्देलखण्ड के पहले कवि पंडित हैं जिन्होंने बिहारी सतसई की अनुक्रमणिका तैयार की।

२. चंद्रमणि मिश्र उपनाम कोविद कवि - राम जू के पश्चाम् कोविद कवि ने बिहारी सतसई की अनुक्रमणिका तैयार की। नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी की खोज विवरणिकाओं और हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में कोविदमिश्र और उनकी रचनाओं का विवरण मिलता है -

कोविद - वास्तविक नाम चन्द्रमणि मिश्र, ओड़छा निवासी। ओरछा नरेश महाराज उद्योत सिंह और महाराज पृथ्वी सिंह के आश्रित। संवत् १७७७ के लगभग वर्तमान।

मुहुर्त दर्पण (पद्य)	- २६-६४
रमल विचार (पद्य)	- २६-२४३
राजभूखन (पद्य)	- ०६-६२ ए
हितोपदेश (पद्य)	- ०६-६२ बी

(हस्तालिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, खण्ड १, पृ. १६६)

सभा की १६०६, १६२६ और १६२६ ई. की रिपोर्ट में कोविद कृत चार ग्रंथों का विवरण मिलता है। उस समय तक उनके द्वारा तैयार की गई बिहारी सतसई की अनुक्रमणिका ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति नहीं ज्ञात हो सकी थी। आगे चलकर बुन्देलखण्ड के प्राचीन राजकीय ग्रंथागारों में कोविद कवि द्वारा बिहारी सतसई के दोहों की दी गई अनुक्रमणिका की प्रतियाँ उपलब्ध हुई, जिसके आधार पर विद्वानों ने कोविद को सर्वप्रथम बिहारी सतसई के दोहों को क्रमबद्धता देने वाला कवि स्वीकार किया। (कविवर बिहारी - जगन्नाथ दास रत्नाकर, पृ. १७४), ओरछा के राजा उदोत सिंह का राजत्वकाल संवत् १७४१-सं. १७६३ वि. तक है। (बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ. १५४-१५५, गोरे लाल तिवारी) कोविद कवि ने बिहारी सतसई के दोहों को साहित्यिक क्रम देने का प्रयास किया है। कवि ने ग्रंथांत में लिखा है कि -

किए सात सै दोहरा सुकवि बिहारी दास।
बिनुहि अनुक्रम ए भए मति-मंडल सु प्रकाश।।१।।
सतरह सै चालीस दुइ वरषे फागुन मास।
एकादसि तिथि सेत परव बुरहनपुर सुख वास।।२।।
तहँ कोविद सुभ ए लिखे भिन्न-भिन्न अधिकार।
देखत ही कछु समुझियै जिनतैं अर्थ विचार।।३।।
सुनि कवि के सुभ वचन अवगुन तजि गुन लेइ।
जग मैं सो नीकौ पुरुष पुन्य सीख जो देइ।।

उपर्युक्त दोहों में कोविद ने स्पष्ट कर दिया है कि बिहारी दास ने सात सौ दोहों की रचना की थी जो क्रम रहित थे। उन्होंने संवत् १७४२ वि. (सन् १६८५ ई.) में बुरहानपुर में रहते हुए उन सात सौ दोहों को क्रमबद्ध किया। इससे ज्ञात होता है कि कोविद कवि संवत् १७४२ वि. में ओरछा में नहीं थे। बुन्देलखण्ड में यदि कोई बुरहनपुर स्थान हो तो उसकी जानकारी मुझे नहीं है। दक्षिण का बुरहानपुर उस समय प्रसिद्ध स्थान था। स्वयं बादशाह औरंगजेब बुरहानपुर में रह रहा था। अतः मैंने बुरहनपुर को बुरहानपुर ही स्वीकार किया है। जगन्नाथदास रत्नाकर ने 'बुरहनपुर' के विषय में लिखा है - ''इससे विदित होता है कि यह क्रम कोविद कवि ने संवत् १७४२ में लगाया था और वे बुरहनपुर के रहने वाले थे।'' (कविवर बिहारी, पृ. १७५) कोविद कवि के जन्मस्थान के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना तो निश्चित है कि संवत् १७७६ वि. में कोविद कवि ओरछेश उदोत सिंह के आग्रह पर राजभूखन (राजभूषण) और पृथ्वीसिंह के कहने पर भाषा हितोपदेश की रचना की। इन ग्रंथों में राजा उदोत सिंह और पृथ्वी सिंह के पराक्रम का वर्णन मिलता है। (हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज का विवरण, भाग-३, पृष्ठ ३७, और १८५-१८६, संपादक - डॉ. श्याम सुन्दर दास, द्वितीय नवीन संस्करण, संवत् २०५५, ना.प्र. सभा, वाराणसी)। राम जू कवि के बाद कोविद कवि ने बिहारी के दोहों को क्रमबद्ध किया, भले ही उन्होंने उसे ओरछा में न तैयार कर बुरहनपुर (बुरहानपुर) में तैयार किया। इन दोनों कवि पंडितों द्वारा बिहारी सतसई के दोहों को क्रमबद्ध रूप देने से यह पता चलता है कि संवत् १७२० वि. (सन् १६६३ ई.) और संवत् १७४२ वि. (सन् १६८५ ई.) के मध्य बुन्देलखण्ड में बिहारी सतसई ग्रंथ की मान्यता प्राप्त हो गई थी। कवियों के मध्य ग्रंथ का समादर था।

३. परसोत्तम कवि - राम जू और कोविद कवि के बाद बुंदेलखण्ड के परसोत्तम कवि ने बिहारी सतसई के दोहों को अपने ढंग से क्रमबद्ध किया। शिवसिंह सरोज में इसका संक्षिप्त विवरण के साथ महाराजा छत्रसाल से संबंधित एक छंद भी मिलता है। ४६७/४००/२२ - परसोत्तम कवि बंदीजन, बुंदेलखंडी, संवत् १७३० में उ. में कवि महाराजा छत्रसाल के यहाँ थे। (शिवसिंह सरोज, पृ. ७३७)

कवि परसोत्तम तमासे लगि रहे भानु
वीर छत्रसाल अद्भुत जुद्ध ठाटे हैं।
नादर नरेस के सवाद रजपूत लड़ै,
मारैं तरवारैं गज बादर से फाटे हैं।
सिंधु लोहू कुंडन, गगन, झुंडा-झुंडन सो,
रिपु रूंडा-मुंडन सों खंड सबै पाटे हैं।
चरबी चरवैयन के परबी समर बीच,
गरबी मगरबी से करवी से काटे हैं।

(छंद सं. ६२८, पृ. ३२६)

इस छंद से यह निश्चित हो जाता है कि परसोत्तम (पुरुषोत्तम) बंदीजन महाराज छत्रसाल के आश्रित थे। इन्होंने बिहारी सतसई को साहित्यिक देने के उपरांत अंत में लिखा है कि-

जद्यपि है सोभा सहज मुक्तनि तऊ सु देखि।
गुहैं ठौर की ठौर तैं वर में होति विसेषि।।

पुरुषोत्तम बंदीजन द्वारा सतसई के बांधे, गये क्रम मूल एवं सटीक हस्तालेख की कई प्रतियाँ बुंदेलखण्ड के व्यक्तिगत संग्रहों और राजकीय ग्रंथागारों में आज भी सुरक्षित हैं। हरिचरणदास उपनाम हरि कवि ने संवत् १८३४ वि. में 'बिहारी सतसई' की हरिप्रकाश टीका तैयार की। उन्होंने अपनी टीका के प्रारंभ में पुरुषोत्तम दास के क्रम की चर्चा की है - ''पुरुषोत्तम दास जी को बांध्यौ क्रम है ताके अनुसार टीका।'' पुरुषोत्तम दास ने बिहारी सतसई के दोहों का जो क्रम लगाया है उसमें सात सौ दोहे हैं। हरि कवि ने भी सात सौ दोहे होना स्वीकार किया है - ''श्री बिहारी जी की कही प्राचीन पोथी है। तामें ७०० दोहा हैं। और दोहा बीच बीच में और लोगनि नै राखे हैं तासौं बढ्यौ है।'' (कविवर बिहारी, पृ. १७५-१६६)। इतना ही नहीं हरि कवि ने बिहारी सतसई के संबंध में पुरुषोत्तम दास द्वारा रचे गये दोहों को भी स्थान दिया है -

रस सुखदायक भक्ति मय जामैं नवरस स्वाद
करी बिहारी सतसई राधा कृष्ण प्रसाद।।
जद्यपि है सोभा सहज मुक्तनि तऊसु देखि।
गुहैं ठौर की ठौर तैं कर मैं होति विसेषि।

हरि प्रकाश नाम्नी टीका से ज्ञात होता है कि कवि - टीकाकारों ने पुरुषोत्तम दास द्वारा बिहारी सतसई के दिये गये क्रम को पसंद किया। हरि कवि की यह टीका सन् १८६२ ई. में भारत जीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित हुई थी। अब केवल प्राचीन पुस्तकालयों में इसकी प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

इस प्रकार बुंदेलखण्ड के तीन कवियों - रामजू, कोविद और पुरुषोत्तम ने संवत् १७२० वि. और सं. १७४२ वि. के मध्य बिहारी सतसई के दोहों को अपने-अपने ढंग से क्रमबद्ध किया। इन कवियों द्वारा तैयार की गई बिहारी सतसई के दोहों की अनुक्रमणिका के बाद अन्य कई विद्वानों ने समय-समय पर बिहारी सतसई के दोहों को साहित्यिक या वैषयिक क्रम प्रदान किया जिनमें अनवर चंद्रिका का क्रम, आजम शाही क्रम, कृष्णदत्त का क्रम, ठाकुर कवि का क्रम आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि बिहारी बुंदेलखण्ड के थे, भले ही उनका अधिकांश समय मथुरा और जयपुर में बीता। बुंदेलखण्ड के कवि पंडितों ने सर्वप्रथम उनकी सतसई के दोहों को क्रमबद्धता प्रदान की। अपनी लंबी आयु में कवि बिहारी क्या फिर कभी बुन्देलखण्ड नहीं आये? असनी, (फतेहपुर, उत्तरप्रदेश) कवि घराने के एकमात्र ठाकुर कवि हैं, जिन्होंने 'सतसैया वर्णार्थ-टीका' में महाराज छत्रसाल के राजत्व काल में बिहारी के बुंदेलखंड आगमन का वर्णन किया है किन्तु डॉ. श्याम सुंदर दास और बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ने इसे ठाकुर कवि की कपोल-कल्पना कहा है। (संतसई सप्तक-संग्रहकर्ता और संपादक - श्याम सुंदर दास, पृष्ठ २६, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, सन् १६३१ ई. एवं कविवर बिहारी- जगन्नाथ दास रत्नाकर, पृ. ३२२)। बिहारी सतसई की दो प्रकार की हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं - एक में मात्र सात सौ दोहे और दूसरी में सात सौ तेरह दोहे मिलते हैं। सात सौ दोहों वाली प्रतियों में किसी भी दोहे में बिहारी का नाम नहीं मिलता। सात सौ तेरह दोहे वाली प्रतियों में एक दोहे में बिहारी का नाम आया है -

हुकुम पाइ जयसाहि को, हरि-राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद।।
(दोहा सं. ७१३, बिहारी रत्नाकर, पृ. २६५)

यह ७१३ संख्यक दोहा बिहारी द्वारा रचित नहीं प्रतीत होता है, इसे किसी ने बाद में जोड़ दिया है, ठीक उसी प्रकार जैसे पुरुषोत्तम द्वारा रचित इस दोहे - इस सुखदायक भक्तिमय जामैं नव रस स्वाद। करी बिहारी सतसई राधा कृष्ण प्रसाद।" को सतसई के अंत में जोड़ देने से सहसा कोई समीक्षक यह नहीं कह सकता कि यह दोहा बिहारी द्वारा रचित नहीं है। कोविद कवि और पुरुषोत्तम कवि ने बिहारी सतसई में सात सौ दोहे ही स्वीकार किया है। ठाकुर कवि ने अपनी सतसैया वर्णार्थ प्रकाशित टीका में लिखा है कि 'अपनी पत्नी के कहने पर बिहारी सतसई की प्रति साथ में लेकर छत्रसाल के दरबार में उपस्थित हुए।' पूरा वृत्त इस प्रकार है -

पुस्तक लै तिय कहिय प्रिय छत्रसाल पहँ जाउ।
है बुन्देल नृप सुकवि संग रहत बहुत कवि राउ।।
तहँ प्रसन्नता होइ तौ बोध होइ प्रिय मोर।
तौ ठहरै सब जगत में यह सतसई सुडोर।।
लाई बिहारी सतसई छत्रसाल पहँ जाइ।
करि जाहिर कह सुद्ध इति कीजै कृपा बढ़ाइ।।
छत्रसाल नृप ताहि लै सँग सब सुकवि विसाल।
प्राननाथ पहँ जाइ कै दई सतसई हाल।।
प्राननाथ निरगुन-भगत कह प्रसन्नता हीन।
जग माँ वितरित फाग सी ब्रीड़ा व्यंजक कीन।।
लई बिहारी सतसई सो सुनि भए उदास।
विदा न मांगी भूप सों आए अपने वास।।
सकल कथा तिय सों कही सुनि प्रबोध तिहि कीन।
जाहु कंत इहि फेरि लै उतहीं कहयौ प्रबीन।।
कहियो नृप छत्रसाल सों ये हैं जग-पितु-मात।
जुगल किशोर इहाँ लसें पन्ना में अवदात।।
माननाथ-कृत काव्य अरु या सतसैया लेहु।
आगैं जुगुल किशोर के विनती करि धरि देहु।।
निसि न रहै कोऊ लखौ प्रात खोलि पट दोइ।
जापै दसकत होहिं हित नीकी नीकी सोइ।।
लै तिय कौ उपदेस फिरि जाइ बिहारी लाल।
नृप सौं कहि सोई कियौ घरनी सीख बिसाल।।
सतसैया ही में भए दसकत प्रिया-बिहार।।
प्राननाथ प्रिय किए (?) लखत भूप सहित कवियार(?)।
सुकवि बिहारी कहि संबनि ने अति कियौ बखान।
आए निज निज थल सबै पाइ उचित सनमान।।
विप्र बिहारी मुदित अति नृप सौं भए विदा न।
आए घर कहि सब कथा तिम कौ कियौ बखान।
बहुत खोजायौ न मिल्यो घर गौ कवि यह जानि।
अति प्रसन्न छत्रसाल भौ अति संतोषी मानि।।
संपति अति भूषन सुपट हय पालकी करिंद।
पाँच गाँव के लिखि दिए दान पत्र नृप इंद्र।
छत्रसाल पत्री लिखी सुकवि बिहारी लाल।
ये लैं आयौ करि कृपा मोपै परम दयाल।।
गये लोग लै जहँ बसै, विप्र बिहारी वेस।
दिय पत्री अरु या कहयौ, पठयौ हमें नरेस।
बाँचि बिहारी पत्रिका, दिय निज तिय कौं जाइ।
बाँचि न लिय कछु नृपति कौं, दोहा लिख्यौ बनाइ।।

बिहारी तिय कृत जबाब -

दोहा- तौ अनेक औगुन भरो, चाहै याति बलाइ।
जो पाति संपति हूँ बिना, जदुपति राखे जाइ।।
प्राननाथ पत्री लिखी, हुती बुलैबे काज।
बाँचि तिन्है दोहा लिख्यौ, साजि गरब हर साज।।

बिहारी तिय कृत जवाब -

दोहा- दूरि भजन प्रभु पीठि दै, गुन विस्तारन काल।
प्रगटत निरगुन निकट ही, चंग-रंग गोपाल।।
दोउ दोहा सब वस्तु युत, छत्रसाल के लोग।
आइ दिये दोहा दुवौ, वस्तु कहयो कवि जोग।।
दोऊ दोहा बाँचि कै, प्राननाथ छत्रसाल।
वस्तु फिरी कायल भये, कवि-गुन कहे विसाल।।
कथा सुनी जैसहि सब, सुकवि बिहारी काज।
ग्राम बहुत दै सब दियौ, राजसिरी कौ साज।।
करी बिहारी की तिया, पतिव्रता सुझवीन।
करी बिहारी सतसई, जग जाहिर यह कीन।।
राधा हरि जू कृपा करैं, तौ मानै सब कोइ।
सतिय-बिहारी-सतसई, सबै बखानै लोइ।।
इति सतसई कारन वर्ननो नाम दुतियोल्लास।।२।

-(दोहा सं. २०-४६) तक (हस्तलिखित प्रति से) -

ठाकुर कवि ने सतसैया वर्णार्थ प्रकाशित टीका की रचना, अपने आश्रयदाता श्रृंगवेरपुर (प्रयाग) के राजा देवकीनंदन सिंह के लिये की थी। इसका रचनाकाल संवत् १८६१ वि. (सन् १८०४ ई.) है। ठाकुर कवि ने बिहारी और उनकी रचना सतसई के संबंध इतना बड़ा इतिवृत्त किस आधार पर लिखा, यह अज्ञात है। वे कवि घराने के थे, संभव है उन्होंने अपने पूर्वजों से इस वृत्त को सुना हो और उसी को छंदबद्ध कर प्रस्तुत कर दिया। ठाकुर के इस वर्णन से इतना तो पता चल जाता है कि बिहारी बुंदेलखंड आये थे, छत्रसाल के दरबार में उपस्थित हुये थे। भगवान युगल किशोर के प्रति उनकी दृढ़ आस्था थी -

नित प्रति एकत हरि रहत, बैस बरन मन एक।।
चहियत जुगल किशोर लखि लोचन जुगल अनेक।।

(दोहा, सं. २३८)

महाराज छत्रसाल ने उन्हें पाँच गाँव दान में दिये थे। यदि इन गाँवों का अभिलेख उपलब्ध हो जाए तो ठाकुर कवि का वर्णन प्रामाणिक हो जाएगा। बुंदेलखंड के विद्वानों के लिये यह विचारणीय प्रश्न है।

आधार ग्रंथ -

१. कविवर बिहारी - श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर, रत्नाकर भवन-शिवाला, बनारस, सन् १९५३ ई.
२. उत्तर मध्यकालीन भारत - अवध बिहारी पाण्डेय, सेन्ट्रल बुक डिपो-इलाहाबाद, तृतीस सं. सन् १९६५ ई.
३. बुंदेल वैभव - पं. गौरीशंकर द्विवेदी, भाग-२
४. शिव सिंह सरोज - संपादक : डॉ. किशोरी लाल गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९७० ई.
५. सरोज सर्वेक्षण - डॉ. किशोरी लाल गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
६. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - पं. गोरेलाल तिवारी, ना.प्र. सभा, काशी, संवत् १९९० वि.
७. विंध्याचल का आधुनिक हिन्दी काव्य - डॉ. नागेन्द्र सिंह 'कमलेश', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् १९७५ ई.
८. हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण, खण्ड-१, ना.प्र.सभा, काशी, संवत् २०२१ वि.
९. हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज का विवरण - भाग-३, संपादक : डॉ. श्याम सुन्दर दास, द्वितीय नवीन संस्करण, संवत् २०५५ वि, ना.प्र.सभा, वाराणसी
१०. सतसई सप्तक - संग्रहकर्ता और संपादक - श्यामसुंदर दास, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, सन् १९३१ ई.
११. ठाकुर कवि रचित सतसैया वर्गार्थ प्रकाशिका टीका की हस्तलिखित प्रति।
१२. बुंदेलखण्ड के अज्ञात रचनाकार - डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया', सार्थक प्रकाशन - गौतम नगर, नई दिल्ली, सन् २००२ ई.

- ग्राम करेरुआ, पो. खमरिया,
जिला मिर्जापुर

बदरा तरसा कैं जब बरसौ

- डॉ. गौरीशंकर उपाध्याय 'सरल'

बदरा तरसा कें जेब बरसौ, इमरत सबई जगत खौं परसौ।
रिमझिम रिमझिम पनियाँ बरसौ, जिअरा सब जिउअँन कौ हरसौ।।
उमड़े सबरे नदिया नारे, पुखरन नैऊँ पाँव पसारे।
जाँ ताँ देखौ बये पनारे, दौरत बउअत अरर रारे।।

उबले सबरे ताल तलइयाँ, खेतन खेतन भई डबकइयाँ।
बादर लै रऔ लाख कलइयाँ, धरती टाँगै अधफर कइयाँ।।
घर बाहर भींजें सब खेरे, भींजे दुगइ पौर उसेरे।
फूटे घर, छपरा, बिन टारे, घप, घप, घप, अरर रा रे।।

जितै तितै टपकौना टपके, बिन बुलाये पॉउने से अटके।
घर बारन-वासन दै पटके, टन् टन् टिन् टिन् टुन टुन खटके।।
बदरन बीच बिजुरिया चमकै, इँदियारौ पट चीर कै गमकै।
कऊँ कऊँ जुगनुन पल्टन झमकै, थोरउ बल तऊ बमकै, दमकै।।

झूमैं जिउ बिरछा औ बेलै, मिदरा जाँ ताँ उचकैं खेलैं।
किचकिन्दे सैं भर गई गैलैं, बिथा बड़ी मजबूरी सै लैं।।
नदी तला भर गए सब नारे, बँधियन के बँधे जल नैं कारे।
मैंड़न सँग निटूर गए पारे, खेत, तलन, से लगबै सारे।

बूँद बूँद मिल बनती धारैं, अपएँ संग धरती खौं गारैं।
गार गार नदियँन में झारैं, नदिया-पोनूँ खल वल पारैं।।
नदियाँ नैंक नईं थिरदानी, ज्यों निरधन धन पा, इतरौंनी।
जल-धन पाकैं अत हरसाँनी, गिरमा टोर भगीं मस्तानी।।

हुलसी नदियों जब जल पा कैं, उछल कूद करतइ ना थाकैं।
चढ़ी जुऑनी उमंगी पाँखें, सागर-संग, प्रेम रस चाखैं।
बदरा तरसा कैं जब बरसौ, इमरत सबइ जगत खौं परसौ।
रिमझिम रिमझिम पनियाँ बरसौ, जियरा सब जिउअन कौ हरसौ।।

- सरल साहित्य संगम, झांसी

विलुप्त होते बुन्देली लोक वाद्य

- के.एल. सोनी 'विनोदी'

भारत उत्सव एवं त्यौहारों का देश है, उत्सव या त्यौहार हमारे व्यस्ततम समय को अवकाश प्रदान करने का माध्यम हैं। उत्सव के उपरान्त मानव नयी ऊर्जा और उत्साह के साथ जीवनक्रम को आगे बढ़ाने में अग्रसर होता है। उत्सव होगा तो संगीत होगा और संगीत होगा तो गीत होंगे।

जिस प्रकार बादलों के मडराते ही मोर मुक्त कंठ से पुकारने लगता है, आम में पर बौर आते ही कोयल कुहुकने लगती है। उसी प्रकार जीवन के सुख-दुख के उद्‌गारों को प्रकट करने के लिए संगीत स्वतः प्रस्फुटित होता है, उसे कहते हैं लोक संगीत।

मानव भावना ही लोकगीत, वादन और नृत्य के रूप में परम्परा से प्रवाहित होती आ रही है और यह जन भावना ही नाद का आश्रय लेकर लोकगीतों के रूप में उद्वेलित होती है। अतः लोकगीत ही सर्वव्यापी है, सही मायने से धरती का यही संगीत है। "गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते" अर्थात् गीत वाद्य और नृत्य ये तीनों मिलकर संगीत है। वास्तव में तीनों कलायें एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हुये भी एक दूसरे के आधीन हैं। क्योंकि-

नृत वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्ति च।।
अतो गीतं प्रधानत्वादभादावभिधीयते।।

अर्थात् गान के अधीन वादन और वादन के अधीन नृत्य है, इन तीनों कलाओं में गान को ही प्रधानता दी गई है। किन्तु लोकगीत प्रायः गति प्रधान होते हैं। अतः ताल वाद्यों में मुख्यतः लय का स्थान सर्वोपरि होता है। लोक संगीत या लोक नृत्य के साथ जिन वाद्यों का प्रयोग होता है, उन्हें लोक तालवाद्य कहा जा सकता है।

भारतीय वाद्यों को चार श्रेणियों में बांटा गया है - १. तत् वाद्य, २. सुषिर वाद्य, ३. अनबद्ध वाद्य, ४. धन वाद्य। मैं इन्हीं चार श्रेणियों के आधार पर बुन्देली लोक वाद्यों का परिचय कराना चाहता हूँ -

(१) तत् वाद्य - तत् वाद्यों को तात वाद्य या तंतु वाद्य भी कहते हैं, इस श्रेणी में तारों के द्वारा स्वरों की उत्पत्ति होती है। यह भी दो प्रकार के होते हैं। (अ) तत वाद्य, (ब) वितत वाद्य

(अ) तत वाद्य - तत् वाद्यों की श्रेणी में तार के वे साज आते हैं जिन्हें मिजराव या अन्य किसी वस्तु की टंकार देकर बजाते हैं, जैसे तानपूरा, इकतारा

(ब) वितत् वाद्य - वे वाद्य जिन्हें गज की सहायता से बजाते हैं जैसे सारंगी आदि।

सारंगी - बुंदेली वाद्य यंत्रों में बहुत ही प्रचलित नाम है इसे केकड़ी भी कहते हैं। इसमें एक दो या तीन तार लगाये जाते हैं और गीत के बोलों के अनुसार अल्प स्वर समुदाय को वादन के द्वारा इतना मुखर कर दिया जाता है कि लगता है जैसे सारंगी के स्वर और गीत के शब्द एक रूप हो गये हों - इसे प्रायः गज की सहायता से बजाते हैं एवं देवी गीत या किसी राग विशेष के लिये प्रयोग किया जाता है।

इकतारा - ततूवाद्यों में इकतारा भी अपना प्रमुख स्थान रखता है। किसी तूंबे पर दो तीन हाथ का बांस काटकर जोड़ दिया जाता है एवं आधे तूबे को काटकर चमड़े से मढ लिया जाता है। इसके बाद बांस में लगी खूंटी के आश्रय से एक या दो तार लगाकर बजाया जाता है। घुमक्कड़ साधु प्रायः इसका प्रयोग करते हैं। इसमें किसी गाने की सरगम नहीं निकलती। एक तार होने पर एक तारा और दो तार होने पर इसे दो तार भी कहते हैं।

(२) सुषिर वाद्य - सुषिर वाद्य वे वाद्य हैं जिनको फूँक या हवा के माध्यम से बजाया जाता है। जैसे बाँसुरी - हारमोनियम, शहनाई, बीन, शंख आदि, सुषिर वाद्यों में बुन्देली लोक वाद्यों की श्रेणी में लुप्त होते वाद्य हैं, अलगोजा वीन, तुरही, रमतूला आदि।

अलगोजा- तीन या चार छिद्रों वाली बाँस से बनी बाँसुरी है। अलगोजा प्रायः दो होते हैं, जिन्हें एक साथ मुँह में दबाकर फूँक से बजाया जाता है दोनों अलगोजा एक दूसरे के पूरक होते हैं। यह जानवर चराते समय या मेले में जाते समय अधिकांश ग्रामीण जन बजाते दृष्टिगोचर हो जायाकरते हैं।

बीन - सुषिर वाद्यों में बीन भी अपना एक अलग ही स्थान रखती है - जो छोटी तुम्बी में बाँस की दो नलिकायें लगाकर बनायी जाती हैं। बजाने वाले हिस्से में काठ की एक पोली नली रहती है। दोनों नलिकाओं में तीन या चार छिद्र होते हैं, यह लगभग एक या सवा हाथ लम्बी रहती है। यह प्रायः सपेरा जाति द्वारा साँपों को नचाने में प्रयोग की जाती रही है।

शंख - सुषिर वाद्यों में अतिप्राचीन वाद्य है शंख जिसे प्रकृति ने मनुष्यों को उपहार स्वरूप दिया है। सागर तल के समुद्री जीव का ढांचा ही शंख है, जो मन्दिरों में पूजा के समय बजाया जाता है। हवा की फूंक द्वारा शंखवादन किया जाता है जिसमें वायु के दबाव और ओठों की गति से ही स्वर को ऊँचा-नीचा करके प्रसारित किया जाता है, कुछ लोग अपनी कुशलता के आधार पर ऊँचे नीचे स्वर के साथ विभिन्न ध्वनियाँ निकाल लेते हैं।

रमतूला- सुषिर वाद्यों में यदि रमतूला की चर्चा न की जाये तो विषय अधूरा ही रह जायेगा। रमतूला धातु से बना हुआ अंग्रेजी के 'एस' अक्षर के आकार का वाद्य है जिसे सामान्यतः शादी या हर्षोल्लास के पर्वों पर बजाया जाता था। इसकी प्रस्तुति प्रायः एकल होती है। वादन ध्वनि की तीव्रता हेतु हवा की फूंक की प्रबलता को बढ़ाता है। जो अलग-अलग अवसरों पर अलग अलग ध्वनि निश्रृत करता है।

(३) अनवद्य वाद्य -अनवद्ध का अर्थ है बंधा हुआ। इनहें आनद्ध भी कहते हैं। ये वाद्य यंत्र भीतरसे खोखले तथा चमड़े से मढ़े होते हैं। इनमें हाथ या अन्य वस्तु के आघात से स्वर उत्पन्न किया जाता है। जैसे मृदंग, ढोलक, ढफली, डमरू, ढपला, चंग, ढोल आदि।

चंग - चार अंगुल चौड़े लकड़ी के घेरे पर चमड़ा से मढ़ा हुआ चक्राकार वाद्य है जो सोलह से बीस अंगुल व्यास तक का होता है। इसे बायें हाथ से पकड़कर हृदय के समीप स्थित कर दाहिने हाथ की थाप से बजाया जाता है। इस के छोटे आकार को डफली या डपली कहते हैं। चंग के माध्यम से लोक गाथायें, शेरो-शायरी एवं अन्य प्रस्तुतियाँ बड़ी मनमोहक बन पड़ती है। होली पर ग्रामीण जन लोक गीत भी गा लिया करते हैं। इसके बड़े स्वरूप को डफ कहते हैं।

डमरू - आनद्ध वाद्यों में डमरू संभवतः सबसे प्राचीन वाद्य है, जिसे भगवान शंकर स्वयं बजाते थे। अब बन्दर नचाने वाले या जादू करने वाले कलाकार इसे बजाते नजर आ जाते हैं। डमरू एक या दो वालिश्त तक लम्बा होता है। जो दोनों सिरों पर चमड़े से मढ़ा रहता है। इसके बीच का हिस्सा एकदम पतला रहता है। जहाँ रस्सी में घुण्डी बनी रहती है। कलाकार डमरू को हाथ में लेकर इधर उधर घुमाकर घुण्डीदार रस्सी को दोनों मुखों पर चोट कर डम डम या डिम डिम की विभिन्न आवृत्तियाँ निकालता है।

खंजरी - खंजरी डफली का मिलता जुलता रूप है। डफली के घेरे में तीन या चार जोड़ी झांझ लगा देने से डफली खंजरी का रूप प्राप्त कर लेती है। इसका वादन चंग की तरह से ही होता है। ग्रामीण क्षेत्र का यह प्रसिद्ध लोकवाद्य है। बांसुरी की संगत में इसका वादन और भी मनोहारी हो जाता है।

ढपला - अनवद्ध वाद्यों में सबसे उपेक्षित वाद्य है, ढपला। ढपला चक्राकार होता है जो धातु या लकड़ी का बना होता और जिसमें चमड़ा मढ़ दिया जाता है। यह प्रायः जन्म संस्कार से लेकर विवाह तक लगभग सभी संस्कारों में बजाने की परम्परा है जो बुन्देलखण्ड में पायी जाती है। यह हाथ या लकड़ी की चोट से बजाया जाता है। इसमें कोई गीत आदि नहीं गाया जाता, किन्तु इसे शुभ अवसरों में न बजाया जाता तो अवश्य अशुभ माना जाता है।

ढोल एवं नगाड़ा - ढोल की थाप या नगाड़े की चोट बहुत प्रसिद्ध है। प्यालेनुमा मिट्टी या लकड़ी की कुण्डी को चमड़े से मढ़ाकर नाड़ा बनाया जाता है एवं बेलनाकार लकड़ी या धातु को चमड़े से मढ़कर ढोल बनाया जाता है। नगाड़े का प्रयोग प्रायः लोकगीत या नौटंकी गायन में किया जाता है। इसे नक्कारा भी कहते हैं। इससे ताल एवं लय के विविध ा रूप प्रस्तुत किये जाते हैं। ढोल और नगाड़े के सम्मिलित वादन को नौबत कहते हैं। नगाड़े का छोटा रूप दमामा कहलाता है।

नगड़िया - नगाड़े का छोटा रूप नगड़िया कहलाता है किन्तु इनमें वादन के रूप में बहुत भिन्नता पाई जाती है। इसको बजाने के लिये नुकीली लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें चोप कहते हैं। नगड़िया ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत प्रचलित है। इसे दीपावली, होली एवं देवी गीतों की प्रस्तुति में आवश्यक रूप से सम्मिलित किया जाता है। नगड़िया की ध्वनि अपने आपमें पृथक होते हुये भी सभी को साथ में लेकर चढ़ती है। यह ढोलक की सहायक होकर गीतों में गति प्रदान करती है।

(४) घन वाद्य - वाद्यों की इस श्रेणी में वे वाद्य आते हैं जिन पर चोट या आघात से स्वर उत्पन्न होता है जैसे मंजीरा, करताल, झांझ, घुंघरू, चमीटा आदि।

करताल - करताल वाद्य भी बहुत प्राचीन वाद्य है, यह वैदिक काल से नारद, हनुमान आदि भक्तों के करों में दृष्टिगोचर होता है। करताल दो चतुर्भुज आकार के लकड़ी के टुकड़े होते हैं जिनमें आवाज पैदा करने के लिए धातु के लटकन लगाये जाते हैं। एक हाथ की चार अंगुली और दूसरा अंगूठे में लेकर आपस में टकराकर विभिन्न लयों को प्रदर्शित किया जाता है। यह प्रायः भक्ति संगीत एवं नृत्य संगीत में प्रयोग लाये जाते हैं।

झांझ या मंजीरा - यह आठ से सोलह अंगुल व्यास के धातु के गोल टुकड़े होते हैं। जिन्हें डोरी में डालकर पकड़ने योग्य बना लिया जाता है। फिर आपस में टकराकर मनचाही झंकार निकाली जाती है। झांझ छोटा और मंजीरा आकार में कुछ बड़ा होता है, यह लोकगीत गायन, वादन का महत्वपूर्ण वाद्य भी माना जाता है। कहीं कहीं केवल मंजीरा की एकल प्रस्तुति के द्वारा भी गायन किया जाता है।

चिमटा - घन वाद्यों में चिमटा वादन अपना अलग ही अस्तित्व रखता है। लोहे की तीन हाथ लम्बी दो पट्टियों को मिलाकर चिमटा बनता है। गोल पत्तियाँ लगा दी जाती हैं। चिमटा के बायें हाथ में एक ओर चिमटा पकड़कर दाहिने हाथ से अंगूठे और अंगुलियों के झटके से भजन कीर्तन के समय चिमटा बजाया जाता है।

दण्डताल - दण्डताल एक प्रकार का लोहे से बना त्रिभुजाकर वाद्य है, जो लकड़ी या लोहे के स्तंभ पर स्थिर लोहे के दण्ड से बजाया जाता है। इसकी कोई व्यवस्थित स्वर लिपि नहीं होती। किन्तु बजाने वाला लयानुसार आघात कर ध्वनि पैदा करता है। यह प्रायः भजन कीर्तन में प्रयुक्त होता है।

यह थे कुछ लोकवाद्य, किन्तु लोकवाद्यों का परिचय देने के लिए एक सम्पूर्ण ग्रन्थकार रचना की आवश्यकता है। काल के प्रभाववश अनेक लोक वाद्य और उनके वादक समाप्त हो चुके हैं क्योंकि उन्हें न किसी का आश्रय मिला और न ही सामाजिक प्रोत्साहन। भौतिकवादी यंत्रवत युग में सृजन का समय किसे है। संगीत में नये नये प्रयोग अब विचारणीय विषय हो गये हैं। अब तो हारमोनियम जैसे वाद्य ही अपना अस्तित्व बचा पा रहे हैं, जिनमें स्वयं स्वर पूर्व निर्धारित हैं। कुछ वाद्य यंत्र तो ऐसे भी हैं जिनकी इज्जत न शास्त्रीय संगीतज्ञ करते हैं और ना ही लोक संगीतकार ऐसे वाद्यों को अनुसूचित श्रेणी में रख कर आरक्षण की आवश्यकता है। जिससे हमारी संस्कृति के प्रतीक ये वाद्य जन साधारण के बीच से लुप्त ही न हो जायें।

लोक संगीत के लोकवाद्य यंत्र हमारी ऐसी धरोहर हैं जिनमें समाज की भावनायें, अभिव्यक्ति और संस्कृति समाहित है। हर्ष, शोक, राग, विराग सभी की सहज अभिव्यंजना केवल लोक वाद्य के वादन से सरलता पूर्वक होता है।

- महाराजपुर, जिला छतरपुर

पलेरा के वीर स्वतंत्रता प्रेमी जागीरदार राव धुरमंगल

- चिन्तामणि वर्मा, एडवोकेट

बुन्देलखण्ड शूरवीरों का क्षेत्र रहा है। यहाँ की यह संस्कृति रही है कि -

"बरस दसक तक कूकर जीवै, बारह बरस लौ जिये सियार।
बरस अठारह तक क्षत्री जीवै, आगे जीवन को धिक्कार।।"

इन्हीं वीरों के नायक थे महाबली महाराजा छत्रसाल और इनके यशस्वी सहायक थे पलेरा (टीकमगढ़ जिला) के जागीरदार राव धुरमंगल। महाराजा छत्रसाल को तो आज भी बुन्देलखण्ड में यह कहकर बहुत से लोग स्मरण करते हैं कि -

"छत्रसाल महाबली-करियौ भली भली।"

और धूमघाट विजय के बाद से राव धुरमंगल के सम्बन्ध ा में बुन्देलखण्ड में निम्न पंक्तियाँ लोकोक्ति के रूप में छा गई थीं-

"धन्य बली धुरमंगल जू - जिन पंजन के बल सिंह बिदारयो।।"

राव धुरमंगल दतिया के महाराजा शुभकरण के सगे छोटे भाई थे और वहाँ नदीगाँव के जागीरदार थे। छत्रसाल के पिता चम्पतराय बुन्देलखण्ड की स्वतंत्रता के लिए मुगल बादशाहों के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। यह जानकर स्वतंत्रता प्रेमी धुरमंगल की उनके प्रति अपार श्रद्धा हो गई थी। जब उन्हें यह पता लगा कि उनके बड़े भाई शुभकरण और ओरछा के राजा पहाड़ सिंह के षड़यंत्र के ही कारण चम्पतराय को कई वर्षों तक जंगलों और गुफाओं में सपरिवार अपना जीवन बिताना पड़ा तथा अन्त में उन्हें आत्महत्या करना पड़ी तो धुरमंगल के मन में बड़े भाई दतिया के राजा शुभकरण के प्रति मनमुटाव हो गया और वे नदीगाँव छोड़कर ओरछा चले गए।

दूसरी ओर ओरछा के राजा पहाड़ सिंह का सन् १६५३ में निधन होने के बाद उनके पुत्र सुजान सिंह ओरछा के राजा बने और उन्हें भी जब यह पता लगा कि उनके पिता के षड़यंत्र के कारण ही चम्पतराय को आत्महत्या करना पड़ी तो उन्हें भारी कष्ट हुआ और उन्होंने छत्रसाल से बहुत दुख मनाया और चम्पतराय के लड़कों की हरप्रकार से सहायता करने का व्रत ले लिया।

राजा सुजानसिंह ने छत्रसाल के विद्रोह काल में शुभाशीष देकर उत्साहित किया तो छत्रसाल ने महाराजा सुजानसिंह के समक्ष तलवार बाँधते हुए कहा था -

महाराज हम हुकुम तैं, बाँधत हैं किरपान।
तौ लौ फिकर न लाइयौ, जौ लौ घट में प्रान।।"

यह सुनकर सुजान सिंह गदगद हो गए और इन शब्दों में आशीर्वाद दिया -

"अभय हेतु निज वंश को, फतह लेहु फरमाय।
छत्रसाल तुम पर सदा, करैं विश्वम्भर छाँह।।"

धुरमंगल जब ओरछा आए तो राजा सुजान सिंह ने उन्हें पलेरा (टीकमगढ़) की जागीर दे दी। धुरमंगल अपनी वीरता, प्रजा वत्सलता तथा समरसता के कारण पलेरा के अत्यन्त लोकप्रिय जागीरदार बन गए।

चम्पतराय की मृत्यु के बाद सन् १६७० में बुन्देलखण्ड की जनशक्ति का पता लगाने तथा ओरछा के मन्दिरों को नष्ट करने के लिये औरंगजेब ने अपने परमवीर सेनानायक फिदाई खाँ को एक बड़ी सेना के साथ ओरछा की ओर भेजा। जब छत्रसाल को इसका पता लगा तो उन्होंने ओरछा के राजा सुजान सिंह को इसकी सूचना दी। सुजान सिंह ने अपने परमवीर पलेरा के जागीरदार धुरमंगल के नेतृत्व में अपनी सेना छत्रसाल की सहायता के लिए भेजी।

छत्रसाल और धुरमंगल ने फिदाई खाँ और उसकी सेना को सबक सिखाने के लिए एक योजना बनाई। दोनों की सेना ने आगरा के पास सिन्धु नदी के तट पर धूमघाट के पास मोर्चा संभाला और रात को आधी रता में विश्राम करती हुई फिदाई खाँ की सेना पर धावा बोल दिया। उसे आक्रमण के प्रतिरोध का अवसर ही नहीं मिला। मुगल सेना के अधिकांश सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया गया, लेकिन फिदाई खाँ बचकर आगरा भाग गया। सारा बुन्देलखण्ड इस विजय से आनन्दित हो उठा। महाराज छत्रसाल और धुरमंगल की कीर्ति सारे बुन्देलखण्ड में फैल गई।

ओरछा के दिवंगत राजा पहाड़ सिंह की विधवा रानी हीरादेवी की कुदृष्टि धुरमंगल पर पड़ गई। धुरमंगल और सुजानसिंह की निकटता उसे खलने लगी। उसके धोखे में आकर धुरमंगल दिल्ली चले गए, जहाँ सोते समय औरंगजेब ने उन्हें पकड़ाकर जिन्दा ही दीवाल में चिनवा दिया। राव धुरमंगल के सम्बन्ध में पलेरा के ही एक अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति ने मुझे बचपन में एक कहानी इस प्रकार सुनाई थी।

"राव धुरमंगल पलेरा के अत्यन्त लोकप्रिय जागीरदार थे। वह बहुत बहादुर तथा स्वतंत्रता प्रेमी व्यक्ति थे। वे ओरछा राज्य के महाराज सुजानसिंह के अत्यन्त प्रिय तथा विश्वसनीय व्यक्ति थे। प्राचीनकाल में मुगल बादशाह के प्रति अपनी वफादारी सिद्ध करने के लिए अधीनस्थ राजाओं को समय समय पर बादशाह के दरबार में हाजिरी देना पड़ती थी। जब भी ओरछा नरेश दिल्ली बादशाह से मिलने जाते थे, धुरमंगल को अवश्य साथ ले जाते थे।

एक बार राजा सुजानसिंह को किले में ही ठहराया गया। जहाँ इन्हें ठहराया गया वहीं रास्ते मेंएक शेर पला था। जब भी धुरमंगल वहाँ से निकलते शेर अपने स्वभाववश गरजता था, उसकी गरज को सुनकर धुरमंगल कहा करते थे 'चुप रह लैंड़ा (कायर कुत्ता) कहीं का।' यह सुनकर शेर अपमानित होकर बहुत दुखी होता था।

इस कारण वह दिन प्रतिदिन दुबला होता जाता था। जब बादशाह की नजर शेर पर पड़ी तो उसके मदारी से बादशाह ने शेर के दुबले होते जाने का कारण पूछते हुए कहा "क्या इसकी खुराक में कमी की जा रही है?" मदारी ने हाथ जोड़कर कहा, न हुजूर! ओरछा के राजा के साथ एक सरदार आते हैं, जब वह इस रास्ते से निकलते हैं, तो शेर गरजता है। उसके जवाब में वह सरदार कहा करता है चुप रह लैंड़ा कहीं का।" इसी अपमान के कारण दुखी होकर शेर दुबला होता जा रहा है।

बादशाह औरंगजेब ने दरबार में धुरमंगल को बुलाकर इस सम्बन्ध में पूँछा तो उन्होंने बादशाह को सच सच बता दिया। बादशाह ने धुरमंगल से कहा, "क्या तुम इस शेर से लड़ सकते हो? धुरमंगल ने उत्तर दिया 'हुजूर उससे लड़ना कौन बड़ी बात है।'

अब क्या था धुरमंगल की शेर से लड़ाई की तिथि निश्चित की गई। महल के एक चौक में यह लड़ाई देखने के लिए बादशाह के अलावा बहुत से दरबारी भी इकट्ठे हुए। शेर को पिंजड़े से छोड़ा गया। धुरमंगल हाथों के पंजों में बघनखा पहनकर बिना कोई हथियार लिए शेर से भिड़ गए। दस पन्द्रह मिनट तक दोनों एक दूसरे को धराशायी कर घायल करते रहे। अन्त में धुरमंगल ने शेर की सबसे कोमल जगह पेट के नीचे की ओर वघनखा पहने पंजों को उसके पेट में घुसेड़ दिया और उसकी आंतें बाहर निकाल लीं। शेर आहत होकर धराशायी हो गया। वह तड़प तड़प कर कुछ देर बाद मर गया।

धुरमंगल भी बहुत घायल हो गए थे। कुछ दिन तक उनका इलाज दिल्ली में ही चलता रहा, लेकिन बहुत खून बह जाने के कारण दिल्ली में ही उनका निधन हो गया।

इसी घटना के बाद सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में यह लोकोक्ति प्रचलित हो गई "धन्य बली धुरमंगल जू, जिन पंजन के बल सिंह विदारयो।"

- चेतगिरि कॉलोनी, छतरपुर

वीरांगना झलकारी बाई

- प्रो. एन.के. जैन

भारत के स्वाधीनता संग्राम में केवल पुरुष वर्ग ने ही संघर्ष किया है, ऐसा नहीं है। भारत की नारियाँ भी इस संघर्ष में आगे रही हैं। पुरुष प्रधान समाज होने से नारी के संघर्ष को न्यायोचित स्थान नहीं मिला, इसके बावजूद भी नारियों ने देश समाज को आगे बढ़ाने में कोई कसर नहीं रखी।

वीरांगना नारियों में बुन्देलखण्ड में लक्ष्मीबाई, अवन्तिबाई अधिक चर्चा में हैं, झलकारी बाई का नाम कम पढ़ने मिलता है। झलकारी बाई का जन्म झांसी के पास भोजला गाँव में २२ नवम्बर १८३० को हुआ था, इनके पिता श्री मूलचंद फौज में थे। उनके घर का वातावरण देशभक्ति से ओतप्रोत था, पिता ने शुरू से ही उसे सैनिक शिक्षा दी, तीर, भाले, बरछी चलाने, पेड़ों पर चढ़ने, ऊँचाई से छलांग लगाने आदि सभी वीरता भरे कार्यों में निपुण कर दिया। झलकारी बाई के योवनावस्था के कई बहादुरी भरे कारनामे हैं।

एक बार झलकारी बाई जंगल से लकड़ी काटकर ला रही थी तो उसका सामना चीते से हो गया, उसने कटार के प्रहार से चीते का काम तमाम कर दिया, चीते को कंधे पर लादकर गाँव चली आई। एक अन्य घटनामें गाँव के मुखिया को डाकुओं ने घेर लिया था। झलकारी ने डंडे से ही डाकुओं का मुकाबला कर उन्हें धर दबोचा। इन घटनाओं से वह गाँव की बहादुर व प्रिय बेटी बन गई।

झलकारी बाई का विवाह झाँसी की सेना में तोपची पूरन कोटी से हुआ, जब झलकारी रानी लक्ष्मीबाई का आशीर्वाद लेने गई तो रानी उसके नाम नक्श, कट काठी से बहुत प्रभावित हुई उसके वीरता भरे किस्से सुनकर उसे दुर्गादल में भरती कर लिया। झलकारी बाई ने अपनी सेना दुर्गा दल की हर महिला को फौलादी बनाकर देश पर मर मिटने की तीव्र लालसा जगाई। १८५७ में जब अंग्रेजों की सेना ने झाँसी के किले में घुसने की तैयारी की। सेना ने झाँसी के किले में घुसने की तैयारी की, तब चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। झलकारी किसी तरह रानी के महल में पहुँची और दत्तक पुत्र सहित रानी को किले से बाहर निकालने की योजना बनाई। किला चारों ओर से दुश्मनों से घिरा हुआ था। ऐसे में रानी को किले से बाहर निकालना खतरे से खाली न था। झलकारी के कहने पर रानी ने अपने जेबर व कीमती वस्त्र उसे पहना दिये और एक साधारण महिला का वेष धारण कर महल से बाहर निकल आई। रानी का वेष धारण कर झलकारी रणचंडी बन अंग्रेजों पर टूट पड़ी। इसी बीच झांसी के देशद्रोही दुल्हाजू ने ह्यूरोज को बतादिया कि जिसे वे रानी लक्ष्मीबाई समझ रहे हैं वह तो दुर्गा दल की कमांडर झलकारी बाई है, अंग्रेजी फौज ने झलकारी को गिरफ्तार कर लिया। झलकारी बाई अंग्रेजों के हाथ पड़ तो गई लेकिन उनके हाथों मरना नहीं चाहती थी। अतः अपनी सहेली वीर बाला के हाथों से अपनी जीवन लीला समाप्त कर शहीद हो गई। भारत के स्वाधीनता संघर्ष में अंग्रेजों के खिलाफ उनका नाम इतिहास में सदैव अमर रहेगा।

- सी-१, सीनेट कॉलोनी, छतरपुर

स्व. श्री घनश्याम पाण्डेय साहित्यभूषण बिजावर द्वारा रचित

प्रबंध काव्य भीमपुराण का अंश

(खण्ड प्रथम - अध्याय तृतीय)

- संकलनकर्ता मनमोहन पाण्डेय

दोहा - कहों तृतीय अध्याय में, परना (पन्ना) कौ इतहास।
छत्रसाल के हाल सब लिखहों सहित हुलास।।

चौपाई -आँगें चले बहुर धनुधारी-आकर परना पुरी निहारी।।
हीराखान जान सब कोई-पद्मावती पुरी यह सोई।।
जन्मी पद्मावती यहाँ ही-भीमसिंह नरपत कों व्याही।।
भूप अमान सिंह के शाके-गावत नट-मागध कवि जाके।।
चित्रकोट-गिरि की परकरमा-बनवाई नृप लख निज धरमा।
हिन्दूपत की कौन बड़ाई-यमन शाह सें लड़ी लड़ाई।
चंपत रा बाँधी मरजादा-जिनके बल विक्रम नहिं सादा।।
यमन कटक जब करी चढ़ाई-वीर-वीरता प्रगट-दिखाई।।
गर्भवती जिनकी प्रिय रानी-स्वान-भूप-संग रहो निशानी।।
चढ़े टौरिया शिखर अकेले-उभय जीव कंधा धर झेले।।
छेंकी फौज पहरिया जबहीं-लाँघ दूसरी पर गये तबहीं।।
भूप रूप तब अपन दुरावा-पीछे फिरे यमन के धावा।।

दोहा - कछरा बाँकी के निकट-विकट डंगाई देख।।
'ऊमर गोंदी' झील की झिरिया बनी विशेष।।

सोरठा- कछु दिन कियो निवास-निर्भै देखी खोहिया।।
'चंपतराई' तास, परो नाम शुभ भूम कौ।।

दोहा - एरौरा, रतुआ निकट, भरका विकट अनेक।।
चंपतरा पहुँचे वहाँ, मिले विप्रवर एक।।

चौ. - भूपत हाल सुनाये अपने-दुजवर देख रहे ज्यों सपने।।
तुरत झोपड़ा खाली कीन्हों-डेरा तहाँ भूप कौ दीन्हो।।
स्वान करै रानी रखवारी - भूप किसान लगावहिं बारी।।
रहे कुँवर भ्राता अलबेले-तिनमें व्याहे येक अकेले।।
बसहिं एक गृह में सुखपाई-खेती तिनके रही कमाई।।
पंचम भ्रात भये नृप हेती-काटहिं पाँचहु भैया खेती।।
तुरत सवार यमन के आये-भूप रूप लख हिय धुकआये।।
सैनिक-सैन दई हँस बोले-चंपतरा सुयना भये डोले।।
यह को तुम संग काटन हारे-इनके भेद बतादेव सारे।।
हैं हम पाँच सहोदर भाई-फकत येक की भई सगाई।।
और न हमरें जोरू जाँतौ-मानत येक खुदा सैं नातौ।।
तब सैनिक बोले मुसक्याई-करिये भोजन यक सँग भाई।
साँची बात तुम्हारी मानें-पकर न लेहिं बिना पहचानें।।

दोहा - हँसिया डारो खेत में कर रतुआ अस्नान।
सैनिक संग भोजन करन पाँचउ चले किसान।।

चौपाई -भावी परसी थार रसोई - बरनन करहुँ सुनहु सब कोई।।
दरभजिया सकसा की भाजी-नोन मिरच कछयाऊ साजी।।
कुटकी अरु कोदन की रोटी-हथपउ बड़ी न पतरी मोटी।।
कुदई-दार की कर कालौनी-केंथा की चटनी अति नोंनी।।
चारक बूँद घीउ के डारे-चुरुअक दूद कुदई संग न्यारे।।
डेढ़ सेर के ढेर लगाये-कुदई मठा सन गंज भराये।।
चार-चार रोटी फटकारी - सैमन की परसी तरकारी।।
कढ़ी-कढ़ी लख लार चुचावै-ऐसौ लगै उठा सब खाबै।।
तिथि तेवहारन जवा पिसी की-रोटी मिलहे भाग किसी की।
टाठी परस धरी भौजाई-घूँघट कर बोली मुसक्याई।।
जे पाँचय को तुम संग लाला- इनके कहिये पूरन हाला।।
बोल उठे नृप चतुर सुजाना-अब लग भाभी रही अजाना।।
हँसी न कर यैसी भौजाई-जामें प्राण जाँय बरआई।।
भोजन येक संग पुन कीन्हें-पर गये सैनिक-वदन मलीने।।

दोहा- चतुर चार चर वर गये-अपने-अपने देश।
सह रानी परना गये - धीर वीर हृदयेश।।

चौपाई -रजधानी भूपत जब आये-येरौरा के विप्र बुलाये।।
ऐरौरा की सनद लिखाई-इस्ट मुरारी दियो लगाई।।
सत्रा सौ की साल नबासी-मुरलीधर ऐरौरा बासी।।
ताम्रपत्र पर सनद खुदाई - गो सूकर की आन लिखाई।।
वर्तमान सो अब लग भाई-दुबे बंसकी बनी सबाई।।
गर्भवती रानी के बालक - प्रगटे छत्रसाल कुल-पालक।
होनहार बालक के लक्षण- जन्म कुंडली बनी विलक्षण।।
छत्रसाल जब भये नरेशा- फिरी दुहाई चारउ देशा।।
वीर-धीर रणधीर सुजाना-समर कमर कस कीन्हें नाना।।
यक दिन मृगया हेतु भुलाने-कुड़ियन ऊपर सन्त दिखाने।।
संत हाथ कोदन की रोटी - चक्रांकार न मोटी-छोटी।।
दैन लगे भूपत कों सादर-लई न बैठ गये कर आदर।।
प्राणनाथ आधी कर दीन्ही-ग्लान मान भूपत नहिं लीन्ही।।
आधी की आधी चौथाई-लई भूप सो सीस चढ़ाई।।
प्राणनाथ बोले हँसबानी-महिमा लखी न रोटी जानी।
संपूरन रोटी लै लेते-धरनीधर-धरनी सब देते।।
आधी लईन आधी पाई-अब तुम नृपत लई चौथाई।।
चौथाई महिं भई तुम्हारी-पुन आसीस अब लेहु हमारी।।

दोहा - छत्ता तेरे राज में - धक धक धरती होय।।
जित जित घोड़ा मुख करै तिततित फत्ते होय।।

चौपाई -नृप अब तुम दौड़ाऔ थोरो-देखौ बहुर न कम्मर छोरो।
जहँ जहँ अश्व फिरहिं रणधीरा-तहँ तहँ महि महँ प्रगटहिं हीरा।।
समर-भूम यमनेश्वर जीतौ-जैसे खून ख्वार हो वन चीतौ।
आशीर्वाद सुनो नृप जबहीं - दौड़ायो घोड़ा को तबहीं।।

अवनि खोद हीरा ढुंढ़वाये-मोल अमोलन के बहु पाये।।
प्राण-नाथ जी के शुभ मंदिर-बनवा दये भूप अति सुंदर।।
धवल-धाम सुंदर सतखंडा -कंचन कलश फहर रहे झंडा।।
भई बुन्देलखण्ड रजधानी-वीर बुन्देला बनी निशानी।।
कलकत्ता पत्ता सम डोलै - दिल्ली खील न बिल्ली खोलै।।
आलमगीर खबर सुन पाई-तब परना पर करी चढ़ाई।।
छल बल कर जे सकें डंगाई-अनी जुरै कहुँ परै लराई।।
औरंगा नौरंगा कीन्हे - अपने राज सत्रु सनछीने।।
छत्रसाल छत्ता छित छाये - केतु समान हेतु फहराये।।
कंधा दये शिविका भूषण के-सुयश कहे कवि नरभूषण के।।
प्राणनाथ गुरुसेवा पाये - छत्रसाल सिर छत्र धराये।।
चौथे भाग भूम नृपभोगी - युद्ध-क्रुद्ध से भये वियोगी।।
अबै मुकरबा बने निशानी-नगर महेबा की रजधानी।।
प्राणनाथ शुभ ग्रंथ बनायो - ताको कुलजम नाम धरायो।।
कुलजम ग्रंथ कियो निर्माणा-लिखे रहस्य अनेक विधाना।।
धर्मा एक समाज बनाई-संत पंथ की प्रथा चलाई।।
दोहा - खान-पान सब येक है-दान-मान सब येक।।
धर्म-कर्म सब येक है - देखे मते अनेक।।

चौपाई -अब सोई विद्यमान है मंदर-पुस्तक की पूजा अति सुन्दर।
रत्नपुरी सें धामी आवें - नित नये उत्सव तहाँ करावे।।
मंदर बनो दिखबे जोगू-देखत खुशी होय सब लोगू।।
छत्रसाल के वंसजराजा - भये अनेक करे शुभ काजा।।
बलदाऊ कौ मंदर देखो - अपर न देखहु करहु न लेखो।
जुगल किशोर झरोखन झाँकी-स्वामी जू की मूरत बाँकी।
रथयात्रा भूपत करवावें-आप हाँथ रथ जोत चलावें।
स्वच्छ सरोवर इन्द्र-दमन से-कंज विकास प्रकास समन से।
जनकपुरी जब जाय सबारी-लक्ष्मीपुर की शोभा भारी।

कुण्डलिया -
भारत के जो राष्ट्रपति, श्री राजेन्द्र प्रसाद।
छत्रसाल की मूर्ति की, करी थापना आद।।
करी थापना आद स्वयं महराज बुलाये।
यादवेन्द्र के काज, बुन्देलन अति मन भाये।।
बरनै दुज घनश्याम, पिता दुखिया आरत के।।
धन्य धन्य परसाद, राष्ट्रपति तुम भारत के।
इति श्री भीम पुराणे श्री महाभारतन्तर्गत कथा वन पर्वयो छत्रसाल चरित्र इतिहास कथनो नाम तृतीयोध्यायः।।३।।

- मऊ चुंगी नाका, टीकमगढ़ (म.प्र.)

सुनें नेंक जइयो !

- डॉ. कमलेश

ओ धन्जू भैया
करन्जू ककैया
इतै कान दिइयो
सुनें नेंक जइयो
गुनें नेंक जइयो
न ठेका पै जाकें
जा तन को लजइयो
धरम कों डरइयो
करम कों डरइयो
बुरी चीज जाकों न मों सें लगइयो।
कही मान लिइयो न दारू कों पिइयो।।

जा बुद्धी घटाउत
कलह कों बढ़ाउत
हड़आ टुआरत
गढ़ा में गिराउत
जा सोने से तनकों
है रोगी बनाउत
जा रूपे से कुलकों
है बट्टौ लगाउत
का आशा का ठर्रा

कबहुँ न मँगइयो
पठोलँन पढ़इयो
बुरी चीज जाकों न मोंसें लगइयो।
कही मान लिइयो न दारू कों पिइयो।।

जौ है प्रान खाँनी
मिटँन की निशानी
पियें चाँय राजउ
तौ आवै गिरानी
विगर जाय बाँनी
उतर जाय पानी
जा दारू दिमानी सें
जा मान्सखानीं सें
दूरइ कों रइयो
न सपनेउ में जाकी
तरफ कों चितइयो
संगातिन सें कइयो
न बातँन में अइयो
बुरी चीज जाकों न मों सें लगइयो।
कही मान लिइयो न दारू कों पिइयो।।

जिन्नें जाकों पिई
कुगत तिनकी भई
सोवरन सी है उनकी
मड़ैया मिटी
आबरू सिग गई
धूर में मिल गई
उन भूले भैय्यँन
रस्ता दिखइयो
हिये से लगा
जो संदेशौ सुनइयो
सम्हल कें जू रइयो
न अब भूल जइयो
बुरी चीज जाकों न मों सें लगइयो।
कही मान लिइयो न दारू कों पिइयो।।
ओ धन्जू भैया।
करन्जू ककैया।
सुनें नेंक जइयो।
गुनें नेंक जइयो।।

- आलमपुर (भिण्ड) म.प्र.
पिन ४७७४४६

अँताक्षरी

- प्रस्तुति : श्रीमती सुशीला देवी तिवारी

- ज्ञान बढ़ाने के लिये करें हम बस में अपना ध्यान,
  करें बुँदेली लोकोक्तियों की अँताक्षरी का गान।।
- नार सुहागन घट भर लियावै दध मछली सन्मुख जो आवै,
  तौ मानों यही सगुन है अच्छा जब सामूँ बच्छा गऊ चुखावै।।
- वरसें मेघ स्वाँत विसाँत, चलै नैं राँटा बजै नैं ताँत।।
- तारन में तारौ ध्रुव तारौ बाकी सब तरैयाँ,
  तालन में ताल भुपाल कौ हैं बाकी सब तलैंयाँ।।
- येक लोकोक्ति है बुँदेली, बेकार सैं है बेगार भली।।
- लोग लँगड़े लूले कँजे बौने अरु अँधे हैं इक्का-दुक्का सँसार,
  जैसें सौ में फूली सहस में काने अरु लख में ऐंचकता नें एक नर-नार।
  तऊ ऐंचकताने कहत हैं बिरथाँ कै कँजा सें रईयौ हुसियार,
  अरु कँजा बासें करत हुसियार जाकें छाती जमें नैं बार।।
- रानिन में रानी कमलावती दूजी कोऊ नईयाँ,
  राजनू में राजा छत्रसाल अरु दूजौ कोऊ नईयाँ।।
- यह जगत् जाने बुँदेली वास, येक गुवा चुराऊ हण्डी खास।।
- सावन शुक्ला सप्तमी कऊँ गरजें मेघ अधिरात,
  हम जैं हैं पिय मालवा अरु तुम जईयौ गुजरात।।
- तुम जानौं जाँकौ राजा नँगे पाँव, पिरजा पिट सरकँ बाके गाँव।।
- वारे बाल मूँछ अरु नारी, सब वारे सैंई जात सँवारी।।
- राँड़ साँड़ अरु अरना भैंसा, जे बिचलें होबै ऐंसा-वैंसा।।
- साँची बात सचुल्ला काबै, सबके मन सें उतरौ राबै।।
- ब्याज घूस अरु दच्छना, रय हाँत काऊ के कुच्छना।।
- नरवर चड़ै नैं बेड़नी ऐरच पकै नैं ईट,
  गुदनौटा भोजन नहीं घर-घर खाव चमींट।।
- टक ऐंसी पाई चुगलखोर नैं इतै-उतै चुगली करै,
  सो खाई मार चुगलखोर नैं सबके पाँव परत फिरै।।
- रई ताप कछू खीरा में अरु भुँटिया में जा बैठी,
  कछू ताप बसी कदुआ में जे लेतन ताप झरझरा उठी।।
- ठण्डौ नहाय अरु तातौ खाय, तौ ताकें वैद कबहुँ न जाय।।
- येक राम हते इक रावन्ना जे छत्री बे वामन्ना,
  इनकी उनने नार हरी उनकी इनने जान हरी।
- ओई बखत पै एक हते कपि रामदास बजरँग बली,
  येई बात कौ बातन्ना तुलसी लिख दई पोथन्ना।।
- नेवरा गैल चलत मिल जाय अरु बाम भाग चखुँ चारा खाय,
  जब काग दाँयनें खेत सुहाय तौ सफल मनोरथ समझो जाय।।
- येक कोस पै पानी बदलै, बारा कोस पै बानी,
  गिरगिट कौ रँग पल में बदलै दुनियाँ ऐंसई जानी।।
- नगर शाहगढ़ एक महामण्डी, वी चरवा हण्डी अरु कुण्डी।।
- डुबरी मौवा बेरअचरवा गुलगद बड़ी मिठाई,
  इतनी चीजें जो चाहौ तौ गुड़ानें करौ सगाई।।
- इत चित्रा मेघ बरस गये कोदों तिली कपास,
  उत चित्रा मेघ बरस भयै गेऊँ शक्कर माँस।।
- सावन में पुरवैया अरु भादों में पछयाव,
  हरवारे हर छाँड़िकें लरका जाय जिभाव।।
- बरसें मेंघ नखत हो हाँती, गैंऊँ होये मनँख की छाती।।
- तुम कृष्ण असाड़ी प्रतिपदा मानों मेघ गरजँत,
  तौ छत्री-छत्री जूझिया अरु निहचे काल परँत।।
- तुम गड़ में गढ़ कुँढार गढ़ मानों बाकी सब गढ़ैयाँ,
  अरु फड़ में फड़ चौपड़ फड़ मानों बाकी सब फड़ैयाँ।।
- येकम् झाँसी गरे की फाँसी दूजम् दतिया गरे कौ हार,
  तीजम् ललितपुर कबहुँ नैं छाँड़िये गरे सैं मिलै उदार।।
- रातै माघ सप्तमी ऊजरी बादर जानों मेघ करँत,
  तौ मानों माह असाड़ में खूब घनौं मेघ बरसँत।।
- तनक मान्स कछू कर मरे कछू मरे ग्रह योग,
  कछुअक आपई सैं मरे इतै करनी-भरनी भोग।।
- गान समापन होत है अँताक्षरी महायोग,
  भूल-चूक कछु होय तौ क्षमा करें गुनिलोग।।

- तिवारी मुहल्ला, शाहगढ़, जिला सागर

बुन्देली गीत

- डॉ. हरीश सक्सेना

देखत-देखत, आँखन आँगे -
उड़ गऔ सुआ - हाँथ सैं री।
का कऊँ, कासें कऊँ री बिन्ना
उड़ गऔ सुआ - हाँत सैं री।।

चार आना में, सुआ लओ थौ
डोरी बाँद पंजा में दऔ थौ
सँबल-सँबल कै चलत जात थी
हल्के ढका सब सैत जात थी
तबई काऊ नैं - खैंची फरिया
सरक गई सर पै सैं चुनरिया
जौनौं मैं पलटी-तौनौं तौ -
उड़ गऔ सुआ हाँत सैं री।।

मोए लगै, ढीलौ रऔ फंदौ
मरै सारिया - डूब जाय धंधौ
सूनौ लगन लगौ थौ मेला
रै गई थी बइ ठेलम-ठेला
मोरे आगें - पांछैं उचक्का
खूबई मचा रए धमचक्का
नैंकई हाँत हलौ-तौनौं तौ -
उड़ गऔ सुआ हांत सैं री।।

-१२/२०६, अजमनी काम्प्लेक्स
हॉक केन्टीन के सामने, मकरोनिया रोड, सागर

बुन्देली माटी का महाभारत

- प्रेमनारायण पाठक 'अरुण'

रहत ना गुलाम और सहत ना दबारौ हैं,
लिखो जौ सँदेशौ भारत की परिपाटी में।
होबें प्रचण्ड, झुण्ड वीरन के बाँके हैं,
खिले रात फूल सदाँ हरी भरी वाटी में।
मिलजुर कें रात 'अरुण' सुख दुख की छाया में,
भेद नहीं मानत हैं, खाई और घाटी में,
जाहिर जगत में गठेवरा कौ धर्म युद्ध,
भओ जौ महाभारत बुन्देली माटी में।।

यह महाभारत रूपी धर्मयुद्ध वीर प्रसवनी बुन्देलखण्ड की धरती पर छतरपुर के पूर्व में सात किलोमीटर की दूरी पर ग्राम गठेवरा में हुआ। दिमान प्रतिपाल सिंह के अनुसार यह युद्ध १७८३ में, कृष्ण कवि के अनुसार १७८७ में, श्री अम्बिका प्रसाद 'दिव्य' के अनुसार १८४० में तथा एक पत्र (पन्ना इतिहास - ८६, ८७, ८८) के अनुसार १८४४ में तथा कुछ महत्वपूर्ण अभिलेखों के अनुसार यह युद्ध १७४० में हुआ, यह समय अधिक प्रमाणित और सत्य प्रतीत होता है। यह युद्ध अषाढ़ सुदी परमा (पूर्णमासी) को सवा पहर सूर्य चढ़ने पर आरम्भ हुआ, और कुरुक्षेत्र के महाभारत की ही तरह लगभग १८ दिन चला, साथ ही इस युद्ध में चार लाख पच्चीस हजार राजपूत कुर्बान हुये। एक मान्यतानुसार यह युद्ध सिर्फ एक दिन चला और इसमें सवा लाख क्षत्री शहीद हुये, परन्तु यह कुछ असम्भव सा प्रतीत होता है, इसमें दौनों ओर से सगे सम्बन्धी लड़े थे, अर्थात् एक भाई इस तरफ से तो दूसरा भाई दूसरी तरफ से लड़ा था, इसीलिए इसे दूसरा महाभारत कहा गया है। समूचे बुन्देलखण्ड क्षेत्र का कोई भी क्षत्री घर शेष नहीं रहा था, जिसने इसमें भाग न लिया हो, इसे धर्मयुद्ध की संज्ञा इसलिए दी गई है कि शर्त के अनुसार दोनों ओर की सेनायें रातों रात ही गठेवरा के मैदान में जमा हो गईं थीं और सबेरा होते ही संग्राम प्रारम्भ हो गया था। इस युद्ध का कारण मात्र अपने मान-सम्मान को रखने के लिए दो वीरों बेनीहजूरी और अर्जुन सिंह के मध्य में हुआ।

बेनी हजूरी के जन्म के सम्बन्ध में भी अलग-अलग मत हैं, कुछ इन्हें महाराज मैहर का वंशज मानते हैं, कुछ इनका जन्म राजगढ़ के समीप केन नदी के तट पर ग्राम-रैपुरा मानते हैं। एक मत के अनुसार मैहर राज्य में किसी चरवाहे को जंगल में ये नवजात शिशु के रूप में कपड़े में लिपटे हुये मिले थे, और उसने ही इनका पालन-पोषण किया और इनका नाम 'बिनिया' रखा, एक दिन गुस्से में चरवाहे की पत्नी ने इन्हें उल्टा सीधा कह दिया, तो ये उसी दिन बंजारों के साथ में पन्ना पहुँच गये। सौभाग्य से उस क्षेत्र के पशु चराने का कार्य इन्हें मिल गया। एक दिन पन्ना नरेश शोभा सिंह जू देव उसी जंगल में आखेट खेलने गये, और उन्होंने देखा कि एक वयस्क बालक झाड़ी के समीप धूप में सो रहा है, और एक नाग अपने फन से उसके मुँह पर छाया किये हुये है, महाराज उसको दिव्य शक्ति वाला जानकर अपने साथ ले आये और अपना सेनानायक तथा दीवान बना लिया, और यही 'बिनिया' बेनीहजूरी के नाम से प्रसिद्ध हुये, तत्पश्चात् यही महाराज हिन्दूपत के संरक्षक रहे।

महाराज हिन्दूपत के ही भाई अमान सिंह, खुमान सिंह, और गुमान सिंह थे। चित्रकूट की परिक्रमा महाराज अमान सिंह ने ही बनवाई थी। महाराज हिन्दूपत के तीन पुत्र हुये सरमेद सिंह, अनिरुद्ध सिंह, और धौकल सिंह। अनिरुद्ध सिंह के दो मंत्री थे कायम जी चौबे और बेनीहजूरी, जिसमें बेनी हजूरी बड़ा ही वीर था, और अनेकों से लोहा ले चुका था। वह अपने राज्य का बड़ा ही वफादार मंत्री था। एक बार बेनीहजूरी छतरपुर के कानून गो भगवन्त चौधरी की कुछ जाँच करने आये थे, गड़बड़ी पाये जाने पर बेनीहजूरी ने उनका मकान गिरवा दिया और उनकी पत्नी 'मंजरी' जो बड़ी ही रूपवती थी, उसे पकड़कर अनिरुद्ध सिंह के अंतःपुर को भेज दिया। (यह दृष्टान्त 'सती का पत्थर' श्री दिव्य जी द्वारा लिखित उपन्यास में विस्तार से है) अनिरुद्ध सिंह के देहावसान के बाद वहाँ के राजा सरमेद सिंह हुये।

अर्जुन सिंह परमार छोटी सी जागीर सुगिरा के जागीरदार थे, जो बचपन से ही स्वाभिमानी और दानी स्वभाव के थे, इनकी माता इन्हें प्यार से 'लल्लू' कहा करतीं थी, अपने स्वभाव के कारण इनकी लोकप्रियता चरम सीमा पर थी, सभी जगह इनका ही यशोगान होने लगा, ये अजयगढ़ राज्य की देखभाल भी करते थे, ये महान वीर भी थे। बाँदा के नवाब और चरखारी नरेश को भी ये युद्ध में परास्त कर चुके थे, ये कामदार भगवन्त चौधरी के पक्षधर थे।।

इसी कारण से बेनी हजूरी को इनकी प्रशंसा अच्छी नहीं लगती थी, उसने उनके प्रशंसकों से कह दिया कि "क्या बकवास करते हो, जिस दिन अर्जुन सिंह मेरे सामने आयेगा, उस दिन उसे जूता मारकर भगा दूँगा।" यह खबर अर्जुन सिंह के कानों तक पहुँची, और उन्होंने भी कह दिया कि "जिस दिन बेनी हजूरी मुझे जूता मारने की हिम्मत करेगा उसी समय उसकी गर्दन काट दूँगा।" यह बात भी बेनी हजूरी तक पहुँची, और फिर दोनों में तय हुआ कि दोनों गठेवरा के मैदान में आकर युद्ध करें। दोनों में निश्चित दिन व समय तय हुआ, अर्जुन सिंह ने अपने सहयोगियों को खून से लाल निमंत्रण भेजे, जिनकी संख्या सोलह सौ बताई जाती है।

नियत समय पर दोनों सेनायें एकत्रित हो गईं। 'कौजना हार' में सेना का पड़ाव डाला गया। 'धुरवा की बेहर' नामक स्थान पर रिसाला रखा गया, वहीं बाहर से अश्वों और हाथियों को पानी पिलाया जाता था 'हाथी ठेल' जंगल में हाथियों की सेना रुकी,

'जुगिया हार' में जोगियों की सेना का पड़ाव डाल गया।

दोनों सेनाओं के मैदान में आते ही युद्ध आरम्भ हुआ, दोनों ओर से सेनाओं का सफल संचालन हो रहा था, भूँखे सिंह की भाँति दोनों एक दूसरे से जूझ रहे थे। अर्जुन सिंह के महावत 'पीलवान' थे, बेनी हजूरी की सेना का मुख छतरपुर की ओर था, पूरे दिन दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ, शाम होते-होते बेनी हजूरी ने अपनी हार स्वीकार कर ली, और उनकी 'अठारहपनी' तोप भी अर्जुन सिंह ने छुड़ा ली।

जब बेनी हजूरी वापस जाने लगे तब रास्ते में धमना-बसाटा गाँव के निकट किसी औरत नें इनकी खिल्ली उड़ाते हुये कहा -

"सवा चार लाख भाले की ऐकई अनी।

बेनी काँ छोड़ आये अठारापनी।।"

फिर क्या था, बेनी हजूरी को बात लग गई और पुनः लौट पड़े युद्ध के लिए, फिर यह युद्ध १७ दिन और चला, अर्थात् यह युद्ध कुल १८ दिन चला, आखिरी दिन लगभग सभी सैनिक मारे जा चुके थे, जब दोनों दलों के प्रधान आमने-सामने आये तो मौका पाते ही बेनीहजूरी ने अर्जुन सिंह को जूता मार ही दिया, जूता लगते ही अर्जुन सिंह ने अपनी चमचमाती तलवार से बेनी हजूरी का सिर भी धड़ से अलग कर दिया।

इस तरह से दोनों वीरों ने अपनी-अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन किया। युद्ध समाप्त हुआ, अर्जुन सिंह के चार घाव शरीर पर लगे थे।

बेनी हजूरी बड़े ही रंगीन मिजाज के थे, उनकी पोशाक में हीरा-जवाहरात जड़े थे, बचे हुये सैनिकों ने उनकी सारी वेषभूषा लूट ली, यहाँ तक कि उनके अंग काटकर शरीर के जेवरात भी लूट लिये, कहा जाता है कि जिसे एक मुट्ठी कपड़ा भी मिल गया वह उस समय हजारों का धनी हो गया था।

युद्ध से सम्बन्धित अनेक रोचक कहानियाँ और स्थान आज भी प्रसिद्ध हैं। युद्ध में कोई दूल्हा, बारात समेत युद्ध में लड़ने आया था। जिस स्थान पर वह रुका था उस स्थान को 'दूल्हादेव' कहा जाता है। युद्ध में 'सेमाझोर' खून से भर गई थी, 'चौंतरया हार' में चतुरंगिणी सेना का युद्ध हुआ था, यहाँ के चौदह चबूतरे आज भी प्रमाण दे रहे हैं 'बघनाखाले' में बेनी हजूरी पक्ष के कुछ सिपाहियों के चबूतरे बने हुये हैं, युद्ध में मारे गये कुछ सैनिकों को 'कसइया बेहर' में भर दिया गया था, जो अब लुप्त हैं।

ग्राम काँटी के नाहर सिंह भी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुये थे, ग्राम भगवाँ जो छतरपुर के दक्षिण में है, यहाँ पर एक 'मुड़िया मुकरवां' बना है, जो किसी युद्ध में वीरगति प्राप्त किसी क्षत्री का है, ग्राम गंज जो छतरपुर के पूर्व में है, यहाँ भी वीरगति प्राप्त क्षत्री का चबूतरा है, ग्राम जैतपुर जो छतरपुर के पूर्व में लगभग सौ किलोमीटर की दूरी पर है, यहाँ के महाराज खुमान सिंह ने अपनी सैनिक सहायता अर्जुन सिंह को दी थी, दाहिने पक्ष पर अर्जुन सिंह के भतीजे निरन्द सिंह थे, पन्ना नरेश धौंकल सिंह जो छटवें नरेश थे तथा सरनेत सिंह ने युद्ध में भाग नहीं लिया था, पन्ना के ही खेमराज चौबे की युद्ध टुकड़ी पृथक से थी।

चरखारी राज्य में छतरपुर से उत्तर की ओर ५० कि.मी. की दूरी पर ग्राम स्वाँसा है, यहाँ के दो क्षत्री (चाचा-भतीजा) युद्ध में बच गये, और जब वे दोनों वापिस जाने लगे तब भतीजे ने चाचा से कहा - 'कक्का जू अपुन औरें घरै तौ लौट रये अकेलें अपुन कें एकऊ घाव लौ नईं लगो सो गाँव वारे कैहें कै जे दोई कऊँ लुके आ रयै और कात कै जंग लरकें आ आय।' चाचा ने उत्तर दिया -'हव बेटा कात तौ तें साँसी है, अपुन ने पूरी लराई देखी है, सो सब हाल लिखकें घुरवा के गरे में बाँद दो, और दोई जनें निकारौ तलवार सो एक दूसरे खाँ मारकें बीरगति पा लई जाए' और उन दोनों ने ऐसा ही किया।

छतरपुर के उत्तर में लगभग आठ कि.मी. की दूरी पर ग्राम कलानी है, यहाँ के लगभग १७२ क्षत्री युद्ध में शहीद हुये थे, इस गाँव के सभी क्षत्री युद्ध में भाग लेने के लिए गये थे, सिर्फ एक ८० वर्ष का वृद्ध शेष बचा था, जिसे 'तिजारी' आ रही थी, इस कारण वह युद्ध में नहीं जा पा रहा था, इतने में उसका घोड़ा बड़ी जोर से हिनहिनाने लगा, उन्होंने अपने हरवाहे से कहा 'इयै पानी तौ पिवा दे मोय लगत कै जौ प्यासौ आहै' हरवाहे ने उसे पानी पिलाया पर उसने नहीं पिया, दाना भी खाने को डाला, परन्तु उसने वह भी नहीं खाया, और हिनहिनाता ही रहा, वृद्ध राजपूत ने कहा 'कयै हरवाहे भैया जौ कये आ हिनहिनारव, कछू समझ में नईं आउत' हरवाहा बोला 'कुजानें कछू समझ में नईं आ रव, बब्बा जू मोय तौ लगत के जौ युद्ध खाँ आय जाबौ चाहत' फिर क्याथा वृद्ध के हृदय में वीरताई जाग पड़ी, उन्होंने अपनी तलवार निकाली और घोड़े पर बैठकर अपना शरीर घोड़े के शरीर से रस्सी के सहारे बँधवा लिया, ताकि गिरने न पाये, और जाकर के युद्ध में भाग लिया, वहाँ उनका शीष युद्ध को समर्पित हो गया, उनका वफादार घोड़ा उनका धड़ लेकर गाँव वापिस पहुँच गया, आज भी उनका चबूतरा बना हुआ है, जिसकी तीन परिक्रम लगाने पर तिजारी उतर जाती है।

छतरपुर में बेनीगंज मुहल्ला, खजुराहो के समीप ग्राम बेनीबंज, रैपुरा के पास बना हुआ महल खण्डहर के रूप में बेनीहजूरी की याद ताजा करते हैं। जहाँ बेनीहजूरी का जूता ग्राम-गठेवरा में पड़ा था, वहाँ उनका स्मारक मैहर महाराज के द्वारा बनवाया गया, जिसके जीर्णोद्धार का कार्य गठेवरा के ही श्री मेहरवान सिंह बुन्देला के नेतृत्व में कियागया। छतरपुर जिले के ५० कि.मी. के इर्द गिर्द जंगलों में भी इसी युद्ध में मारे गये वीरों के चबूतरे बने हुये हैं, कभी-कभी युद्ध से संबंधित कई अवशेष भी देखने को मिल जाते हैं।

धन्य धरा बुन्देल की - धन्य वीर बलवान।

'अरुण' रखी है देश की - आन, वान व शान।।

- सहा. शिक्षक, शास.उ.मा.वि.सटई,

जिला छतरपुर (म.प्र.)

बुंदेलखण्ड के दराई-पिसाई के प्राचीन उपकरण

- डॉ. आर.बी. पटेल 'अनजान'

मनुष्य आज बीमारियों से जकड़ा हुआ है। वह किसी भी अवस्था में किसी भी समय सुरक्षित नहीं है। चारों तरफ प्रदूषण का साम्राज्य छाया हुआहै। इसमें पलनेवाला प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी पीड़ा से ग्रसित है, जिसका मूल कारण है, मनुष्य अपनी दिनचर्या से भटककर भौतिकवादी युग की सुख-सुविधाओं का उपयोग। जिससे शारीरिक व मानसिक व्यायाम के लिये उसके पास समय ही नहीं है।

बुन्देली समाज के ग्रामीण क्षेत्रों में प्राचीन काल में केवल कुछ दशक पूर्व तक बुन्देली नारियाँ घरों में पत्थर की चक्की से गेहूँ की पिसाई दराई बड़ी तल्लीनता से करती थीं और जीवन पर्यन्त निरोग व दीर्घायु जीवन व्यतीत करती थीं, किन्तु आधुनिक युवतियाँ इसका नाम सुनते ही चौक पड़ती हैं! क्या यह सत्य है? कि नानी की कहानियाँ? हाँ ये मनगढ़ंत कहानियाँ नहीं, इनके पीछे है बुन्देली लोकसाहित्य की गीत परंपरा, जिनके गायन व श्रवण से व्यक्ति मंत्रमुग्ध हो कठिन से कठिन कार्यों को आसानी से पूरा कर लेता है।

प्रथम पहर (प्रातःकाल) के बुन्देली लोकगीतों के गायन में व्यस्त महिलाएँ शादी विवाह के लिये दराई-पिसाई घर में ही कर लिया करतीं थीं। यह चक्की प्रकृति का उपहार है, इसमें पत्थर के दो पाट गोल, पहियानुमा होते थे। जिनके बीच में एक बड़ा सा छेद होता था। बड़ा व एक छेद वाला पाट जमीन के ऊपर रखा जाता था तथा उससे छोटा पाट उसके ऊपर रखा जाता था, जिसमें बीच के अलावा दो और छेद होते थे। जिनके द्वारा उसमें गेहूँ डाला जाता था। साथ ही ऊपर वाले पाट में चार से छः इंच तक का ऊपरी भाग में गढ्ढा होता था जिसमें मजबूत लकड़ी का टेढ़ा मुठिया लगाया जाता था। जिसका आधा हिस्सा महिलाएँ पकड़कर धीरे-धीरे उसे घुमातीं हुई ऊपरी दोनों छेदों से थोड़े-थोड़े गेहूँ के दाने डालती जाती थीं, जो दोनों पाटों के बीच पिसकर आटे के रूप में उसके चारों तरफ गिरता था। इन दोनों पाटों को स्थिर रखने के लिये एक मजबूत लकड़ी की कील लगायी जाती थी, जिसका मोटा व बड़ा हिस्सा जमीन में खोदकर गाड़ दिया जाता था एवं ऊपरी हिस्से में चकिया के दोनों पाट फंसाये जाते थे, इसी के सहारे चकिया चलती थी। चकिया का नीचे वाला पाट स्थिर रहता है, जबकि ऊपर वाला पाट घुमाया जाता था, जिसमें काफी परिश्रम होता था।

चकिया चलाते समय महिलाओं को माघ-पूस की ठिठुरन का एहसास नहीं होता था, क्योंकि इसमें पर्याप्त शारीरिक व्यायाम हो जाता था, तभी तो ग्रामीण क्षेत्र में नित्य चकिया चलाने वाली महिलायें शारीरिक रूप से स्वस्थ्य रहती थीं एवं रोगों का शिकार नहीं होतीं थी। इस क्रिया में नारियों के पंजा, कुहनी, बाजू, कंधा, गर्दन, पेट, कमर आदि पर पर्याप्त जोर पकड़ता था जिससे उनके इन अंगों में कोई विकार नहीं उत्पन्न हो पाता था।

वर्तमान समय में नब्बे प्रतिशत महिलाएँ पेट व कमर की बीमारियों से ग्रसित हैं, क्योंकि वे क्षमता अनुसार शारीरिक मेहनत नहीं करतीं, वे पूरा समय रसोई घर व पास पड़ोस की महिलाओं के साथ वार्तालाप में निकाल देतीं हैं। कुछ महिलाएँ अपनी गृहस्थी के सभी काम स्वयं करतीं हैं, जैसे, झाड़ू, पोछा, बर्तन धोना, कपड़े धोना व भोजन आदि में व्यस्त रहतीं हैं, तभी तो वे महिलाएँ कम बीमार होती हैं।

गृहणियाँ यदि अपनी प्राचीन धरोहरों दराई-पिराई के उपकरणों को पुनः प्रारंभ कर दें तो वे स्वस्थ्य रहते हुए दराई-पिसाई व बीमारी में होने वाले अपव्यय को रोक सकतीं हैं, साथ ही उनके घरों में देर से जागने वाले बच्चों को अलार्म लगाने की जरूरत नहीं होगी। वें स्वतः इसकी आवाज सुनकर प्रातः जल्दी उठ जायेंगे, क्योंकि यह कार्य रात्रि के अन्तिम प्रहर (प्रातः ४ से ७ बजे) में ही होता है। कृषि कार्य से जुड़े व्यक्ति भी इसकी आवाज सुनकर अपने जानवरों की देखभाल प्रारंभ कर देते हैं, अर्थात् चकिया हम सभी की दिनचर्या निर्धारित करती है।

बुन्देलखण्ड में चकिया को सभी रागों की रानी कहा गया है। महिलाएँ इसे चलाते समय कुछ न कुछ गुनगुनाती रहतीं थीं जिससे उनका कण्ठ भी सुरीला होताथा, साथ ही घरों में रहने वाली नवबधुएँ व युवतियाँ इन गीतों से जीवन निर्वाह संबंधी शिक्षाएँ ग्रहण करतीं थीं। सुबह पहर के गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

ऐजी एतै बहै गंगा, उतै बहै जमुना बीच चंदन क्यारा पेड़।
ऐजी ओही तरै सीता झूला झूलत है, राम खेलहि चौपार।
ऐजी झूल झाल सीता घरहि का डगरी राम गही ऊँकी बाँह।
ऐजी फूटत है मोरी चंदन चुरियाँ मुरकत है मोरी बाँह।
ऐजी फिर मंगाय देउँ चंदन चुरियाँ मुरकै न पावै बाँह।
ऐजी काहे मंढ़ाय देंउ कंचन चुरियाँ काहे मढ़ाऊँ तोरी बाँह।
एजी सोने मंढ़ाऊँ तोरी कंचन चुरियाँ रूपे मढ़ाउँ तोरी बाँह।
ऐजी हँस हँस पूंछे माता सुनैना इतनी बिलमं कहाँ लाग।
ऐजी फुलवा बिनत माता भई है दुपरिया गजरा गुहत भई साँझ।

पत्थर की चकिया को जाँत या जाँते भी कहते हैं। इनके छोटे आकार वाली चकिया जँतरिया कहलाती थी, जिसमें चना, मसूर, अरहर, उर्द, मटर, आदि की दालें बनाई जाती थीं। धान की दरई के लिये भी यहाँ एक विशेष प्रकार का उपकरण उपयोग किया जाता था, जिसे 'कुनैता' कहते थे। इसका आकार भी पत्थर की चकिया की तरह होता था। इसमें नीचें वाला पाट पत्थर का तथा ऊपर वाला पाट मिट्टी का बना होता था, जिसका वजन लगभग पच्चीस-तीस किलो ग्राम होता था। इस उपकरण से तैयार चावल का अपना अनोखा स्वाद होता था।

धानो को कूटकर भी चावल निकाले जाते थे, इसके उपयोगी उपकरण मूसल व ऊखली थे। मूसल लकड़ी का बना होता था जिसकी लम्बाई ढाई-तीन फिट होती थी। इसका एक सिरा पतला व दूसरा शिरा मोटा होता था, साथ ही बीच में पकड़ने के लिये चारों तरफ कटा होता था। ऊखली पत्थर की गुढ्ढानुमा बनी होती थी, जिसे जमीन की सतह पर गाड़ दिया जाता था। इसी में जिस वस्तु को कूटना होता उसे थोड़ा-थोड़ा डालते जाते एवं निकालते जाते थे। इन्हीं के माध्यम से यहाँ के निवासी मुरका(तिल-महुआ का मिश्रण) तैयार करते थे और उसे बड़े चाव से खाते थे, जो आज देखने को नहीं मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि बुन्देलखण्ड जनपद के ग्रामीण इलाकों में ये पिसाई-दराई के उपकरण कुछ दशक पूर्व देखे जा सकते थे, कहीं कहीं आज भी देखे जा सकते हैं। इन उपकरणों का उपयोग करने वाली महिलाएँ आज भी स्वस्थ्य जीवन व्यतीत कर रहीं हैं।

- बजरंग नगर कॉलोनी, छतरपुर

बुन्देलखण्ड के स्थानवाची नामों में सामाजिक स्वरूप एवं संस्कृति

- डॉ. कामिनी

बुंदेलखंड, भूमि दशा की दृष्टि से विशिष्ट, सामाजिक रूप गठन की दृष्टि से विविधतापूर्ण, इतिहास की दृष्टि से गरिमामय और साँस्कृतिक धरातल पर बहुवर्णी है। इस भू-भाग की सीमायें निरंतर घटती-बढ़ती रही हैं।

स्थान-नाम भाषा की जीवंत शब्दावली हैं। नाम व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक अधिक हैं। स्थान-नाम घिस-मँजकर रूपान्तरित होते हुये शताब्दियों तक अपना मूल्य स्थिर रखते हैं। पाणिनी के काल से लेकर वर्तमान तक स्थानवाची नामों का महत्व समान रहा है। स्थान-नामों में सदियों की परंपरा सुरक्षित रहती है। भाषा-भूगोल के धरातल पर स्थान-वाची नामों का समाज से सीधा-सीधा संबंध है। वर्गभेद, वर्णाश्रम, उत्सव, मेले, उद्योग धंधे, कला-कौशल और शिष्टाचार स्थान-नामों में समावेशित होकर समाज के आंतरिक गठन की यथार्थ जानकारी देने में समर्थ होते हैं। एक स्थान से उखड़कर दूसरे स्थान पर बसने वाले जाति समूह अपने साथ पहले वाले सत्य को गोत्र और आसाद के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। कोतवार, इंदुरख्या, बिजपुरिया, कुढ़रा, नरवरिया और बाँसवाड़े ऐसे ही आसाद, गोत्र, अल्ल और आँकने हैं। जिनमें क्रमशः कोतवार (शिवपुरी), इंदुरखी (भिण्ड), बिजपुर (भिण्ड), गढ़-कुढ़ार (ललितपुर), नरवर (शिवपुरी), बाँसबाड़ा स्थान-नाम समावेशित है।

टहलुआ वर्ग के निवास करने वाले स्थान-वाची नामों तथा शासक वर्ग के निवास वाले स्थानवाची नामों में वर्ग-भेद सर्वत्र दिखाई देता है। यह वर्गभेद गाँव, खेत, मुहल्ला, गली, पुरा, घर, स्त्री और पुरुष सभी स्तरों पर पाया जाता है। खेतों के नामों में भूमि के छोटे टुकड़े-टूँका, टुकई, टपरिया और अढ़ाई बीघा लघुता का बोध कराते हैं। चौसठा, चालीसा और अट्ठाइसा में बड़े किसान के चेहरे की गरिमा उच्चारण के अवसर पर वर्गभेद को गहरा कर देती है। लखपती का पुरा, धोरी साव की हवेली और बाग नौंलखा संपन्नता के जितने करीब है, चिटुआ की टपरिया (भिंड) और चेरी वारे का पुरा (मुरैना) में विपन्नता उतनी ही अधिक पूर्वपदों के आधार पर अर्थ देती है। करैया हबेली (विदिशा) लिधौरा हवेली (ग्वालियर), गढ़ी सेंमरा (छतरपुर), मुंगलिया कोट (सीहोर), मकड़ाई किला (होशंगाबाद), ताजपुर महल (रायसेन) स्थान-नामों के साथ समावेशित हवेली, गढ़ी, कोट, किला, महल विभेदक संपन्नता का बोध देने में समर्थ है। चरखारी हमीरपुर का 'प्रतिष्ठा' रायसेन का 'नैन विलास' मुरैना का 'गरलखोह' और छतरपुर का 'वसुधा' स्थानवाची नाम जिस तत्समता को लिये हुये है, वह सामाजिक मनोदशा की काल क्रमानुसार धरोहर है।

शब्दावली के आधार पर स्थानवाची नामों में समाज की सामान्य दशायें भी सुरक्षित हो जाती हैं। मुरैना जिले के कुरकुटा, सागर जिले के गहेरी, भिण्ड जिले के हलुआपुरा स्थानवाची नामों में ऐसे ही सामाजिक स्तर हैं।

जन रुचियों और आस्था के आधार जहाँ-जहाँ स्थानवाची नामों में समावेशित हैं, वहाँ इस भू-भाग की साँस्कृतिक झलक स्वतः दिखाई दे जाती है। इस भू-भाग का जन-जीवन आस्थावान है। इसी से ईश्वर, अवतार, देवता, देवियाँ और ग्राम्य देवता स्थान-अभिधानों में समावेशित है। व्रत, त्यौहार, मेले और तीर्थ-स्थान आस्था के मूल में रहते हैं, इसी से लोक-जीवन में नदियाँ, 'गंगा मैया' हो जाती हैं। आँगन-आँगन में 'तुलसीघरा' और गाँव-गाँव में 'हरदौल का चबूतरा' बुंदेली-संस्कृति की सहयोग और समन्वय को आधार बनाकर चलता रहा है। राम-राम, सीताराम, राधेश्याम अभिवादन के आधार रहे हैं। मुल्तानी मंगलपुर और मोहम्मद नगर उर्फ सती खेड़ा स्थान - अभिधानों की रूप-रचनायें साँस्कृतिक समन्वय के लिये किये गये प्रयासों का जीवन्त प्रमाण हैं।

संस्कृति सार्वजनीन संपदा है। वह सहानुभूति का समाज तैयार करती है। बुंदेलखंड के स्थानवाची नामों में साँस्कृतिक-समता और भ्रातृत्व भावना समान रूप से झलकती है। मुरैना की ब्रजगढ़ी, पन्ना के ब्रजपुर, छतरपुर के ब्रजपुरा और दमोह के ब्रजपानी में साँस्कृतिक-आस्था है। बुंदेलखंड के स्थानवाची नामों से संबंधित लोकोक्तियाँ घटना-विशेष या अनुभव-विशेष की साक्षी है। बुंदेलखंड के स्थानवाची नामों में झलकती सामाजिक एकरूपता और साँस्कृतिक समता शताब्दियों पुराने इतिहास की गवाह है।

- शास. गोविन्द महाविद्यालय,
सेंवढ़ा (दतिया) म.प्र.

बुन्देली छवियों के छबीले छविकार संतोष सिंह बुन्देला

- डॉ. कुँजीलाल पटेल 'मनोहर'

बुन्देली भावभूमि पर अनन्तकाल से अनेक कालजयी विभूतियों ने यहाँ आकर अपने भौगोलिक परिक्षेत्र से बाहर अपनी रचनाधर्मिता का परचम फहराकर बुन्देलीभूमि को गौरवान्वित किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोकछवियों के कुशल चितेरे एवं लोकरागनियों के ऐसे अनगिनत लोकसाधक हैं, जिनके नाम इतिहास में आज तक अंकित नहीं हो पाये। अनेक विभूतियां यहां पर आईं और चली गईं। कतिपय विभूतियों के नाम से हम जितने परिचित हैं, उनके साहित्यिक अवदान से उतने ही अपरिचित हो गये हैं।

अनेक रचनाकारों का साहित्य हमारी वाचिक परम्परा में हैं, लेकिन उनका मूल व्यक्तित्व प्रकाशकीय परम्परा से हमेशा के लिये उन्मूलित हो गया है। बुन्देली को बोली से विभाषा तथा विभाषा से भाषा की मंजिल तक पहुंचाने में राजनैतिक प्रवृत्तियों से ज्यादा उसके लोकसाहित्यिक अवदान को भुलाया नहीं जा सकता। आल्हा-ऊदल जैसे वीरवांकुरों की लोकगाथाओं के अमर प्रणेता आल्हाकार जगनिक एवं प्रेमोन्माद का मनमोहिनी प्रभाव डालने वाले लोकछन्द चौकड़िया के जन्मदाता फागकार ईसुरी बुंदेली साहित्य में आज भी मील के पत्थर हैं।

हिन्दी साहित्य की भांति बुन्देली में गीतपरम्परा का प्राचीन स्वरूप यहां के प्रकीर्ण साहित्य में खोजा जा सकता है। यहां के जनसमुदाय द्वारा गाये जाने वाले ऋतुपरक लोकगीत वास्तव में बुन्देली गीतपरम्परा के ही अभिन्न अंग हैं, भले ही उनके रचनाकारों के नाम से ऐतिहासिक लोकपरम्परा अनभिज्ञ है। धीरे-धीरे इसी लोकपरम्परा से ऋणभार लेकर आधुनिक बुन्देली गीतपरम्परा की शुरुआत बुन्देली रचनाकारों द्वारा की गई। लोकशैली के जिन गीतों को लोकपरम्परा ने आत्मसात कर लिया वे कालान्तर में लोकगीत बन गये। लेकिन जो गीत लोकशैली से थोड़ी हटकर रचे गये वे गीत कहलाने लगे।

बुन्देलीभाषा में आधुनिक गीत परम्परा को अखिल भारतीय मंचों के माध्यम से संतोष सिंह बुन्देला ने अनगिनते स्रोताओं को अपने बुन्देली गीतों की धुनों का चहेता बनाया। बुन्देला जी के चहेतों ने इनके बुन्देली गीतों का रसास्वादन ही नहीं किया, बल्कि दिल खोलकर सराहा भी है। वास्तविकता यह है कि उन जैसे बुन्देली गीत लोकमानस के आसन पर बैठकर केवल वही लिख सकते थे और बुलन्द स्वर में वही गा सकते थे।

ग्रामीणजीवन के अनुरूप लोकाचरण, लोकप्रसंग, लोकविश्वास, लोकसंस्कार, लोकबिम्ब, लोकसंस्कृति एवं लोकत्योहारों की अनगिनतीं छबीली छवियों को चित्रित करने के निमित्त उन्हीं जैसा आदमकद से भी ज्यादा ऊँचाई वाला व्यक्तित्व तथा समूची लोकधरोहर को अपनी स्मृति के अकूत भण्डार में समाहित करने वाला अनुभूति का मसीहा यथार्थपरक अभिव्यक्ति के लिए होना चाहिए। बुन्देली गीत परम्परा में इस धर्म कानिर्वहन संतोष सिंह बुन्देला ने जीवनपर्यन्त पूरी तन्मयता से किया है।

बुन्देला जी के उपलब्ध बुन्देली गीतों में उनका सारा व्यक्तित्व साकार दिखाई देता है। व्यक्तित्व के अनुरूप कृतित्व एवं कृतित्व के अनुरूप व्यक्तित्व संतोष सिंह बुन्देला के रचना संसार में स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है। उनकी अधिकांश रचनाओं में कबीर जैसी शब्दों की न्यूनाधिक्य तथा पुनरावृत्ति की प्रवृत्तियां अवश्य देखने को मिलती हैं, लेकिन इन पर सम्भवतः उन्होंने कभी भी ध्यान नहीं दिया। वे जब अपने गीतों को बुलन्द स्वर में गाते थे तब इन सारी दोषमूलक प्रवृत्तियों को लयात्मक अन्दाज में इस तरह झेल जाते थे कि स्रोताओं का इन काव्यदोषों की प्रवृत्तियों की ओर ध्यान ही नहीं जाता था।

संतोष सिंह के व्यक्तित्व पर बाल्यकाल से ही ग्रामीण परिस्थितियों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा, जो उनके कृतित्व के माध्यम से यथार्थ रूप से अभिव्यक्त हुआ है। उनकी जन्मभूमि के आसपास का सौन्दर्य उन्हीं के एक गीत की निम्न पंक्तियों में किस प्रकार चित्रित हुआ, वास्तव में अवलोकनीय है -

गाँव लगें रमनीक इतै के, नदियां ताल भरे हैं।
गेर-गेर पर्वत मालायें, मानों कोट फिरे हैं।
चम्बल, केन, नरबदा, जमुना, जनमन की सब पीरा हरे।

बुन्देली साहित्य और संस्कृति के पावन तीर्थ चित्रकूट, पवित्र सलिला मन्दाकिनी, पन्ना के जुगलकिशोर, तथा ओरछा के रामलला के प्रति गीतकार की आस्था गीत की निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है-

चित्रकूट चिंता हर लेबै, पाप हरन मन्दाकिन।
तुलसी के शब्दन में जो है, सब पतितों की दामिन।
पन्ना जुगलकिशोर ओरछै, रामलला धनु तीरा धरे।
पग-पग पै निरमल नीरा भरे।

संतोष सिंह बुन्देला ग्रामीणक्षेत्रों की लोकरागिनियों से अत्यन्त प्रभावित रहे। बुन्देली लोकगायकी के स्वर उन्हें आत्मिक अनुभूति देते हैं। अनेक लोकविधाओं की पंक्तियों का प्रयोग उन्होंने अपने बुन्देली गीतों में किया है। ग्रामीण छवियों से ओतप्रोत उनकी कुछ पंक्तियां यहां प्रस्तुत है -

लमटेरा है संत इतै के, फाग उर्वशी जानौ।
बिलवारी खेतन की रानी, अन्नन भरे खजानौ।
दीवारी के गीत कन्हैया, गोपिन के तन चीरा हरे।

बुन्देली अंचल के तीजत्यौहार, देवीदेवता, रीतिरिवाज लोकजीवन में असाधारण आस्था के प्रतीक ही नहीं, बल्कि उन्हें मनाने से जीवन में हर्षोल्लास तथा आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार होता है, इसलिए सभी पर्वो तथा देवीदेवताओं के प्रति बुन्देला जी आत्मीय अनुभूति को किस प्रकार अभिव्यक्ति देते हैं, आज हम

सबके लिए अनुकरणीय हैं -

सावन और कन्हैया आठें, दसरव और दिवाली।
भूलें नही तिलैंयाँ बुड़की, बा होली की लाली।
खेरी गौंड़ गुरैया मैया, बरा नीम की छैयाँ।
श्री बजरंगबली के दरसन, करौं परौं दोइ पैयाँ।
हर पत्थर भगवान इतै के, हर पत्थर हीरा है।
हर बेटी झांसी की रानी, अथवा फिर मीरा है।

वैदिक तथा ग्राम्यसंस्कृति में जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी ज्यादा महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि जननी और जन्मभूमि के ऋण से मानवीय प्राणी कभी उऋण नहीं हो सकता। इसी तथ्य को संतोष सिंह अपनी चिरपरिचित शैली में निम्नानुसार महत्वांकित करते हैं -

जौन गांव के पंचतत्व सें, बनी जा अपनी काया।
माँ से पहलां जी धरती नें, हमखां गरें लगाया।
अपनौ स्तनपान कराकें, धोओ मलमूत्र हमारौ।
बोलन चलन सिखाओ जीनें, दैकें सदा सहारौ।
पनघट कुँआ रहुनियां बखरी, बे अथाई गलियारे।
जिनकी गोदन खेल-खेल कें, हमने होश सम्हारे।
ऊ मां के पद कमलन में, जीवन भर करौं नमन मैं

सांध्य बेला को हमारे यहाँ गोधूलि की बेला कहा जाता है। इस बेला में ग्रामों का धुआं तथा धूलयुक्त वातावरण, पालतू पशुओं का घर आना, गली खोरों में बालक्रीड़ाओ की धमाचौकड़ी को बुन्देलाजी कभी भी भुला नहीं पाये। इन ग्राम्यछवियों की झलक गीत की निम्न पंक्तियों में कैसी साकार लगती है -

बा गोधूरि धुआं कौ सागर, बा संजा की बेला।
कुकुरकोंडुआ तुआतार कौ, झुरमुट भरो झमेला।
वे गोरी नारी रातें, रातन की बे मीठी बातें।
मोरी चिठिया उनके नाँव, लगे न नौनों दुनिया में।

प्राथमिक शिक्षा का बचकानी जीवन ग्रामीण क्षेत्रों में कितना शरारती, खुराफाती, धमाचौकड़ी तथा क्षणिक नोंकझोंक वाला होता है। राजा साहब ने स्कूली शिक्षा के दौरान देखे और किये बचपन के क्रियाकलाप को एक गीत की निम्न पंक्तियों में यथार्थ रूप से चित्रित किया है -

पढवे गये मदरसै लुक कें, भग गये लरकन में।
हमसे पैलां पौंच शिकायत, भाग घरै घरकन में
खेलन गये पहारै हारै, खाँई बौल बगइयां।
बैठत हतै बड़े झिन्ना पै, हती दहीली दैंया।
खैबे करे भुंटिया बालें, गये खेत खरयानें।
रमतगमत घर आये गांव के, कयें लरका बरियानें।

लोकव्यवहार में अन्जान को जानने की जिज्ञासा बड़ी प्रबल होती है। इसलिए लोकसंस्कृति में अपरिचित से परिचित होने के लिए बातचीत के माध्यम से साक्षात्कार जैसी परम्परा ग्रामीण लोकजीवन में व्यवहारित है। सामने आये अन्जान व्यक्ति से उसका नाम, ग्राम तथा बिरादरी पूंछकर उसका आत्मीय स्वागत जलपान से किया जाता है। बुन्देला जी के एक प्रसिद्ध गीत की कुछ पंक्तियां यथार्थपरक एवं आत्मीय भावुकता से कितना परिपूर्ण है, वास्तव में विचारणीय हैं -

को ठाकुर तुम आये कितै सें, और तुम्हें काँ जानें।
मोखाँ ऐंसौ लगत होय, जैसें तुम जाने मानें।
पसीना तनकौ बिलमा लेव, और दो-दो बातें कर लेव।
ना आगें पानी मिलै पसेव, हौ प्यासे मजलन के मारे।
मांजी गड़ई निकारो गगरा, जब बा पानी लाई।
मैंने पूछो नांव तुम्हारौ, बोली गोरी बाई।
फिर मैं पूंछी बिन्ना तौरो, ब्याव भओ कै नईयां।
झुक गये नैन तनक मुसक्याँनी, फिर भर दईं तरैयां।
तुरत मैं बोलो गोरी बाई, आज सें मैं हौं तोरो भाई।।

ग्रामीण लोकजीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सम्बन्ध भाई-बहिन का होता है। यह पूर्णतः निष्पक्ष, निष्कपट, निःस्वार्थ तथा आत्मीय भावात्मकता से परिपूर्ण माना गया है। सम्बन्ध चाहे सहोदर हो या अन्य किसी भी तरह के क्यों न हो, कच्चे धागे के सम्बन्ध पूर्णतः पक्के और जीवन पर्यन्त चलने वाले होते हैं। यही कारण है कि ग्रामीण समाज और संस्कृति में हमउम्र लड़का-लड़कियों में भाई-बहन का सम्बोधन ही नहीं, अपितु रिश्तों का निर्वहन भी दोनों तरफ से बराबर होता है। इतना ही नहीं बल्कि बिना भाई की लड़की को हम उम्र राहगीर तक उसे बहिन, बिन्ना आदि से सम्बोधित कर दे तो लड़की का भातृत्व प्रेम किस प्रकार उमड़ने लगता है, इस सम्बन्ध में ठाकुर साहब की मात्र कुछ पंक्तियां कितनी प्रभावी लगती हैं -

मोरी उमर तुमें लग जावै, भाभी रहे सुहागन।
दूधन पूतन फलै खेल हैं, चन्दा सूरज आंगन।
लौट आई घर भैया दोज, मनाहों अब मैं सावन रोज।
कै मोरी जनम-जनम की खोज, करी तुम भईया रे।
रहत तो औरन के सिर भार, बिना सारे की ती ससरार।
दुक्ख सब मिट गये हैं, कै भैया मिल गये हैं।

ग्रामीण जीवन में खेती-किसानी एवं मेहनत-मजूरी करने वालों की जिन्दगी में आराम और अवकाश के लिए जरा भी गुंजाइश नहीं, बल्कि रात-दिन की पूरी दिनचर्या बड़ी आपाधापी पूर्ण होती है। भोजन पानी ग्रहण करने के लिए भी समय नहीं मिलता, फिर आराम की तो बात ही दूर है। बुन्देलाजी ने एक किसान की काम-काजी जिन्दगी के प्रति कुछ इसी प्रकार की संवेदनात्मक अनुभूति को अभिव्यक्ति दी है -

दोई जोर की पसर चरावें, और सब दिन हर हाँकें।
बिना कलेवा दिन लौटे लौ, निकरीं आबें आंखें।
भारी परे क्वांर के घाम, केवला बरकें हो गई चाम।
बैठवो हो गओ मोय हराम, तऊँ पै तौरो मन खारो।
कछू न बोलत हँसत बतात, है ऊँसी खिसियानी सी रात।

काऊ सैं लर आई, कछू कओ कै बाई।

बुन्देली लोकजीवन में लोकलाज-आड़पर्दा की इतनी प्रभावशाली मर्यादा है कि दाम्पत्य जीवन में भी एक दूसरें से बातें करने के लिए समय और जगह आसानी से उपलब्ध नहीं है। कुँआ कछवारों पर रोटी पानी ग्रहण करते वक्त समय मिल गया तो दो चार बातें पत्नी अपने पति से अपनी व्यथाकथा कुछ इस प्रकार कह लेती है -

तुम धारौ बा भुरी भैंसिया, मैं को आँव तुम्हारी।
जाव करौ ना मीठी बातें, तुम निरदयी हौ भारी।
तुमै इतै बगदर के मारैं, नीद आउत है नईयां।
मैं सोउ उतै उसारे में हो, गिन-गिन रात तरैयाँ।
कटै न अट्टपहारन रात, परोसन खुसर-खुसर बतियात।
निगोड़ी हँस-हँस कैं जौ जात, कौल है दिया बुझा डारो।
उनकी सुन-सुन कें किलकार, मोरे दिल में उठत दरार।
और का कँवों आगे, लाज मोखां लागे।

किसान रात को खेत-कुआँ से घर आकर उसार गुआसली के बाद ब्यारी कर थोड़ी देर आराम करता ही है कि उसकी माँ पसर चराने के लिए भैंसियां ढीलने, सुबह होने, मुर्गा बोलने जैसे सम्बोधन देकर लड़के को जल्दी उठने के लिए बार-बार कहती है। सास की इन बातों का बेचारी बहू पर क्या प्रभाव पड़ता है। बुन्देलाजी की कुछ पंक्तियों में बहू के उद्‌गार कितने मार्मिक एवं संवेदनशील हैं -

बाँग सुनत मुर्गा की डुकरिया, लरका खां चिल्लावै।
उतै बहुरिया कहै विधाता, और रात रुक जावै।
भओ नइयां दिन डूबत झेल, बढ़ानौ नहीं दिया कौ तेल।
अबै कछु बातई न हो पाई, और खलबल पारें हैं बाई।
रातें होन लगीं कै हलकीं, कै बाई बौरानी।
कै कुकरा बैरी नै मोसैं, लगी भँजाई पुरानी।

बुन्देलाजी ने अपने गीतों में पनघट और पनहारियों के ग्रामीण दृश्यों को बड़ी सजीवता से पूरे उभार के साथ तनमयता पूर्वक चित्रित किया है। बुन्देली पनहारी का विविध उपमाओं से उपमित यथार्थचित्रण भला किसे आकर्षित नहीं करता होगा -

पानी खैंचत झुकी कुँआ पै, अंग अनौखे झलके।
मानौ जमनाजल में झांके, गुम्बज ताजमहल के।
भार जवानी उर पानी कौ, करया लफ-लफ जावे।
ज्यों कनैर की डार बसंती, हबा में झोंका खावै।
नीर के भारन गरदन लचकै, कुच अँगिया के भारन।
भार नितम्बन चाल है जैसे, नदिया चढ़े पहारन।
पानी बहै बीच अँगिया सें, झटपट तरैं समावे।
ज्यों क्याँन की धार पंडवन, में अलोप हो जावे।

'मिठौआ है ई कुआँ की नीर' नाम से डॉ. बहादुर सिंह परमार द्वारा सम्पादित बुन्देलाजी के गीतों में-

'ये री कर दई बहुत अबेर, लगा रओ कुकरा कबसे टेर, चाँदी कैसे फूल झरैं' गंगधूरि की बेरा, खेत हमारे पूजा घर हैं, जबसे छोड़ो अपनो गांव, देखकर जे फागुन के मेह, चली हवा पुरवाई जमकें, सरग तरैयां कीनें गिनलई आदि गीतों में प्रचुर मात्रा में नवीन उपमाओं का प्रयोग गीतकार द्वारा किया गया है। खेत हमारे पूजा घर हैं गीत में कुछ नवीन उपमायें दृष्टव्य हैं -

आये मस्त हवा के झोंका, खड़ी फसल लहरावे।
भरी जवानी में हेलन की, ज्यों कम्मर बलखावे।
चिरैयां गायें लता के गीत, रांट छेड़े शास्त्रीय संगीत।
कै जीने सब दुनिया लई जीत, है जैसे मन्नाडे की तान।
टुनटुन होरई चम्बल भैंस, है बहरें ठाँड़ी काली डैंस।।

बुन्देलखण्ड तीजत्यौहारों का जनपद है। यहाँ आये दिन कोई न कोई त्यौहार हर महीने, हर पखवाड़ा और हर सप्ताह मनाया ही जाता है। संतोष सिंह बुन्देला ने अपने गीतों में अधिकांश त्यौहारों का बखूबी चित्रण किया है। बानगी के तौर पर दीपावली का पर्व बुन्देलखण्ड में कैसा दृश्य प्रस्तुत करता है, साथ ही बिना भाई की बहिन मायके जाते समय गली में किस प्रकार बिसूरती है -

आज दिवारी के दिन नौनी, लगै रात अँदयारी।
मानो काछी की बिटिया ने, पैरी जरी की सारी।
मौंनिया नचै छिटक्कें खोर, कै जैसे बन में नाचे मोर।
दिवारी गावैं कर-कर सोर, कै भइया बिन बछला की गाय।
बिन भइया की बहिन बिचारी, गली बिसूरत जाय।

भले ही विधाता ने बुन्देलाजी की अपराजित काया को समय से पहले पराजित कर दिया हो लेकिन बुन्देली ध्वन्यालोक में रचा-बसा संतोष सिंह बुन्देला का व्यक्तित्व अपने कृतित्व को गांव की आत्मा के मंच पर अपनी आत्मा की बुलन्द किन्तु मधुर-मधुर लय में धीरे-धीरे अपने चहेतों के कानों में कुछ इस प्रकार आज भी गुनगुना रहा है -

जबसें छोड़ो अपनों गाँव, लगै न नौनों दुनिया में।
मैं कैसौ करौं काँ जाँव, लगै न नौनों दुनिया में।
चैयाँ मैयाँ गोल बटैयाँ, कुकरूँ कूँ की तानें।
तुआतार और आँख मिचौनीं, छीन लई विधना ने।

बुन्देला जी ने बुन्देली लोकजीवन के समस्त पहलुओं पर बड़ी संवेदनापरक मौलिक रचनायें प्रचुर मात्रा में रची हैं। सभी ऋतुओं, सभी त्यौहारों, सभी रीतिरिवाजों, सभी लोकसंस्कारों, सभी देवीदेवताओं, जीवन के सभी अनुभवों, सभी सुखद और दुखद प्रवृत्तियों को ग्रामीण अंदाज में लोकमानस की अनगिनत छवियों को साकार रूप में छबीले सौन्दर्य से सुसज्जित किया है। आवश्यकता है उनके अप्रकशित रहे शेष रचना संसार को संकलित करके उसको गहराई से मूल्यांकित कर अखिल भारतीय स्तर पर स्थापित करने की। तभी सच्चे अर्थों में उनकी धरोहर को हम समझ सकेंगे और यही हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

- रेडियो कॉलोनी के सामने, छतरपुर

बुन्देली लोकगीतों में काव्य तत्व

- डॉ. (श्रीमती) गायत्री वाजपेयी

काव्य तत्व से अभिप्राय है वे अवयव जिनसे काव्य का स्वरूप संघटित होता है। काव्य के दो पक्ष स्वीकार किये गए हैं एक अंतरंग और दूसरा बहिरंग। अंतरंग पक्ष के अन्तर्गत समस्त भाव एवं मनोविकार आदि आते हैं तथा बहिरंग पक्ष में रीति, गुण, अलंकार एवं छन्द विधान आदि आते हैं। इन दोनों के ही मणिकंचन, संयोग से काव्य का विधान होता है। मेरा उद्देश्य यहां लोकगीतों में काव्य तत्व की तलाश करने का है। यद्यपि लोकगीतों में रस, अलंकार, छन्द विधान एवं भाव तुक आदि काव्य के दशांगों की विद्यमानता अनिवार्य नहीं है, परन्तु इसका यह तात्पर्य भी नहीं है कि लोकगीतों में काव्य के ये आवश्यक तत्व होते ही नहीं है, बल्कि इस दृष्टिकोण से लोकगीतों का भण्डार अधिक समृद्ध है, तथापि ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि लोकगीत लोकमानस के उन्मुक्त हृदय और अबाधित कण्ठ से निःसृत, स्वाभाविक, अकृत्रिम एवं अविरल भाव रस धारा है। जिसके प्रभाव में लोक रचनाकार न तो एकान्त भाव में लीन होता है और न ही किसी विषय पर अपने को केन्द्रित करता है, वरन् वह तो अवसर प्राप्त होते ही स्वाभाविक गति से गीतों का सृजन करता है। यही कारण है कि लोकगीतों में जहाँ कहीं भी रस, अलंकार आदि का विधान प्राप्त होता है वह सहज व स्वाभाविक ही होता है। उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता व बनावट का स्थान नहीं होता। कदाचित लोकगीतों की इन्हीं विशिष्टताओं को दृष्टिगत रखते हुए पं. रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतों के सम्बन्ध में यह लिखा है -

"ग्राम गीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है, अलंकार मानव निर्मित। ग्राम गीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं।"

पं. रामनरेश त्रिपाठी के उपर्युक्त कथन का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि लोकगीतों में काव्य शास्त्र के नियमों का सर्वथा अभाव है। वरन् लोकगीतों में काव्य के सभी आवश्यक तत्वों रस, छन्द, अलंकार, सुर लय एवं तुकादि का अनायास समावेश यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है। बुन्देलखण्ड अंचल में गाये जाने वाले मांगलिक गीतों में रस, अलंकार व लय आदि का सुन्दर सामंजस्य हुआ है। एक गीत दृष्टव्य है, जिसमें अनुप्रास एवं पुनरुक्ति अलंकार की सुन्दर योजना हुई है -

अँगना जियरिया लहर लहर होवे,
कौना के अँगना जियरिया लहर लहर होवे।
महर-महर आवे बास तो नींद नई आइयो,
कोना की नार गरभ से मधुरियन पग धरै हैं।
ललन ललन कहै होरल-होरल कहै।

श्लेषालंकर का एक सुन्दर उदाहरण इस बधाई गीत में दृष्टव्य है -

आज दिन सोने के महाराज,
सोने के सब दिन सोने की रात।
सोने के दियल जले सब रात।

यहाँ सोने शब्द में दो अर्थ निहित हैं - शुभ और स्वर्ण।

लोकगीतों में शब्दालंकारों के साथ-साथ अर्थालंकारों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। उपमा का मनोरम सौन्दर्य लोकगीतो में स्थान-स्थान पर बिखरा हुआ है। लोकगीतों में प्रयुक्त उपमाएँ कवि परम्परा में प्रचलित उपमाओं से सर्वथा भिन्न, परन्तु अपने आप में अनुपम व सर्वथा मौलिक हैं। निःसन्देह लोक-गीतकार की चिर नवीन उपमाएँ उसकी अनूठी प्रतिभा से प्रसूत हैं जो अत्यन्त ही आकर्षक है -

मोरी बेला चमेली सी नार।
मोरी बेला चमेली सी नार
जच्चा को परदे में राखियो।।

यहाँ नव प्रसूता की उपमा बेला चमेली से की जा रही है। उपमा एवं रूपक अलंकार का एक सुन्दर उदाहरण दर्शनीय है -

हमें तुम नीके लाला निसदिन दरसन दैयौ।
श्याम गौर अति जोत मनोहर पलक ओट न भइयौ।।
चन्द्रबदन सुख सदन दिखाकर तन मन तपन बुझयौ।।
जो मन मीन दरस रस भोगी हरदम पान करैयौ।।

रूपक अलंकार की सुन्दर अवतारणा लोकगीत की इन पंक्तियों में हुई है -

घर होती आदर कर लेती, घर होती।
शान्ति सिंघासन क्रांति सिंघासन।
मन मन्दिर में बिठा लेती, घर होती।
नैना धार नीर की छारी।
प्रेम के जल से भर लेती, घर होती।।
फुलका सत्य धरम के चावल।
दया की दार परस देती, घर होती।
शील के रूप के बनाऊँ मगौरा।
छिमा की कड़ी परस देती, घर होती।
धरम को दूध सुयस को बूरो।
करम के बरा बना लेती, घर होती।
मक्खन सुमाटी कुमारी की कौदी।
ज्ञान की अग्नि तपा देती, घर होती।
निर्मल घी परसती यही विध।
सुकृति को पान खबा देती, घर होती।।

उदाहरण अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग लोकगीतों में प्राप्त होता है। एक बुन्देली लोकगीत में उदाहरण अलंकार का चित्र दृष्टव्य है -

सदा न तुरैया औरै फूलै
नै सदा रे सावन होय।

सदा न राजा अरे रन जूझै
सदा न जीवे कोय।
भाई कलेवा कर दये
पिता भरा दई रहवाट
वीरन गेंवड़े लौ पहुँचा गये
लो स्वामी को सौंपे सवार।

संदेह अलंकार की सुन्दर योजना इस देवीगीत में हुई है -

माई के दुआरे इक बाझें पुकारे।
अंसुअन भीजे रंग सारी हो माय।
हँस हँस पूछें देवी जालपा
कैसी तिरिया बिसूरे हो माय।
कै तोरी सास ननद दुख दीनैं
कै तोरे मायके दूर हो माय।

निर्देशन अलंकार का अत्यन्त सुन्दर निरूपण इन पंक्तियों में हुआ है -

आग लगी दरयाव में धुआँ न प्ररगट होय।
कै दिल जाने आपनो के जा पर बीती होय।
काऊ की लगन कोऊ न जाने।

लोकगीतों में सर्वत्र रस की सरिता हिलौरे लेती हुई दृष्टिगत होती है। यदि यह कहा जाये कि रस ही लोकगीतों की आत्मा है तो अत्युक्ति न होगी। बुन्देली लोकगीतों में विविध रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। समस्त रसों में श्रृंगार एवं करुण रस की धारा प्रधान है। प्रेम एवं वियोग के कोमल भावों से आप्लावित श्रृंगार रस लोकगीतों की भावनाओं-पूरित नायिकाओं के जीवन के विविध सत्यों का उद्घाटन करता हुआ दृष्टिगत होता है तथा करुणा का अथाह स्त्रोत उन सत्यों को सजीवता का रस देकर पोषित करताहुआ दिखाई देता है। रसराज श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग एवं वियोग की सुन्दर अभिव्यंजना, बुन्देली लोकगीतों में हुई है। नायक-नायिका का परस्पर मिलन संयोग की सार्थकता को परिपूर्ण करता है। इस लोकगीत में संयोग श्रृंगार का माधुर्य, उमंग और उल्लास रंजित चित्र दृष्टव्य है -

रसिया होली में मोसे खेलो न छल को खेल।
आय अचानक घूँघट खोलत बोलत रस भरे बोल।
अबकी बेर पकर जो पाऊँ करिहों मन की मैल।
राम प्रिया पिया कनक भवन में तुम्हें दिखाऊँ खेल।।

विरह लोकगीतों का प्राणतत्व है। अधिकांश गीतों में वियोग विदग्धा नायिकाओं की पीड़ाकुल अन्तर्भावनाओं का मार्मिक चित्रांकन उपलब्ध होता है। बुन्देली लोकगीतों में ऐसे गीत बहुतायत में मिलते हैं, जिन्हें सुनकर हृदय सागर हिलोरे लेने लगता है। विप्रलम्भ श्रृंगार की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं जिसमें वियोगिनी नायिका के विरह विदग्ध हृदय को कोयल की कूक अत्यंत व्यथित कर रही है। गीत में आलंबन प्रवासी नायक और आश्रय विरहिणी नायिका है। बादल, बिजली, वर्षा, कोयल की कूक आदि उद्दीपन विभाव है। नायिका के हृदय की लालसा व मन मार कर बैठे रहना आदि अनुभाव है और विषाद, उत्कंठा आदि संचारी भाव हैं। यथा -

कूक कूक मोरे जिया खों
काय जराउत मोर।
पिया बिछोह सो मोरे जिया में
बैसई उठत हिलौर।। कूक--
पुरवैया की बैर बैरई,
छाईं घटा घनघोर।
भयो सबई विद उलटौ विधाता
की खों दहये खौरि।। कूक...

लोकगीतों में हास्य का विशेष स्थान है। जन्म, विवाह एवं खेल आदि हर्षपूर्ण अवसरों पर अनेक प्रकार के मनोरंजक कार्यक्रम आयोजित होते हैं जिसमें हास्य उल्लास के गीत गाये जाते हैं। बुन्देली लोकगीतों में हास्य रस प्रधान लोकगीतों का प्राचुर्य है। एक गीत दृष्टव्य है, जिसमें हास्य-रस की उद्भूति हुई है -

मन कौ एकऊ नें आओ,
मन को एकऊ नें आओ।
बड़ी बड़ी मूछों के आये,
बड़ी बड़ी नाकों के आये, मन को......।।
बड़ी बड़ी आँखों के आये,
बड़े बड़े कानों के आये।। मन को....।।
बड़े बड़े हाथों के आये
बड़े बड़े दांतों के आये।। मन को......।।

लोकगीतों में करुण रस की मार्मिक व्यंजना प्राप्त होती है। सामान्य स्त्री-पुरुष अपने दुःख की अतल गहराइयों को स्वर और लय में बाँधकर हृदय को हल्का कर लेते हैं। जिस पीड़ा के भार को वे ढ़ो नहीं पाते वही पीड़ा स्वर में में व्यक्त हो उनके जीवन का संबल बनती है। बुन्देली लोकगीत में करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है -

मन धीर धरत नइयाँ गुइयाँ बिटिया गई पराई।
सात घाट की मडिया पूजी जब हमने जा पाई।
हाड़ मांस में नौ महिना लौ राखौ इन्हें छिपाई।
सर्दी जूड़ा कबऊँ भयो जब रो रो नदी बहाई।
वे बेटी प्राणों से प्यारी हो गई आज पराई।
ये बाबुल महलों में रोवे सई नई जात जुदाई।
जा बेटा हम याद रखेंगे तेरी सब चतुराई।
बेटा ये तुम भूल न जाइयो अपनी बूढ़ी माई।।

लोकगीतों में वीररस की अत्यधिक सुन्दर व्यंजना प्राप्त होती है। इस बुन्देली लोकगीत में वीर रस का सुन्दर परिपाक दृष्टव्य है -

धन्य धन्य बूंदेली धरती,
धन्य धन्य वह पानी।
धन्य दुर्ग जिसमें दुर्गा-सी,
प्रगटी लक्ष्मी रानी।
जिसने भारत के कण कण में,

जीवन ज्योति जगाई।
करने को स्वतंत्र भारत,
रण भेरी प्रथम बजाई।।

शम स्थायी भाव का आस्वादन शान्त रस है। इस रस का उद्रेक उत्तम प्रकृति के व्यक्तियों में होता है। लोकगीतों में शान्त रस की प्रबल धारा प्रवाहित होती है। जीवन और जगत के कठिन संतापों से संत्रस्त होकर सामान्य जन का मन असीम सत्ता की ओर आकृष्ट हो उठता है। संसार की असारता, और क्षण भंगुरता से निर्लिप्त होकर वह विराग के सोपानों पर चढ़ता हुआ ऊर्ध्वमुखी होता जाता है। मन की यह विरागमयी स्थिति लोकगीतों में स्थान स्थान पर मुखरित होती है -

पाकर मानुस के तन को भजले रघुराई।
जासे गति बनजाय तेरी, कोई काम न आई।
जे सब स्वारथ के अपने दादा सुत भाई।
अंत समय सब पड़ा रहै कोई संग न जाई।
शेष सुरेश महेश सदा हरि को यश गाई।
वेदहु जासु के भेद को तो कबहूँ नहि पाई।
जानै जबै नित नाम लियौतिह कीन सहाई।
लोकन लोकन छाय रही जिनकी प्रभुताई।
नीति कहौ सदा ग्रंथन की सुन चित्त लगाई।
सार मुरारि को ध्यान जो है झूँटी दुनियाई।
जो अजहुं हरि नाम जपै तेरी होय भलाई।
वंश गुपाल गुपाल प्रभु सब को सुखदाई।

लोकगीतों में वात्सल्य रस की सुष्ठु योजना हुई है। जन्म संस्कार संबन्धी गीतों में वात्सल्य रस की अनुपम घटा बिखरी हुई है। एक सोहर गीत दृष्टव्य हैं जिसमें वात्सल्य रस की सरस धारा प्रवाहित हो रही है -

झुलायो माई श्याम परे पलना,
झुलायो माई श्याम परे पलना।
जो मोरे ललना को पलना झुलाये,
तीये गड़ा देऊँ कंकना।
काऊ गुजरिया की नजर लगी है,
सो रोवत है ललना।
राई नोन उतारे जसोदा,
खुसी भये ललना। झुलायो माई....।।

लोकगीतों में ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुण का विधान भी सर्वत्र दिखाई पड़ता है। प्रसाद गुण युक्त एक गीत दृष्टव्य है -

गाड़ी बारे मसक दे बैल अबै पुरवइया के बदरा आए।
कौन बदरिया उनैई रसिया, कौना बरस गये मेय। अबै...
अगम के बदरा ऊनए, पच्छम बरस गए मेघ। अबै....
घुँघटा बदरिया ऊनाई रसिया, गलियन बरस गये मेघ।। भवै....

लोकगीतों में भाव व्यंजना एवं छन्दों के सामंजस्य का प्रयास भी दिखाई देता है, यद्यपि लोकगीतों में छन्द शास्त्र के नियमों का कड़ाई का पालन नहीं होता है, इसकी प्रत्येक पंक्तियों में मात्राओं एवं वर्णों की संख्या भी, निश्चित नहीं होती। किसी पंक्ति में कम तो किसी पंक्ति में मात्राओं एवं वर्णों की संख्याज्यादा हो जाती है। तथ्यों के भाव प्रकाशन में लोककवि लघु एवं दीर्घ मात्राओं का भी ध्यान नहीं रखता। परन्तु लोकगीतों के छन्द मुख्य रूप से ताल एवं लय में आबद्ध रहते हैं। ग्राम्य महिलायें स्वरों के आरोह अवरोह के द्वारा विशेष प्रकार की लय का निर्माण करके लोकगीतों को इस ढंग से गाती हैं कि वहां कहीं भी गति भंग या गति अवरोध दिखाई नहीं देता। लोकगीतों की रचना अधिकतर वर्णवत चन्द्रप्रभाकर, सरसी, चुलि, पाला, गिरधारी आदि छन्दों में होती है। एक विवाह गीत दृष्टव्य है, जिसकी रचना वर्णवत चन्द्र प्रभाकर छन्द में हुई है -

कच्ची ईंट बाबुल देहरी न धरियो
बिटिया न दइयो परदेश मोरे लाल
द्वारे की इटिया खिसक जैहे बाबुल
बिटिया बिसूरे परदेश मोरे लाल।।

इस प्रकार छन्द विधान भाव योजना एवं अन्य काव्य तत्वों को दृष्टि में रखते हुये यह नहीं कहा जा सकता कि लोक काव्य या लोकगीत इस दृष्टि से अपेक्षाकृत कम समृद्धशाली है। हां यह बात अवश्य है कि लोकगीतों में प्रबलता भाव और अनुभूतियों की ही होती है। काव्य शास्त्रीय नियमों की नहीं।

- आदर्शनगर कॉलोनी, नं.१ स्कूल के पीछे, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली माटी की व्यथा

- वैद्य हरिदास सक्सेना

इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत सोन,
वीर प्रसविनी नरन की जननी साधे मौन।

जननी साधे मौन, सत्य कहने को डरती,
गांव नगर हर ठाँव, सदा हाँ, हाँजू कहती।

राजनीति के हर दल में वह निशिदिन नांचे,
स्वतंत्रता संविधान सभी परिवर्तन बाँचें।

है समान अधिकार मगर पदधारी आगे,
ठग, चुरकट और सियाने बन सब सबकुछ माँगे।

ऊपर से हैं बने हितैषी, भीतर चोरी करते,
घटकर्मी, घट तौली कर कर स्वारथ रचते।

कहते कुछ पर कुछ और करें यह दैनिक गाथा,
कैसे हो कल्याण भूमि बुन्देलखण्डी माथा।

जिनका था विश्वास वही घाती बन बैठे,
मीठा जहर नित खाय बनें आतंकी ऐंठे।

कुछ को मिला बसन्त अधिक मन मारे फिर रहे,
'हरि' कवि कहें भविष्यत का तऊ सही भरोसा कर रहे।

- चरखारी, जिला महोबा (उ.प्र.)

बुन्देली लोकजीवन में मेला

- डॉ. श्रीनारायण पाठक

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में जगह-जगह मेलों की विभिन्न नामों से भरमार है, जैसे चैती मेला, वैशाखी मेला, जेठी मेला, अषाढ़ी मेला, सावन मेला, भादौ मेला, क्यारी मेला, कार्तिक मेला, अगहनी मेला, पूषी मेला, माँघी मेला, फागुनी मेला के साथ ही प्रसिद्ध स्थानों, जलाशयों, पहाड़ों, नदी-नालों व झीलों तथा देव स्थानों के नाम पर भी मेलों का आयोजन होता है। मौसम के अनुसार मेलों का स्वरूप मनमोहक व लुहावना लगता है तथा मेलों में मौसम (ऋतुओं) के मुताबिक क्षेत्रीय संस्कृति, कला और संस्कृति की छटा देखते ही बनती है, जैसे चैती के मेलों में देवीगीत (भजन), वैशाखी मेलों में वैसाखी गीत, जेठी मेलों में वटगीत, आसाढ़ी मेलों में आसाढ़ी देवता पूजन गीत, सावन मेलों में रक्षा बंधन गीत, भादों के मेलों में कजरी गीत, कार्तिक मेलों में भगवान श्रीकृष्ण को रिझाने के लिये विभिन्न कार्तिक गीतों से महिलायें अपनी खुशी का इजहार करती हैं, तथा पूरे कार्तिक माह में अमावस्या से लेकर कार्तिक पूर्णिमा तक श्री कृष्ण भगवान को अपना आराध्य देव बताकर उनकी पूजा अर्चना कर अपने आप को धन्य मानती हुई कुछ ऐसे कार्तिक गीत गा उठती हैं -

"सखीरी मैं तो भई न बृज की मोर,
कौना राती, कौना चुनती, कौना करती किलोर।
सखीरी मैं तो भई न बृज की मोर।।
मथुरा राती, वृन्दावन चुनती, गोकुल करती किलो...
सखीरी मैं ता भई न बृज की मोर।।
उड़-उड़ पंख गिरे धरनी पै, बाँधत जुगल किशोर।
सखीरी मैं तो भई न बृज की मोर।।"

इसी तरह से हर माहों में किसी न किसी मेलों का आयोजन सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में समारोहित होते हैं जो बुन्देली जनों के मनोरंजन के एक मात्र साधनों का प्रतीक है।

माँघी मेलों में बुढ़की मेला जो हर वर्ष बहुधा १४ जनवरी से प्रारंभ होकर लगभग एक सप्ताह तक चलता है, बुढ़की मेलों में बुन्देली कला के दर्शन होते हैं। मेले में मिट्टी के घाड़े, चकरिया, मिट्टी के बर्तन, शक्कर के घड़िया घुल्ला जिनमें पशु-पक्षियों की आकृति को बड़े ही रोचक ढंग से ढाला जाता है। इस कलात्मकता में बुन्देली लोगों में प्रकृति के प्रति प्रेम परिलक्षित होता है। बच्चों के लिए मिट्टी व लकड़ी के खिलौनों की आकर्षक भरमार के साथ ही कागज के रंगीन पन्नों से बनी खिरखिरी (डमरू), तोता-मैना, विभिन्न प्रजातियों के पशु-पक्षी हम सब का मन मोह लेते हैं। कहीं-कहीं बुड़की में पतंगों के उड़ाने की भी प्रथा है। इसी तरह खाने-पीने के व्यंजनों में मेलों में ऊख (बराई) की भरमार रहती है, जो प्रत्येक व्यक्ति मेले से घर लाना नहीं भूलता है, वही स्थानीय फल-फूलों के अतिरिक्त अमरूद (बीही), सकलकंद (सकला), साग-सब्जी मेले में आकर्षण केन्द्र रहते हैं।

बुड़की के मेले की तैयारी लोगों के घरों में १४ जनवरी के दो-तीन दिन पूर्व से होने लगती है। महिलायें घरों में खुरमी, सेव, खुरमा, तिल, लाई, रजगरा के दानों के गुड़ व शक्कर मिश्रित लड्डू व पापड़ी बनाती है। बुड़की के दिन साँझ को घरों में घोड़ों व चकरियों की पूजा होती है। बुन्देली में यह मान्यता है कि जिस घर में जितने लड़के व लड़कियाँ होती हैं, उसी के अनुसार संख्या में घोड़े व चकरियाँ मेले से खरीद कर लाते हैं तथा उसी के अनुसार संख्या में घोड़े व चकरियाँ मेले से खरीद कर लाते हैं तथा उन्हीं की पूजा घरों में होती है, जिसे कठारी भरना कहा जाता है। बुढ़की के दिन भरी गई कठारी जिसमें खुरमा, खुरमी, सेंव, नमकीन, गुजिया-गुल्ला आदि भरकर एक नये कपड़े में बाँधकर रखी जाती है, वह वसन्त पंचमी के दिन खोली जाती है, जिसे वसन्त पूजा या सरस्वती पूजा कहते हैं।

बुढ़की के एक दिन पूर्व तिलइयाँ मनाई जाती हैं। इस दिन सभी लोग प्रातः से कच्चे तिलों को पीसकर नहाते समय पूरे बदन में मलते हैं। स्नानोपरान्त इष्ट देवता शंकरभगवान की पूजा कर तिल के लड्डू व तिल के तैल से बनी बुन्देली पकवान जैसे ठढूला, मगौड़ी, घड़िया घुल्ला, खुरमी-खुरमा, सेव इत्यादि खाते हैं। ऐसी मान्यता है कि अगले दिन पानी बुड़की के दिन से सूर्य दक्षिणायने से मकर राशि में प्रवेश कर उत्तरायण हो जाते हैं। उस दिन बुढ़की को निकट के जलाशय में जाकर स्नान कर खिचड़ी का दान करते हैं, तदुपरान्त खिचड़ी का ही भोग प्रसाद लगाते हैं। खिचड़ी का भोग लगाने की ऐसी मान्यता है, कि सूर्य उत्तरायण होते ही मौसम में बदलाव आ जाता है। बदलते मौसम की ग्रीष्म ऋतु में भारी भोजन नहीं करने की सलाह दी जाती है,क्योंकि जठराग्नि कमजोर ग्रीष्मऋतु में हो जाती है। यह सलाह स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकारी है।

बुन्देलखण्ड के लोग बुढ़की के दिन देवस्थल के निकट जलाशय में प्रातः स्नान करने जाते हैं और रास्ते में आते-जाते समय बुढ़की गीतों (लमटेरा) का सास्वर गायन करते हुये इष्ट देवता का गुणगान करते हैं, जैसे यहाँ पर भोले बाबा को लमटेरा गाकर प्रसन्न करने की चेष्टा दृष्टव्य है -

"महादेव बाबा बड़े रसिया रे,
बड़े रसिया रे गौरा रानी से जोड़े नौंनी गाँठ रे,
महादेव बाबा हो।
महादेव बाबा ऐसे भेंटें रे,
जैसे भेटें मातारी, भइया, बापरे,
महादेव बाबा हो।
दर्शन खाँ तौ दोनों नैना तड़फे रे,
मिलवे खां तड़फ रये दोनों हाथ रे,
महादेव बाबा हो।।

इस तरह से हम कह सकते हैं कि बुढ़की के मेलों में रमटेरा के गीत पूरे वायुमंडल में गुंजार हो उठते हैं, जो बुन्देली लोगों के उल्लास को प्रदर्शित करता है।

बुन्देलखण्ड के लोग किसी मेले में जाने के पूर्व अपने घर परिवार, मित्र व रिश्तेदारों तथा पड़ोसियों से किसी निकट के मेले में चलने की पूर्व योजना बनाते हैं। बहुत से लोग लुगाई पैदल, साइकिल, बैलगाड़ी, में सज-धज कर मेला की सैर पर निकल पड़ते हैं। आधुनिकता की छाप वाले लोग बस, ट्रैक्टर व मोटर साइकिल से मेले में जाते हैं।

बुन्देलखण्ड का पहनावा अत्यन्त साधारण है। लोग अपने तन पर आधी बाँहों वाली बंडी या फतूही पहिनते हैं। कमर में धोती और कन्धे पर पिछौरा यहाँ का मुख्य पहनावा है। वैसे सम्पन्न लोग अंगरखा, मिरजई, सिर पर पगड़ी और पैर की विशेष जूतियाँ पहिनते हैं। धोती-कुरता और पजामा, पेंट-कमीज का प्रचलन भी अधिक हो गया है।

ग्रामीण महिलायें लंहगा और लुगरा पहिनती हैं। वैसे अब साड़ियों का प्रचलन बढ़ा है। साधारण परिवार की कामकाजी स्त्रियों का प्रमुखतः हिरमिजी, कॉकरी की साड़ियों का कछौटा बाँधकर मेले में जाती हैं, श्रृंगार के लिए स्त्रियाँ आभूषण भी पहनती हैं। ये आभूषण चाँदी या गिलट के होते हैं। गले में चाँदी के खंगौरिया, हमेल, मूँगा की कंठी, लल्लरी, कंठहार आदि प्रमुख हैं। हाथों में खग्गा, बरा, कंगना, दोहरी, चूरा, बेगुआ, काँच और चाँदी की चुड़ियाँ पहिनी जाती हैं। अँगुलियां में अंगूठियाँ (छल्ले), कानों में कर्णफूल, झुमके, बालियाँ आदि, बाहों में बजुल्ला और बाजूबंद, सिर पर शीशफूल, बीज और साँकर आदि तथा कमर में करधनी, पैरों में पायल, पैजना, भारी-भारी कड़े, गूजरी और विवाहिता स्त्रियाँ पैरों की उँगलियों में बिछिया पहिनती हैं। श्रृंगार के लिये दाँतों में सोने की कालें जुड़वाती हैं। हाथ पैरों के साथ ठोड़ी में गोदना भी गुदवाती हैं तथा होठों पर लाली लगाना वे कभी नहीं भूलती हैं।

भारतीय परम्परा में द्वादश आभूषण स्वीकृत किये गये हैं। श्री हफीज उल्ला खाँ के हजारे में आभूषणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

''बेंदीभाल, नाक, बेसबेसर, तरोना कान,
कंठ खिरी, कंठहार हीरामनि अंग में।
बाजूबंद, अंगन, अँगूठी, छला, छापयुत,
नीकी बंदकिकिनी, सोहाई रस रंग में।।
भले रघुनाथ पाय नूपुर, मजीर,
मंजुराजत रंगीली भरी जोवन तरंग में।
छीन्हें प्रतिबिम्ब-चंद बिम्ब को, निकाल लखे,
बारह आभूषण बिराजे बाल अंग में।।

आभूषणों से नारी सौन्दर्य में वृद्धि होती है। आभूषणों से एक तरह का मादक वातावरण बनता है। सरकार श्री सुन्दर लाल सरावगी के इस सैर में आभूषणों से सज्जित नायिका की लुभावनी तस्वीर खींची गई है -

दोहा - वयस किशोरी गौर तन, ससि सम आनन जोत।
चाल विसाल मराल-सी, अंग मदन दुति होत।।
सैर - कीनो सिंगार कामिन जा केल भवन में।
बेंदी बिसाल भाल धार जटिल मड़िन में।।
अतरूप संभार अंजन भर लियो दृगन में।
डारी मड़िन्द्र जिम फड़िन्द्र धन्य धरन में।।

आभूषणों के अलावा बुन्देलखण्डी नारी सौन्दर्य वृद्धि के अन्य साधन भी अपनाती हैं। यहाँ की महिलायें ग्रामीण परिवेश वाली हैं। उनकी ग्रामीण वेशभूषा रसिक नायकों के मन में प्रमोदीपन की वृद्धि में सहायक हैं। ग्रामीण वेशभूषा में चूनरी, कंचुकी और लँहगा प्रमुख माने जाते हैं।

बुन्देली मेलों में दुकानदार अपनी-अपनी दुकानों को वस्तुवार कतार से सजाकर लगाते हैं। दुकानों को रंगीन धोती व कपड़े से सजाते हैं। दुकानों पर गुब्बारे, फूल, कागज आदि में डिजाइन देकर आकर्षक बनाने का भरपूर प्रयास करते हैं। गरीब दुकानदार लकड़ी व बाँस के सहारे अपनी दुकान का निर्माण कर छाया के लिये घास ऊपर से डाल देते हैं। दुकानदार तरह-तरह की आवाजें मुख से निकाल कर ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं तथा कुछ सम्पन्न दुकानदार अपनी दुकानों में बैठक व्यवस्था हेतु कुर्सिया डाल देते हैं तथा लाउड स्पीकर से गाने बजाकर या आवाज लगाकर ग्राहकों को अपनी ओर लुभाते हैं। बुढ़की के मेले में तो बैठक व्यवस्था हेतु तखत, चीपें, तिपाई आदि में होती है। इस मेले में अधिकांश दुकानें ऊख (बराही), घड़िया घुल्ला, माटी के खिलौने, लकड़ी के खिलौने व सामान, मिठाई की दुकानें, पान के पंडाल, झूला, तमासा, लोक गीतों व नाटकों के मंच, तमाशबीनों का भरपूर मनोरंजन करते हैं। वही महिलाओं के श्रृंगार की दुकानों की अच्छी खासी बिक्री होती है। बच्चे अपने-अपने पसंद के खिलौने खरीदने में कहीं भी पीछे नहीं रहते। महिलायें व बच्चे हिडोला झूलने में आनन्द का अनुभव करते हैं।

मेले में भजन, कीर्तन, नौटंकी, रामलीला, रासलीला, लोकगीत व फड़बाजी के फड़ जमे दिख जावेंगे, जो सभी को अपनी ओर बरवस आकर्षित कर लेते हैं। लाउड स्पीकरों व विक्रेताओं की तरह-तरह की आवाजों से सोर-गुल अधिक बढ़ जाती, जिसके कारण मेले की आहट दूर से ही महसूस होने लगती है। बुढ़की के मेले अधिकांशतः नदी, नाले बाँध, तालाब, पहाड़ों आदि में होने के कारण वहाँ लाइट व्यवस्था ठीक नहीं रहती है, फिर भी जिन स्थानों पर लाइट व्यवस्था ठीक है, तो वहाँ लाइट के रंगीन बल्ब एवं झालरें दुकानों में लगाना कभी नहीं भूलते हैं।

इस प्रकार से मेले की साज-सज्जा हम सब के दिलों को विभोर कर देती है। हम सभी का दिल एक बार मेले की चहल-पहल देखने को बेताब हो उठता है, क्योंकि यह मेले हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक होते हैं। जो मेले के रूप में सजीव हो उठती है।

जैसा कि पहले ही लेख किया जा चुका है कि बुन्देलखण्ड में कई प्रकार के मेले हरमाह और हर ऋतु में लगते हैं और सभी

प्रकार के मेलों का अपना ही अलग महत्व है।

मेले का महत्व राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि रूपों में प्रतिपादित होता है। राजनैतिक रूप में राजनेताओं को आम सभा करने के लिए भीड़ जोड़ने के लिये अलग से प्रयास नहीं करने पड़ते। राजनेता मेला में पहुँचकर अपने विचार आम आदमी तक आसानी से पहुँचा देते हैं। सामाजिक रूप से मेले का महत्व देखा जावे तो अनूठा है। मेले में ही सामाजिक लोगों की सामाजिक मुलाकात हो जाती है। अपने समाज की अच्छाइयों और बुराइयों पर परिचर्चा कर किसी भी प्रकार के सामाजिक कार्यों को आगे बढ़ाया जा सकता है। अधिकांश मेले बुन्देलखण्ड में धार्मिक परम्पराओं से बँधे हुये होते हैं, जिससे हम वंश परम्परानुसार धार्मिक मान्यताओं को सफलतापूर्वक समझ व निभा सकते हैं। आज के समय में सभी मेले आर्थिक दृष्टिकोण को अपनाकर लगते हैं। बुन्देलखण्ड में मेलों का आयोजन मेल-जोल बनाने के स्थान से शुरू होकर आज आर्थिकता को प्रतिपादित करने वाले मेलो के रूप में होने लगा है, यही कारण है कि आज ग्वालियर का मेला आर्थिक दृष्टि से फलफूल कर राष्ट्रीय मेला का स्वरूप पा गया है।

बुन्देलखण्ड के ग्रामीण लोग मेलों का उपयोग अधिकांशतः अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को क्रय-विक्रय के रूप में करते हैं। इसी के साथ उन्हें मेले में मनोरंजन के साधन उपलब्ध हो जाते हैं। ग्रामीण लोग हमेशा अपने कृषि के दैनिक कार्यों में व्यस्त रहते हैं। फलस्वरूप वे मनोरंजन का समय नहीं निकाल पाते। मेले के बहाने ग्रामीण लोग तरह-तरह के मनोरंजन में भाग लेकर ताजगी प्राप्त कर अपने दैनिक कार्यों में अपनी पूरी क्षमता के साथ फिर से लग जाते हैं। ग्रामीण लोगों की रिश्ते-नातेदारी पास-पास के गाँवों में होने के कारण वे अपने रिश्तेदारों, परिचितों व मित्रों से मिल जुलकर राजीखुशी का हाल-चाल प्राप्त कर लेते हैं एवं नई रिश्तेदारियों की तलास मेले में ही कर लेते हैं।

मेलों की उत्पत्ति ही मेल-जोल के स्थलों से हुई है जो आगे चलकर मनोरंजन, वस्तुओं के क्रय-विक्रय करने के केन्द्र बन गये हैं। मेले व्यक्ति के विकास में अहम् भूमिका निभा रहे हैं। यही कारण है कि आज मेलों का स्तर गाँव, शहर, प्रान्त, राष्ट्र से होकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच गया है साथ ही मेले का स्वरूप भी बदलता गया है।

अन्ततः हम यह कह सकते हैं कि मानव के सर्वांगीण विकास में बुन्देली मेलों का अपना अनूठा स्थान है। मेलों के व्यावसायिक स्वरूप में परिवर्तन होने के कारण ही आज बड़े-बड़े औद्योगिक नगर स्थापित हो गये हैं। आज बुन्देली मेलों का ग्रामीणों के लिये वही स्थान है जो व्यावसाइयों को आद्योगिक नगर रखते हैं।

अतः बुन्देली मेलों में बुन्देलखण्ड की आत्मा बसती है बुन्देलखण्ड को निहारने के लिये हमें बुन्देली मेलों को निहारना होगा तभी हम सही मायनों में बुन्देलखण्ड को निहार सकते हैं। लोक जीवन में बुन्देली मेलों की उपयोगिता बहुआयामी है।

– म.प्र. विद्युत मण्डल, छतरपुर

कुछ चौकड़ियाँ बसंत के नाम

- डॉ. एन.डी. सोनी 'विवेक'

मो मन रूप बसंत धरो है, गलन-गलन बगरो है।
लगत उमंगन के झुमका नें, फूलन रंग भरो है।
मादक सांस करोंदी लै गई, सब मदहोश करो है।
'नारायण' हिरदे कौ सब रस, महुअन में उतरो है।

तुमनें हँस दऔ बेला फूले, ओंठ गुलाबन झूले।
आँखें खुलीं कमल दल खिल गये, भैंरा रस्ता भूले।
तन की गंध करौंदी फूली, मन सरसों बन फूले।
कत 'विवेक' उनके अंग-अंग लख, फूलन के मन फूले।

छू कें बदन बसंती आई, सोउ हवा बौराई।
बेइ हवा बोंड़न खों लग गई, फूलन की रित आई।
बेला जुही चमेली चम्पा, सब पै मस्ती छाई।
कत'विवेक' काबू में रखियो, जौ मन भौत कुराई।

फागुन आव समरकें रइयौ, हवा-बैर बरकइयौ।
बौरा गये आम ई रित में, बागन तुम जिन जइयौ।
कानाफूसी हवा करत है, मन 'विवेक' समझइयौ।
रसिया आय बसंत फूल कौ, बोंड़न सें कै दइयौ।

फेरत पीठ माँव कौ मैना, मनुआँ कही करै ना।
लगत बसंत बैर बैरन भई, मन में नइयाँ चैना।
'नारायन'-मन रंग फूलन में, भौंरा बन गये नैना।
मन उमंग सें उपजीं तितलीं, कोयल मन के बैना।

सूरत अलंकार सें नौनी, है जग में अनहौनी।
उपमा लाख चीज न कौनऊँ, दीखै ई सें नौनी।
सूरत रस सिंगार सजीवर, कैसी लगै सलौनी।
गानें सें का इयै सजौ तुम, पागल भये का 'सोनी'।

– राजमहल के पास, टीकमगढ़ (म.प्र.)

चौकड़ियाँ

- उमाशंकर खरे 'उमेश'

मोरी नई कुसुम रंग सारी, तार-तार कर डारी।
तन की चोली तन-तन फट गइ, मुतियन जरी किनारी।।
लाल गुलाल मली मुख ऊपर, भर मारी पिचकारी।
कहत 'उमेश' ढीट कुँवर ने, कंचन देह बिगारी।।

कान्हा ऐसी खेलत होरी, श्याम बरन भइ गोरी।
गोरो बदन साँवरौ कीन्हो, हौंत पकर बर जोरी।।
अंग-अंग रंग डारौ मोहन, लाज सरम सब तोरी।
कहत 'उमेश' छैल-छलिया ने, छली राधिका भोरी।।

– साकेत नगर, पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

कवि कब्र पर चढ़ाया गया गंगाजल

- डॉ. लखन लाल खरे

भोपाल से प्रकाशित पत्रिका - 'साहित्यसागर' के फरवरी २००६ के अंक में 'शोधार्थियों के लिए विशेष प्रस्तुति : 'अजमेरी जी मुसलमान नहीं थे' निर्णयात्मक शीर्षक ने मुझे चौंकाया और इस दिशा में अपनी शोध परियोजना के लिए शोध सामग्री जुटाने हेतु प्रेरित किया। पर्याप्त अंतःसाक्ष्य के रूप में प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो जाने के पश्चात् उक्त पत्रिका में प्रकाशित आलेख के लेखक व सम्पादक श्री कमलकान्त सक्सेना की निर्णयात्मक उद्घोषणा का सम्मानपूर्वक खण्डन कर यह तथ्य व्यक्त करने की धृष्टतापूर्ण चेष्टा कर रहा हूँ कि मुंशी अजमेरी जन्मना मुसलमान थे और कर्मणा परम वैष्णव थे। "अजमेरी जी मुसलमान नहीं थे" की उद्घोषण अपने पत्र में करने वाले विद्वान लेखक और सम्पादक श्री कमलकान्त सक्सेना ने "पं. प्रेम बिहारी जी के वंशजों तथा अन्य विद्वानों द्वारा उपलब्ध कराये गये साक्ष्य व विवरण के आधार पर "उक्त निर्णय पारित तो कर दिया, परन्तु अन्य प्रमाणिक स्त्रोतों पर दृष्टिपात नहीं किया। निम्नलिखित साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि मुंशी अजमेरी जी मुसलमान थे :

साक्ष्य क्र. १

समय -संवत् १९६०

(३५१८)नाम - अजमेरी जी मुँशी

ग्रंथ - ओरछा राजवंश, बुन्देलखण्ड वर्णन, समुद्र वर्णन आदि अनेक छोटे-बड़े ग्रंथ हैं।

जन्मकाल- सं. १९३५ के लगभग। रचनाकाल सं. १९६०

विवरण -आप चिरगाँव जिला झांसी-निवासी जाति के मुसलमान हैं। इनके पूर्व पुरुष भाट थे। आप परम वैष्णव हैं। देखकर कोई इन्हें अहिन्दू नहीं कह सकता। आशु कविता तथा सभा चतुर हैं। दूसरों का कण्ठ स्वर तथा वाद्ययंत्रों के स्वर सुगमता पूर्वक मुख से उतार सकते हैं। वर्तमान ओरछा नरेश ने ५०/- रु. मासिक नियत कर दिए हैं और इन्हें वहाँ साल में दो ही बार जाना पड़ता है। आपका साहित्य देशभक्ति पूर्ण, रोचक, सरस, नवविचारयुक्त, गंभीर तथा उत्कृष्ट है। वर्तमान कवियों में आपका पद उच्च है। (मिश्रबन्धु विनोद, खण्ड ३-४, लेखक-मिश्रबन्धु, प्रकाशक - गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, संस्करण-१९७२ ई. पृ. ३५३, मूल्य ७५/-)

साक्ष्य क्र. २

१. 'मुंशी जी जन्मना मुसलमान होकर भी संस्कारतः वैष्णव थे। प्रायः लोगों को विश्वास न होता था कि वे मुसलमान हैं। हिन्दू धर्म में उनकी आस्था ऐसी ही अटल थी।'

२. "हिन्दुत्व का प्रभाव उन पर इतना गहरा था कि कभी-कभी वह मुझे अरुचिकर हो उठता था। खानपान में छुआछूत का विचार कुछ कड़ाई से करते थे।"

३. "बहुत दिन पहले एक बार मुंशी जी को कोई रोग हुआ। रोग कदचित् रक्त सम्बन्धी था। उससे उन्हें बहुत चिन्ता हुई। थोड़े ही दिनों में उनका रोग अपने आप दूर हो गया। उनकी श्रद्धा ऐसी ही अटल थी। उनका विश्वास था कि शुद्ध मन से जब कभी वे प्रार्थना करेंगे, वह निश्चय ही पूरी होगी।

४. इतने अधिक वैष्णव भावापन्न होकर भी वे संकीर्ण न थे। प्रायः देखा है कि पैगम्बर साहब की स्तुति में उर्दू की एक कविता गाते-गाते वे आत्म विस्मृत हो उठे हैं। असंभव नहीं है, पैगम्बर साहब की प्रशंसा में भी वे अपने उपास्य राम और कृष्ण की ही झलक देखते हैं। उनके मन में अटूट श्रद्धा और अपार भक्ति थी और प्रधान वस्तु है भी यही।"

५. "भीतर जाकर झुककर मैने प्रणाम किया, पैर छुए, परन्तु उनके मुख की ओर न देख सका।... इसी समय देखा, बड़ी लड़की अंतिम दर्शन की बात सुनकर बेहोश हो गयी है.... "अर्थी उठी। बहुत संख्या में हिन्दू और मुसलमान, सबके सब शोकमग्न सिर झुकाए हुए चुपचाप।... "कब्रस्तान में,उसी जगह से मिली हुई कब्र खोदी गई थी, जहाँ बीस-बाईस वर्ष पहले मुंशीजी हमारी भाभी को सुला आये थे।...

"भैया जनकपुर और अयोध्या की तीर्थ मृत्तिका, रेणु और गंगाजल ले आये थे। उसे चढ़ाने के लिए मुसलमान भाइयों ने ऐतराज नहीं उठाया। भैया ने उसे मुझे सौंपते हुए कहा- लो चढ़ा आओ। मैंने यंत्रचलित की माफिक सब काम कर दिया.... मुंशी जी को मानों मिट्टी के नीचे छिपाकर हम लोग लौट पड़े...।" (इस उद्धरण में 'भैया' से आशय श्री मैथिलीशरण गुप्त से है)

(उपर्युक्त समस्त उद्धरण श्री सियारामशरण गुप्त की कृति - 'झूठा सच' में संकलित निबंध 'मुंशीजी' से उद्धृत हैं।)

साक्ष्य क्र. - ३

१. "मुंशी अजमेरी ढाढी कुल के रत्न थे। इनकी जाति के लोग मूलतः जैसलमेर के निवासी हैं, उनके अनेक घर अपने आश्रयदाताओं के साथ उत्तर और मध्यप्रदेशों में आकर बस गये हैं। किसी समय मुसलमान हो जाने पर भी संस्कारों से ये हिन्दू अधिक हैं। अपने ही वर्ग में बेटी ब्याह करते हैं।"(पृ. ६)

२. "विवाह आदि शुभ कार्यों में इनके यहाँ विशेष रूप से चूरमा बनाया जाता है। मृतक संस्कारों में शीरा या हलुवा होता है। सम्मानित अतिथि को गरौली खिलाई जाती है। कुछ मोटी दो रोटियों से एक पर गुड़ा काचूरा बिछाकर और दूसरी से उसे बन्दकर भड़पक किया जाता है। फिर आधा सेर उसे कभी उससे भी अधिक, घी में सानकर उसे खाते हैं।" (पृ. ६)

३. "ढाढ़ियों का कहना है, "पहले हम भी ब्राह्मण थे। किसी मुसलिम विजेता ने हम सबको मुसलमान बनाना चाहा, तब आपस में परामर्श करके हमारे पुरखों को अपना प्रमुख पुरुष व

पंच बता दिया और कह दिया गया इनके मुसलमान हो जाने पर हम सब अपने आप मुसलमान हो जावेंगे। इस प्रकार ढाढ़ियों ने स्वयं विधर्मी होकर अपनी सारी जाति के धर्म को बचा लिया।'' (पृ. ७)

४. ''अजमेरी उनके (भीखाजी के) द्वितीय पुत्र थे। उनका जन्म चिरगाँव में ही हुआ था। वे मुझसे (मैथिलीशरण जी गुप्त) तीन वर्ष बड़े और नन्ना (गुप्तजी के अग्रज) के समवयस्क थे। जब उनका जन्म हुआ तब उनके पिता अजमेर की यात्रा करके लौटे थे, इसलिए उन्होंने उनका नाम अजमेरी रख दिया।'' (पृ. १३)

५. ''समथर राजा के अम्मरगढ़ में एक महन्त थे - बाबा सूरजदास। ... जब कुछ रुपया इकट्ठा हो जाता था, तब वे बड़ा सा भण्डारा किया करते।... वे 'राजा बब्बा' कहलाते थे। ... अपने बचपन में एक बार अजमेरी जी उनके भण्डारे में गये थे। चिरगाँव के महन्त बलदेव दास उन्हें अपने साथ ले गये थे। वे भी सम्मानित व्यक्ति थे... चिरगाँव के एक अन्य बैरागी भी उसमें गये थे। महन्त बलदेवदास ने उन्हें साधुओं की श्रेणी में नहीं बैठने दिया था। वे गृहस्थों के साथ बिठाये गये थे। अजमेरी को लिये हुए बलदेवदास भीतर चले गये। जिस चौक में बड़े-बड़े महन्तों के बैठने का प्रबन्ध था,उसके पहले की दालान में उन्होंने अजमेरी को बिठा दिया और कहा - 'अपने लिए दो पत्तलें डलवाना। एक में भोजन करना, दूसरी बाँधकर डेरे पर ले चलना।' फिर चौक में जाकर वे अपने समानधर्माओं के बीच बैठ गये। परस जब पूरी होने पर आयी, तब उन बैरागी की दृष्टि दूर से अजमेरी पर पड़ी। उन्होंने आसपास के लोगों से कहा-देखो, महन्त बलदेवदास ने हमें तो भेख में नहीं बैठने दिया और एक मुसलमान लड़के को साधुओं के बीच बिठा दिया। बात बढ़कर फैल गयी। अजमेरी के पास बैठे हुए एक साधु ने भी सुन ली। लाल आँखें निकालकर उसने कहा - 'क्यों बे, तू कौन है?' अजमेरी को लगा, अब वह थप्पड़ मारेगा। वे घबड़ाकर उठ बैठे और चौक में बैठे हुए महन्त बलदेवदास की ओर हाथ करके बोले - 'हम तो अपने महन्तजी के साथ हैं।' महन्त ने सुनकर कहा - 'कौन है, कौन है? बैठा रहने दो उसे।' साधु कुछ सहम गया, पर उसने धीरे से कहा - 'मुसलमान के साथ बैठकर मेरे राम भोजन नहीं करेंगे।' अपना कमंडलु लेकर और यह कहकर वह उठा। अभी पूरा खड़ा भी नहीं हो पाया था कि महन्त का एक शिष्य चौक से उठकर उसके सामने आ खड़ा हुआ। उसे बलदेवदास ने ही भेजा था।... उसने कड़ककर उस साधु से कहा - ''बैठ बाबूड़े! बड़ा धर्मध्वजी बना है। कभी जगन्नाथ जी गया है? देखता नहीं सहस्त्रों लोगों की पंगत बैठी है। यह लड़का सबके बीच से निकलकर कहाँ जाएगा?' बाबूड़ा सहमकर सिकुड़ा-सिकुड़ा बैठ गया। चेला अजमेरी की ओर देखकर मुस्कराया और बोला - ''बैठे हो रावजी? बिराजै रहो।' अजमेरी भी मुसकुरा गये। पर उन्हें लगा, तब तो नहीं, सच्ची थप्पड़ अब लगी। उन्होंने मुँह नीचा कर लिया।'' (पृ. १४-१५)

६. ''पूना से बिठूर जाते समय संवत् १६५६ में एक महाराष्ट्र ब्राह्मण वट भिक्षार्थ हमारे यहाँ आ गये। सम्पूर्ण ऋग्वेद उन्हें कण्ठस्थ था और अमरकोश भी...। वे प्रतिदिन हमें-मुझे और नन्ना को अमरकोश के दस श्लोक कंठ करा देते थे। बहुधा अजमेरी भी रहते थे। हम लोग उन्हें गुरुजी कहते थे...। बीच में जब मैंने (मैथिलीशरण गुप्त जी) बताया कि अजमेरी मुसलमान हैं, तब दूसरे दिन अजमेरी के सामने उन्हें पढ़ाना बन्द कर दिया। अजमेरी तीन चार दिन आये नहीं और स्वयं प्रतिदिन अमरकोश के ग्यारह श्लोक मुखस्थ करने लगे।

''हमारे यहाँ एक ब्रह्मचारी काशीनाथ जी भी रहते थे। उन्होंने पूछा- 'अजमेरी क्या कहीं गये हैं?' मैंने स्थिति बतायी। वे जानकर अजमेरी को बुला लाये और उन्हें गुरुजी के सामने बैठाकर बोले 'अजमेरी जी कुछ श्लोक सुनाइये।' अजमेरी ने 'भर्तृहरि शतक' और हनुमन्नाटक के कितने ही श्लोक सुनाये। गुरुजी ने कहा 'मैथिलीशरण ने हमसे मिथ्या कहा कि ये मुसलमान है।' ब्रह्मचारी जी ने कहा 'मैथिलीशरण ने भी झूठ नहीं कहा। परन्तु आपने देख ही लिया कि ये ऐसे मुसलमान हैं।' गुरुजी ने फिर आपत्ति नहीं की और काम यथापूर्व चलने लगा।'' (पृ. १६-१७)

७. हम लोग प्लेग के कारण गाँव के बाहर खेती पर रहते थे। वहीं सन् १६१२ में उसका (अजमेरी जी के पुत्र जंगबहादुर का) जन्म हुआ था। सब लोग उसे जंगली कहकर हँसते थे। पीछे उसका नाम जंगबहादुर रख दिया गया। अजमेरी के मध्यम पुत्र का नाम पन्नालाल था। वह भी कथा-कविता कहा करता था। परन्तु युवावस्था में ही उसकी मृत्यु हो गयी थी। बड़े पुत्र का नाम गुलाबराय है। वह अच्छा गुणी है। परन्तु कुछ उदासीन सा रहता है। छन्दोरचना भी अच्छी कर लेता है। 'सुमिरनी' नाम की एक पोथी भी उसने लिखी है ...। छुटपन में गुलाबराय को शहजादा कहा करते थे। अजमेरी के पौत्रों के नाम हैं - विद्यासागर, ज्ञानसागर, और गुणसागर। ये तीनों गुलाबराय के पुत्र हैं। बड़ा बीमे का काम करता है। अन्य दोनों अध्यापक हैं। ये लोग शुद्धि कराकर ब्राह्मण तो बन गये हैं, परन्तु इससे उनके सामने लड़के-लड़कियों के सम्बन्ध में कठिनाई आ गयी है। कुछ सम्बन्ध उन ढाढ़ियों के यहाँ हो गये हैं, जिन्होंने शुद्धि स्वीकार कर ली है। यहाँ के कुछ जनों ने अजमेरी से बिना पूछे उनकी अनुपस्थिति में गुलाबराय की शुद्धि करायी थी। उससे इन्हें पीड़ा हुई थी। व शुद्धि के विरोधी न थे परन्तु उसे व्यापक रूप में चाहते थे। इस कार्य के प्रचार की सफलता का भी उन्हें आशा थी। परन्तु यह कार्य व्यय साध्य था।'' (पृ. ४६-४७)

८. ''अपने लिए भी वे मेरे आचरण में ढिलाई न होने देते थे। शिवप्रसाद जी के सेवा उपवन में पहली बार मेरे साथ गये थे। भोजन के समय हम लोगों से अलग कुछ दूर सामने की ओर बैठ गये। शिवप्रसाद जी ने पूछा - 'यह पंक्तिभेद क्यों?' कृष्णदास

ने स्थिति बतलाई। वे बोले – 'ऐसा है तो मैं भी अजमेरी के साथ बैठूंगा, वे अकेले नहीं बैठ सकते।' वे उठकर उनके साथ आ बैठे। अजमेरी ने उन्हें भी ऐसा करने से रोका। परन्तु शिवप्रसाद जी अत्यन्त उदार और दृढ़ निश्चयी थी, उन्होंने अपना राजहठ न छोड़ा – "स्वतंत्र भारत के नये विधान में जातीय भेदभाव अथवा अस्पृश्यता न रहने से वह स्थिति अब नहीं रह गयी है कि मैं उनके साथ पंक्तिभेद कर सकूँ। परन्तु वे अब कहां?" (पृ. ५०)

(उपर्युक्त समस्त उद्धरण राष्ट्रकवि स्व. श्री मैथिलीशरण जी गुप्त की कृति – 'मुंशी अजमेरी' से उद्धृत हैं।) पुस्तक के प्रकाशक हैं – साकेत प्रकाशन, राष्ट्रकवि निवास, चिरगाँव झांसी, संस्करण प्रथम, १६८२ तथा एकमात्र वितरक हैं – के.एल. मलिक एण्ड संस प्रा. लि., २३, दरियागंज दिल्ली ११०००२- मूल्य १५/-)

साक्ष्य क्र. ०४

१. "चित्र में लम्बी तलवार साथ रखने वाले कवि-पिता (श्री मैथिलीशरण गुप्त के पिता) सखी सम्प्रदाय के उपासक थे, जिसमें नारी होने की साधना ही इष्ट पूजा है। उनकी तलवार यदि एक युग की वीर गाथा है तो उनकी रहस्य-रामायण दूसरे युग का प्रेम गीत! उनकी वर्णव्यवस्था में आस्था यदि एक युग की धरोहर थी, तो मुस्लिम बालक मुंशी अजमेरी को छठा पुत्र मान लेना दूसरे युग का वरदान।"

– (स्मृति चित्र : महादेवी वर्मा ; संस्मरण 'दद्दा'; पृ. २६ राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-११०००२, संस्करण १६७३, १६६७)

प्रस्तुत आलेख में, विस्तार भय के कारण स्वयं मुंशीजी का आलेख भी, निराला व डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा से उनका पत्राचार तथा अन्य ग्रंथों में प्रकाशित तदाशय के अंशों को छोड़ दिया गयाहै।

नामकरण –

मुंशी अजमेरी के दो ग्रंथ- 'प्रेम पयोनिधि' और 'प्रेम पराग' (क्रमशः सम्पादक व प्रकाशन वर्ष – पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, सन् १६८४ व पं. विद्यासागर शर्मा; सन् २००३) प्रेम प्रकाशन, संत सदन, चिरगाँव (झांसी-उ.प्र.) (शाखा – सत्यार्थी भवन कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ म.प्र.) से प्रकाशित हुए हैं। दोनों ग्रंथों में मुंशी अजमेरी का नाम पं. प्रेमबिहारी 'प्रेम' का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि अजमेरी जी को मुसलमान से ब्राह्मण वर्ग में परिवर्तित करने का कोई गहरा षड़यंत्र है। अजमेरी जी का मूल नाम अजमेरी ही था। अपने परिचयात्मक पद में स्वयं अपने मूल नाम का उल्लेख उन्होंने किया है –

संस्कृत सुनाऊँ छन्द भाषा में बनाऊँ
और पिंगल को डिंगल समेत अपनाऊँ मैं।
मुख से बजाऊँ ज्यों सितार औ' सरोद वाद्य,
देश परदेश के विशेष गीत गाऊँ मैं।
कथा तथा कीर्तन कहानी इतिहास कहूँ,
नाना रंग राग सों रईस को रिझाऊँ मैं।
मूल मारवाड़ जन्मभूमि है बुन्देलखण्ड,
नाँव अजमेरी चिरगाँव को कहाऊँ मैं।

वस्तुतः प्रेमबिहारी उनका मूल नाम नहीं, मैथिलीशरण गुप्त सहित उनके साहित्यिक मित्रों द्वारा उन्हें दियागया नाम था- 'अजमेरी की अनुकृति की शक्ति इतनी प्रबल थी कि उस्ताद अलाबन्दा खाँ की गमकें घर बैठे ही हम लोग उनके मुँह से सुन लिया करते थे। वे शीतल (अजमेरी जी के भाई) के समान पक्के गवैये न हो सके, तो शीतल भी उनके समान विविध गुणों के गुणी न हो सके। हाँ, यह अवश्य हुआ कि दतिया के नाचने-गाने वालों की संगति में जहाँ शीतल का दूसरा नाम 'नबीबख्श' हो गया, वहाँ अजमेरी का हम लोगों में 'प्रेमबिहारी'। आशुकवि स्वर्गीय अयोध्यानाथ ने कहा था –

योऽसौ प्रतिसद्धोस्त्यजमेरिनाम्ना गानेन गंधर्वसमः पिकस्वनः
जीयादिह प्रेमविहरिगायकोऽयोध्याथिनाथोत्र प्रमाण भूतः

अजमेरी ने 'प्रेम' ही अपना उपनाम रख लिया था।"

(मुंशी अजमेरी, पृ. ४१)

मुंशी अजमेरी का समय इतना प्राचीन नहीं है, कि उनके परिवार, कुल, नाम आदि के सम्बन्ध में हड़प्पा-मोहनजोदड़ो की भाँति अन्वेषणात्मक बौद्धिक विवाद उत्पन्न किया जाय। मेरी विनम्र मान्यतानुसार, मुंशी अजमेरी जी जैसे ईश्वरीय उपहार और प्रतिभा सम्पन्न कलाराधक के वास्तविक जीवन पर असत्य का आवरण चढ़ाना सर्वथा असंगत है। अजमेरी जी किसी के कौटुम्बिक पूर्वज हो सकते हैं, पर उन्हें यह विस्मृत नहीं करना चाहिए कि सुकवि अजमेरी जी का अवदान समूची साहित्यिक बिरादरी, बुन्देलखण्ड और राष्ट्र की सुरक्षित और संचित निधि है। ऐसी निधि को विकृत और विद्रूप करने की इजाजत किसी को नहीं दी जा सकती।

जीवन परिचय –

मुंशी जी के जीवन पर पूर्व में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। इनका जन्म चिरगाँव में संवत् १६३८ के अगहन मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को हुआथा। अपने गुणी पिता-भीकाजी के निधनोपरान्त राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के पिता ने इन्हें संरक्षण देते हुए अपना छठा पुत्र स्वीकार किया। ओरछा नरेश श्री वीरसिंह जू देव ने इनकी असाधारण प्रतिभा और निर्भीक तथा निरभिमानी व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर अपना राजकवि नियुक्त किया तथा आजीवन पचास रुपये की मासिक वृत्ति बांध दी। आपका स्वर इतना मधुर तथा काव्यपाठ की शैली इतनी आकर्षित हुआ करती थी कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते थे। ये अत्यन्त विनोदी व्यक्तित्व के आशुकवि थे और तदाशय की अनेक सच्ची घटनाएँ हैं, जिन्हें इनके छोटे भाई मैथिलीशरण गुप्त और सियारामशरण गुप्त ने अपनी कृतियों व स्वतंत्र आलेखों में स्थान दिया है। अपनी संकोचशीलता तथा विज्ञापन से अरुचि के कारण इस महान व्यक्तित्व को साहित्य जगत में जो सममानजनक स्थान मिलना

चाहिए, नहीं मिल सका। बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि श्री मैथिलीशरण गुप्त को 'राष्ट्रकवि' के पद तक पहुँचाने में अजमेरी जी का महत्वपूर्ण साहित्यिक अवदान रहा है। इनके साहित्यिक अवदान को स्वयं गुप्त जी ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने अत्यन्त सच लिखा है -

''बजती क्या मैथिलीशरण के काव्य कीर्ति की भेरी?
मिलते नहीं अगर उनको प्रेरक-मुंशी अजमेरी।''

प्रख्यात निबंधकार व आलोचक पं. पद्‌म सिंह शर्मा के एक लेख की निम्नांकित पंक्तियों से अजमेरी जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है। ''विशाल भारत के गत अंकों में प्रकाशित पन्नों का कण्ठा और 'हे तुलसी' शीर्षक कविताओं के लेखक कविवर मुंशी अजमेरी जी का परिचय बहुत कम कविता प्रेमी पाठको को होगा। यों तो उनकी कविताएँ समय-समय पर कई पत्र-पत्रिकाओं में कभी कल्पित और कभी असली नामों से प्रकाशित हुई हैं। पर अपनी संकोचशीलता के कारण हिन्दी संसार में वह प्रायः अपरिचित से ही हैं। मुंशीजी कविता के अतिरिक्त और भी कई कलाओं में निपुण थे। वह बड़े अच्छे गायक, कीर्तनकार और विनोदी व्यक्ति थे। अनुकरण कला में तो असाधारण क्षमता प्राप्त थे। बड़े-बड़े गवैयों के गीत, ग्रामोफोन के रिकार्ड, सरोद आदि बाजों की ध्वनि की हू-ब-हू ऐसी नकल उतारते थे कि असल और नकल में जरा भी भेद मालूम नहीं होता था। यदि उन्हें पर्दे की ओट में सुना जाता तो मालूम पड़ता था कि हम असली सरोद या ग्रामोफोन का रिकार्ड सुन रहे हों। कीर्तन की ढंग की भागवत कथा इस ढंग से कहते थे कि सुनते ही बनती थी। उनका संस्कृत, ब्रजभाषा और बंगला का उच्चारण इतना विशुद्ध और सुस्पष्ट होता था कि सुनने वाला आश्चर्यचकित रह जाता था। कवीन्द्र रवीन्द्र के बँगला गीत जब वह अपने मधुर कंठ से गाकर सुनाते थे तो जान पड़ता था कि साक्षात् श्री रवीन्द्रनाथ के मुख से ही सुन रहे हैं। उनकी ब्रजभाषा की कथा तो इतनी मधुर होती थी कि श्रोता तन्मय और गद्‌गद् हो जाते हैं। आप जन्म के मुसलमान थे पर, उनके आचार व्यवहार वेश-भूषा, भाषा और भावों को देखकर यह ख्याल तक नहीं होता था कि यह इस जन्म में तो क्या, किसी पहले जन्म में भी मुसलमान रहे होंगे। पक्के वैष्णव बूझ पड़ते थे। हिन्दी के बड़े अच्छे कवि थे। उनकी रचना में वर्णन का प्रवाह और प्रसाद पर्याप्त मात्रा में रहता था। भाषा साफ-सुथरी होती थी। समस्या पूर्ति और आशु कविता में भी निपुण थे। कथात्मक रचना तो आपकी बहुत उत्तम होती थी।'' (म.प्र. के मुसलमान हिन्दी कवि : लेखक - श्रीचन्द्र जैन, पृ. २-३, संस्क. : सन् १९५७)

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी के संपादन में (जिसके सह सम्पादक श्री गुणसागर शर्मा 'सत्यार्थी' हैं) मुंशी अजमेरी 'प्रेम' की रचनाओं का संग्रह सन् १९८४ में 'प्रेम पयोनिधि' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस संकलन के पृ. ३६-३७ पर पं. पद्‌म सिंह शर्मा का यही आलेख छपा है (विशाल भारत, के फरवरी १९३० के सौजन्य से) परन्तु इस आलेख में से 'आप जन्म के मुसलमान थे... से लेकर 'बड़े अच्छे कवि थे' - तक का अंश हटा दिया गया है। यहाँ भी अजमेरी जी के मुसलमान होने का प्रमाण नष्ट करने की चेष्टा की गयी है।

काव्य -

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में अजमेरी जी की स्फुट रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं; परन्तु वे कम ही हैं। उल्लेख किया जा चुका है कि अजमेरी जी की प्रकाशन में कोई रुचि नहीं थी। इसके उपरान्त भी उनकी जो कृतियां प्रकाशित हुई हैं, वे हैं - 'मधुकरशाह', 'गोकुलदास', 'हेमलसत्ता', 'चित्रांगदा', 'विसर्जन', तथा 'रामकथा'। इनमें से चित्रांगदा तथा विसर्जन रवीन्द्रनाथ टैगोर की कृतियों के सुन्दर अनुवाद हैं जो क्रमशः खड़ी बोली और ब्रजभाषा में हैं। 'रामकथा' अपूर्ण है, उसका 'बालकाण्ड' ही पूरा हो सका। इनकी 'मधुकरशाह' पर ओरछेश वीरसिंह जू देव ने एक सहस्त्र रुपये से इन्हें सम्मानित किया था। इनकी कविता का एक उदाहरण -

कौन कहता है कि - है हिन्दी दीन-हीन भाषा?
देखै वह शान आज उसके सम्मान की -
जिसकी कबीर कृत शब्द और सखियाँ ही,
सार हैं रवीन्द्र - से कवीन्द्र के सु-गान की।
हैं प्रणम्य सूर तुलसी की रम्य रचनाएँ,
जिनमें विराजती हैं भक्ति भगवान की।
हिन्दी आज वही राष्ट्रभाषा रूप राजती है,
छाजती छटा है दिव्य मृदु मुसकान की।।
हिन्दी सार्वदेशिक सुरूप में सुधरी हुई,
वस्तु है हमारे लिए विभु वरदान की।।
भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी प्रान्तों के निवासी हम,
पाते हैं जिससे हैं शक्ति ऐक्य-अभिमान की।
विश्व पूज्य गांधी-से महात्मा अपनाके जिसे,
गाते हैं सुगाथा जिस भाषा के बखान की।।

प्रदेय -

२८ मई १९३७ को माँ भारती के इस दुलारे सपूत का देहावसान हो गया। अंतिम दिनों का 'स्केच' बनाते हुए श्री मैथिलीशरण जी गुप्त लिखते हैं - ''संवत् १९९४ के वैसाख में कहीं खोप लग जाने से उनके पैर में व्रण हो गया। वह ऐसा बड़ा न था, साधारण ही लगता था। इसलिए उन्होंने उस पर विशेष ध्यान न दिया। परन्तु न जाने कैसे अन्त में वह विषाक्त हो गया। झांसी से आकर डॉक्टर ने इंजेक्शन आदि से उनका उपचार किया। परन्तु तापमान बढ़ता ही गया और वह एक सौ सात डिगरी के ऊपर हो गया। हम लोगों के सारे प्रयत्न विफल हो गये। वे अचेत थे। परन्तु सहसा उन्होंने दो बार नाम लेकर मुझे पुकारा - 'मैथिलीशरण! मैथिलीशरण! जब तक मैं पहुँचूँ, उनका जीवन समाप्त हो गया। ऐसा लगा, मानो हमारे रस का स्त्रोत ही सूख गया।''

जिनका हृदय और मन निश्छल और निर्मल होता है, उन

दिव्य पुरुषों को ही ऐसी सद्गति प्राप्त होती है कि अंत समय में किसी-न-किसी रूप में ईश्वर का नामोच्चारण उनके मुख से निःसृत होता है। तुलसी ने लिखा है -

कोटि कोटि मुनि जतन कराहीं। अंत रामु कह आवत नाहीं।।

युगपुरुष महात्मा गांधी के मुख से जीवन के अंतिम क्षणों में 'हे राम' का उच्चारण हुआ, अजमेरी जी ने भी 'मैथिलीशरण' का उच्चारण किया। गुप्तजी की दृष्टि में वह सम्बांधन भले ही उनके लिये था, पर मेरी दृष्टि में यह ईश्वरीय नामोच्चारण था।

कबीर के पश्चात् शायद ही कोई ऐसा महान संत हुआ हो जिसकी जाति को लेकर विवाद की स्थिति निर्मित हुई हो। अजमेरी जी कबीर के ऐसे ही व्यक्तित्व की श्रेणी के हैं। कबीर के ऊपर से चादर हटाने के बाद उसके शव के स्थान पर प्राप्त फूलों को परस्पर बाँट कर हिन्दुओं ने जलाया, मुसलमानों ने दफनाया। ऐसा कर दोनों ने विभेद का परिचय दिया। अजमेरी जी को मुस्लिम विधि से दफनाया गया और उस पर गंगाजल, अयोध्या व जनकपुर की तीर्थ मृत्तिका तथा रेणुका डाली गयी। ऐसा कर हिन्दू-मुसलिम के अटूट एकीकरण का संकेत किया गया। ऐसा उदाहरण मेरे मतानुसार इतिहास में दूसरा नहीं होगा।

- शा.एस.एम.एस. महाविद्यालय, कोलारस (शिवपुरी)

ऐसौ फल न बोय

- वीरेन्द्र सिंह परमार

सत्तुर से लग रये बुढ़ापे में, मात-पिता काये तोय?
कर ले बेटा भर ले भरनी, कभऊँ तेंउँ न बूढ़ो होय?

नौ मइना लौं गरभ में राखो, निदिया लई न पूरी
तनक छींक जौं आई तोहे, भई मताई-जूरी -
पाल-पोष, तन-धोय-धोय कैं, लाड़-लड़ाये-जोय।।

पढ़ा-लिखा, तोई चाल-कुचालैं ढाँपत बाप-मताई
करजा भर-भर, सुख-संपत हाँ कर-रये बैल-कमाई।
अपनी ज्वानी, उमिर गमाई, फूले फिरैं सगाई होय।।

इष्ट-मित्र सब जोर जार कैं, आई घरै बहुरिया-
आतन सोचन लगी, नचाऊँ, जैसे नचै बँदरिया।
सुख कें मारें समझ न पाये, दूनी कर रये सेवा-छोय।।

भये नाती, उच्छाह-बधाई, खर्चा-कर्जा-आफत
गिन न रये कछु बब्बा-दाई, कैसउँ होवै साँसत।
सेय-सपच्छ भये अब बूढ़े, सबई कछू दओ खोय।।

अब असली सूरत हम देखी, तुम्हैं बतायें खास।
दुःख-सुख सें कछु मतलब नइयाँ, तनकउ डरै न घास।
अब दबाव, गारीं बिन-सोचें, जूता हाँथन दोय।।

हे बिधना जिन मुखन असीसैं, मन्नत माँगी होंय।
उन्हइँ मुखन तें आह, उसाँसैं, का-का- निकसत रोय।
सुख ना पैहौ कभउँ सुनौ सुत, तुम्हरउ या गति होय।।

निरपराध जब बाप मताई कहूँ सताये जाँयँ।
समझौ सुख सम्पत्ति नाश है, कहूँ रूपैं न पाँयँ।।
'वीर' कहैं समझाय सबइ जन।।। ऐसो फल न बोय।।

-ग्रा. उटियाँ, पो. कबरई/धरौन, जिला महोबा

का हौ राम करैंया

- डॉ. रमेश चन्द्र खरे

करैंयाँ का हौ मोरे राम, सबई खों बस अपनई सों काम
खुदई को चाने है बस नाम, कहाँ जाएँ बाकी सारे...?
अपन को सेजो छोटन पिसन, बड़न के हैं वारे न्यारे।
गजब के रंग ढंग हैं, अजब सब संग-संग है।
जे भइया-मोंसेरे, मों बोले
देखो, एक घाट पै एकई,
बूढ़ो शेर जपे माला ज्यों, रहें इरादे 'नेकइ'!
चोर, बन साहूकार ठसे
घरइ में एकइ आन बसे
एक डिब्बा में मनों गसे
भ्रष्ट सब स्वारथ के मारे
कहाँ लों का करिए सरकार
पार राहत दै दै तारे!
ऐसो राज-रोग जौ, कैसो आज जोग जौ।
बड़े नेतन के बड्डे काम
खड़े खेतन में सूखे चाम
बढ़े वेतन में नें आराम
रोत सब गांव-शहर वारे
नें देखो जुग जो कब्बउं जियत
कि मँहगाई से ई हारे।
समई के नए राग हैं, समई के फूटे भाग हैं।
इते अलाली काम चोर जे उते मजूरी चाने,
नौकरपेशा कोरे कइ तो रोज हजूरी ठाने।
करो नें चाहें कोनउ काम
मुफत में चाहें कई इनाम
पसारे पांव, करत आराम
होय फिर कोनउ रस्ता रे ऽ...

- हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,
कलेक्ट्रेट के पास, दमोह

ज्ञान की गठरियाँ हमारी लोकोक्तियाँ

- श्रीमती व्रजलता मिश्र

बुन्देलखण्ड के जन-मानस में बुन्देली लोकोक्तियाँ रची-बसी हैं। हमारे पूर्वजों ने अपने दीर्घ जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों को सँजोकर इन लोकोक्तियों की रचना की होगी। ये लोकोक्तियाँ सच्ची पथ-प्रदर्शक बनकर समय-समय पर हमारा मार्गदर्शन करती है, आने वाली विपत्ति से हमें अवगत, सावधान और सचेत करती हैं, हमें विनम्र और व्यवहारकुशल बनाती हैं।

बचपन की बात है - एक बार अपने घर में अपनी सहेलियों के साथ बैठकर हम लोग अपनी-अपनी तारीफों के पुल बाँध रहे थे, बड़ी-बड़ी डींगे हाँक रहे थे। सहेलियों के जाने पर मेरी माँ ने बड़े-प्यार से मुझे समझाया - ''बेटा! 'अपने मौं सें धनाबाई' नइँ बनो चइये। कोऊ दूसरी जनौ जब बड़ाई करै, तौ बड़ाई मानी जात।'' उस समय अज्ञानतावश यदि कोई ऐसी बात मुँह से निकल जाए, जिसमें अहंकार या मिथ्याभिमान की भावना झकती हो, तो हमारे बड़े-बूढ़े लोगों का कहना था कि ''बड़ौ कौर खा लेवै, पै बडौ बोल ना बोलै।''

पुराने समय के लोग आज के युग की भाँति अधिक साधन-सम्पन्न न होते हुए भी स्वाभिमानी होते थे। इसीलिए उनका सिद्धान्त था - ''खर-गुर खइयैं ठसक सें रइयैं।''

उस समय सभी लोग संयुक्त-परिवारों में सुख-दुःख बाँटते हुए एक दूसरे का सहयोग करते थे। सम्पन्नता या विपन्नता की एक-सी अनुभूति पूरे परिवार को होती थी। 'तनक सौ सौनों, सब घर नोनों' के अनुसार थोड़ी पूँजी में ही पूरे परिवार का सम्यक् रूपेण निर्वाह होता था।

आज के भौतिकवादी युग में लोगों की प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ गई है कि वे सामर्थ्यवान् न होते हुए भी धनिकों की होड़ में लग जाते हैं, तो मन बरबस कहने लगताहे कि - ''घर में नइयाँ दाने, मैया चलीं भुँजाने।''

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी अच्छा, तो कभी बुरा समय आता ही है। बुरे समय में व्यक्ति को धैर्यपूर्वक मौन धारण करके अच्छा समय आने की प्रतीक्षा करना चाहिए। अच्छा समय आते ही वर्षों से बिगड़े हुए काम चुटकियों में बन जाते हैं। जैसाकि कविवर रहीम ने कहा है -

''रहिमन चुपह्वै बैठिये, समुझि दिनन कौ फेर।
जब नीके दिन आई हैं, बनत न लगिहै देर।।

जिस प्रकार उपर्युक्त लोकोक्ति हमें संकट में धैर्य न खोने का सन्देश देती है, उसी प्रकार - ''माया देख न गरबिये, बिपत देख ना रोय'' जैसी लोकोक्ति सुख-दुःख में एक समान रहकर, सम्पत्ति में अभिमान न करना तथा विपत्ति में दृढ़ता के साथ संघर्ष करने की प्रेरणा देती है।

स्वाधीनता के पश्चात् हमारे देश की वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्र में तीव्र गति से प्रगति हुई है। दूरसंचार के साधनों में मोबाइल फोन का प्रचार-प्रसार इतना बढ़ा कि आवश्यकता न होते हुए भी छोटी आयु के विद्यार्थियों में चौबीस घण्टे मोबाइल फोन रहताहै। ये पढ़ाई में चाहे एक घण्टा समय भी न दें किन्तु मोबाइल फोन पर घण्टों बातें करना इन्हें रुचिकर है। मेरे पड़ोसी ने अपने बच्चे को नये वर्ष के उपहार में मोबाइल फोन दिया। अब तो चलते-फिरते, उठते-बैठते उसका नाम ही रख दिया- 'मिस्टर मोबाइल।' वे लोग हँसते हैं कि ''नंगू कैं गड़ई भई, बेर-बेर हँगन गई।''

गाँवों की अनपढ़ लड़कियाँ शहर में ब्याहने का स्वप्न देखती हैं। जब उनके स्वप्नों के राजकुमार 'शहरी बाबू' से उनका विवाह हो जाता है। 'खाउँन लगी दूद-भात, भूल गई माई-बाप' लोकोक्ति के अनुसार गाँवों से सम्बन्ध तोड़कर अपने को पूर्णतया शहरी दिखाने के प्रयास में फैशन, नाज़ नखरे आदि में तो वे शहरी बहू-बेटियों की नकल करती हैं, परन्तु पढ़ाई-लिखाई, नौकरी-व्यवसाय आदि की नकल नहीं करतीं हैं। यदि घर में सम्पन्नता नहीं है, तो वे सामंजस्य नहीं करतीं। नौकरी-पेशा बहू-बेटियों की नकल करते हुए इन्हें भी हर कार्य करने के लिये नौकरानी चाहिए। पढ़ाई-लिखाई में शून्य होते हुए भी उन्हें घर के काम-काज, जैसे लीपना-पोतना, खाना बनाना आदि नहीं आता, क्योंकि वे बड़े लाड़-प्यार से पलीं हैं। उनके दुर्भाग्यशाली पति बेचारे 'कोल्हू का बैल' बनकर रात-दिन ओव्हर टाइम काम करके पैसा कमाते हैं। ऐसे लोगों के लिये ही यह चरितार्थ है -

अजब तेरी कुदरत, अजब तेरो खेल।
''छछूँदर के सिर में, चमेली कौ तेल।''

पाककला में निपुण मेरी बेटी विविध प्रकार के व्यंजन बड़े मन से बनाती और खिलाती है। एक बार उसकी सहेली ने उससे पावभाजी बनाना सीखी। पावभाजी बनाकर जब उसने अपने परिजनों को खिलाई, तो अगले ही दिन उसकी माँ ने मुझसे कहा कि ''मेरी बेटी बहुत बढ़िया पावभाजी बनाती है। यदि आप खाएँगीं तो अंगुली-चाटती रह जाएंगी।'' मन ही मन यह सोचकर मुझे हँसी आ गई, कि वाह! 'मोरेइ घर सें आग लियाईं नाऔ धरौ बैसाँदुर।'

बहुत पुरानी बात है - मेरे मामाजी के गाँव में एक दबंग दम्पत्ति रहते थे। हर किसी व्यक्ति के गाँव में एक दबंग दम्पत्ति

रहते थे। हर किसी व्यक्ति के फटे में पाँव देकर या दाल-भात में मूसरचन्द बनकर गाली-गलौच करना उनका स्वभाव था। उनकी गालियों के कारण अनेक बार मार-पीट तक हो जाती थी। कुछ वर्षों के बाद उनके घर में बेटे का जन्म हुआ। गालियों के पर्यावरण में पले हुए उस बच्चे ने गालियों से ही बोलना आरम्भ किया। अबोध शिशु के मुँह से गालियाँ सुनकर लोग काना-फूसी करते थे कि -

जाके जैसे बाप-मताई, ताके तैसे लरका।
जाके जैसे नदिया-नारे, ताके तैसे भरका।।"

धीरे-धीरे वह बालक बड़ा हुआ, उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु उसे शहर भेजा गया। संयोगवश वह किसी कम्पनी में उच्चाधिकारी बन गया, किन्तु सब टक जाय, जनम टक ना जाय।" लोकोक्ति के अनुसार गाली देना नहीं छोड़ पाया। अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की योग्यता, आयु तथा अनुभव आदि का लिहाज न करते हुए, कुछ-न-कुछ दोषारोपण करके प्रत्यक्ष या फोन पर गाली देता था। उसके इस आतंकवाद से अनेक भुक्तभोगी तनाव के कारण उच्च रक्तचाप, हृदय-रोग, अवसाद, सदमा आदि के शिकार हो जाते थे। विवशता से कुछ लोग नौकरी छोड़कर 'दाने-दाने के मोहताज' हो जाते थे। किन्तु उसकी आवाज मात्र सुनकर थर-थर काँपने वाले लोगों को समझाने का या अपनी बात को स्पष्ट करने का साहस नहीं होता था। सभी की सोच थी कि - "तोय बिरानी का परी, अपनी तौ निरबार।"

एक संवेदनशून्य व्यक्ति अपने आतंक या दबंगी के बल पर प्रशासन चलाने में भले ही सक्षम हो, किन्तु सच्चे मन से कोई उसका सम्मान नहीं करता। अधिकारी का मधुर व्यवहार ही उसे सम्मान प्रदान करता है। कहा भी गया है -

बड़े न हूजै गुनन बिन, बिरव बड़ाई पाय।
कनक धतूरे सों कहै, गहनो गड़ो न जाय।।

अर्थात् जिस प्रकार 'कनक' शब्द का अर्थ स्वर्ण और धतूरा है, किन्तु कनक नाम होने से धतूरा से आभूषण नहीं गढ़ते। स्पष्ट है कि गुणों के बिना कोई भी सम्मान नहीं पाता है।

इन लोकोक्तियों के विषय में अधिक क्या कहूँ? "मामा के आँगे ममयावरे की बातें" लगती हैं। बुन्देलखण्डी व्यक्ति इनसे अछूते नहीं हैं। हास-परिहासपूर्ण कुछ लोकोक्तियाँ जन-मन-रंजन कराती हैं, तो कहीं ये लोकोक्तियाँ दिशा-हीन, भ्रमित व्यक्तियों को दिशा-बोध कराती हैं। इस अमूल्य सम्पदा को संजोए रखने की आवश्यकता है।

- केशव कुल, ३५२, नानक गंज,
सीपरी बाजार, झाँसी (उ.प्र.)

बुन्देली गजल

- प्रेम प्रकाश चौबे 'प्रेम'

(१)

जित्ते काम होत सरकारी।
खा-खा खैया मारा मारी।।

बई थैली के चट्टे बट्टे,
तहसीलदार का, का पटवारी।।

बँदरा बने कलेक्टर सबरे,
नेता सब हो गए मदारी।।

सबरे एक अबा के डुबला,
उजरे मौं करतूते कारी।।

रिश्वत को गांजौ पी-पी के,
खा गए स्वांग बजा रए तारी।।

'प्रेम' बने घुग्गू ठांड़े हैं,
जैसें मर गई हो महतारी।।

(२)

ऐंसी मार परी ओरन की।
बुरी दसा हो गई खेतन की।।

बौ छप्पर टूटौ मंगलू कौ।
जा छानी सुषमा कोरन की।।

मानुस की गुजरै जैसे,
असली मरन भई ढोरन की।।

राम सिंह को डुकरा मर गओ,
और डुकरिया गई तोरन की।।

'प्रेम' मदद मिल है सरकारी,
जैसे के पुड़िया चूरन की।।

(३)

नेता खूब मलाई खा रए।
दै मूंछन पै दाव पचा रए।।

काल फिरत्ते पांव-पांव वे,
उन खों उड़न खटोला आ रए।।

वोटन खों सो पांव परत्ते,
अब सूदे मौं नईं बतरा रए।।

बार बिरोबर काम हमारो,
हो जै-हो जै सब टरका रए।।

'प्रेम' कौन की बात करत हौ,
बेइ ऐंसी-तैंसी करवा रए।।

सागर जिले के प्राचीन जैन मंदिर एवं प्रतिमाएँ

- डॉ. सुश्री शरद सिंह

सागर जिला प्राचीनकाल से ही कला और संस्कृति का धनी रहा है। भारतीय परम्परा में कला और संस्कृति धर्म के अनुगामी एवं सहचर रहे हैं। इसीलिए मंदिरों एवं धार्मिक प्रतिमाओं के रूप में कला, संस्कृति और धर्म एक साथ रूपायित हो कर सामने आये हैं। सागर जिले में अनेक प्राचीन मंदिर एवं प्रतिमाएं हैं जो सागर जिले को जैन धर्मावलम्बियों द्वारा प्रदान की गई अमूल्य एवं गौरवशाली सम्पदा है। सागर जिले का सबसे प्राचीन जैन मंदिर पजनारी का भगवान शांतिनाथ का मंदिर है। सागर जिले के जैन मंदिरों की ज्ञात वह श्रृंखला जो कालक्रमानुसार पजनारी से प्रारम्भ होती है, वह इस प्रकार है -

१. पजनारी का शांतिनाथ मंदिर -

सागर जिला मुख्यालय से लगभग २२ कि.मी. दूर सागर बंडा मार्ग पर ग्राम कंदरी से ५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है, जैन अतिशय क्षेत्र पजनारी। यहाँ १५वीं शती का एक मंदिर विद्यमान है। यह मंदिर गांव के निकट स्थित लगभग ५०० फुट ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ है। मंदिर के गर्भगृह में भगवान शांतिनाथ चार फुट ऊँची पद्मासन मुद्रा की पाषाण प्रतिमा है। इस मुख्य मूर्ति के दोनों ओर कुंथुनाथ एवं अरहनाथ की खड्गासन प्रतिमाएं हैं जिनकी ऊँचाई ६-६ फुट है। इन तीनों मूर्तियों के पादपीठ पर एक लेख अंकित है जो अब अस्पष्ट हो चुका है। गर्भगृह की दक्षिणी दीवार पर एक रथिका है जिस पर एक फुट ऊंचे शिलापट पर भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा उत्कीर्ण है। इस प्रतिमा के दोनों पार्श्व में कुंथुनाथ एवं अरहनाथ की प्रतिमाएं अंकित हैं। गर्भगृह का शिखर पंचरथ शैली का है।

२. ईशुरवारा का शांतिनाथ मंदिर -

सागर से लगभग ३० कि.मी. सागर खुरई मार्ग पर किसनपुरा गांव है। इस गांव से लगभग ३ कि.मी. जैन अतिशय क्षेत्र ईशुरवारा है। यहाँ गाँव के निकट की पहाड़ी पर १७वीं शती के पूर्वाद्ध का एक जैन मंदिर विद्यमान है। यह मंदिर पूर्वाभिमुख, नागर शैली का है। मंदिर के गर्भगृह की मूल वेदी पर भगवान शांतिनाथ की १० फुट ऊँची प्रतिमा खड्गासन मुद्रा में प्रतिष्ठित है। इस मुख्य प्रतिमा के एक ओर कुंथुनाथ तथा दूसरी ओर अरहनाथ की ८-८ फुट ऊँची खड्गासन मूर्तियां हैं। भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा के पाद्पीठ पर अंकित लेख के अनुसार इस मंदिर का निर्माण पाणाशाह ने संवत् १६६२ अर्थात् सन् १६०५ ई. में कराया था। गर्भगृह के उत्तरी कोने में चन्द्रप्रभ तथा दक्षिणी कोने में नेमिनाथ की ४-४ फुट ऊँची प्रतिमाएं हैं। गर्भगृह का शिखर पंचरथ शैली का है।

३. पटनागंज के जैन मंदिर -

सागर से लगभग ४२ कि.मी. दूर रहली में सुवर्णभद्र नदी के उस पार पटनागंज दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। इस क्षेत्र में कुल अट्ठाईस जैन मंदिर हैं -

मंदिर क्र. १ - इसमें भगवान शांतिनाथ की पद्मासन प्रतिमा है। यह प्रतिमा ध्यानमुद्रा में तथा हरिणलांछन से युक्त है। प्रतिमा के पादपीठ पर दो पंक्तियों का देवनागरी लिपि में लेख उत्कीर्ण है जिसके अनुसार यह मंदिर संवत् १८६४ अर्थात् १८०७ ई. में निर्मित कराया गया था। मंदिर के गर्भगृह का शिखर नागर तथा गुम्बद शैली के मिश्रण स्वरूप है।

मंदिर क्र. २ - इसमें भगवान चन्द्रप्रभ की पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिमाके पादपीठ पर देवनागरी लिपि में दो पंक्तियों का लेख उत्कीर्ण है जिसके अनुसार मंदिर का निर्माण काल संवत् १८६४ अर्थात् १८०७ ई. का है। यह पूर्वाभिमुख मंदिर है।

मंदिर क्र. ३ - इस मंदिर में मुनि सुव्रतनाथ की पद्मासन ध्यानमुद्रा में संगमरमर की प्रतिमा है। इसमें लांछन कछुआ तथा पादपीठ पर उत्कीर्ण लेख में निर्माणकाल संवत् १५४५ अर्थात् १४८८ ई. अंकित है।

मंदिर क्र. ४ एवं ५ - मंदिर क्र. ४ मात्र २०० वर्ष पुराना है। इसमें तीर्थंकर की पद्मासन में ध्यानमुद्रा की प्रतिमा है जबकि मंदिर की प्रतिमा क्र. ५ संवत् १८३५ की निर्मित है। गर्भगृह में मुख्य प्रतिमा मुनि सुव्रतनाथ की है। प्रतिमा की पादपीठ पर लेख अंकित है जिसमें प्रतिमा-स्थापितकर्त्ताओं की वंशावली दी गई है। गर्भगृह के भीतरी भाग में चित्रकारी है जो लगभग २०० वर्ष पुरानी है।

मंदिर क्र. ६, ७ एवं ८ - मंदिर क्र. ६ लगभग दो सौ वर्ष पुराना है किन्तु इसमें प्रतिष्ठित प्रतिमा प्राचीन नहीं है। मंदिर क्र. ७ एवं ८ प्रवेशद्वार के बाये पार्श्व के मंदिर हैं जिनमें भगवान आदिनाथ एवं भगवान ऋषभनाथ की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं।

मंदिर क्र. ९, १० एवं ११ - ये तीनों आधुनिक मंदिर हैं जिनमें क्र. भगवान ऋषभना, अजितनाथ तथा संभवनाथ की पाषाण प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं। इनके पादपीठ पर वृषभ, गज तथा अश्व के लांछन अंकित हैं। ये प्रतिमाएं लगभग २५० वर्ष पुरानी हैं।

मंदिर क्र. १२, १३ एवं १४ - मंदिर क्र. १२ के गर्भगृह में सहस्त्रकूट चैत्यालय गोलाकार निर्मित है, जिस पर तीर्थंकरों की खड्गासन तथा आसीन मुद्रा की प्रतिमाएं अंकित हैं। ये लगभग २०० वर्ष पुरानी हैं। इनका निर्माणकाल पादपीठ पर संवत् १८४६ तथा संवत् १८३४ अंकित हैं। मंदिर क्र. १३ में अभिनन्दननाथ की खड्गासन प्रतिमा है जो लगभग १०० वर्ष पुरानी है। मंदिर क्र. १४ में भगवान सुमतिनाथ की पद्मासन प्रतिमा है।

मंदिर क्र. १५,१६ एवं १७ - मंदिर क्र. १५ में संवत् १५४८ की भगवान पद्मप्रभ की पद्मासनी ध्यानमग्न प्रतिमा है। मंदिर क्र. १६ में लांछन विहीन तीर्थंकर प्रतिमा है तथा मंदिर क्र. १७ में भगवान चन्द्रप्रभ की चन्द्र लांछन वाली प्रतिमा है। यह भी संवत् १५४८ की है।

मंदिर क्र. १८, १९, २०, २१ एवं २२ - मंदिर क्र. १८ में भगवान पुष्पदंत की पाषाण प्रतिमा है। मंदिर क्र. १९, २०, २१ एवं २२ में अस्पष्ट लांछन वाली अथवा लांछनविहीन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं।

मंदिर क्र. २३,२४ एवं २५ - मंदिर क्र. २३ में मुख्य प्रतिमा भगवान चन्द्रप्रभु की है जो संवत् १५४८ की है। इसकी दायीं ओर भगवान पद्मप्रभ की प्रतिमा है। मंदिर क्र. २४ महावीरा मंदिर कहलाता है। इसमें भगवान महावीर की विशालकाय पद्मासन प्रतिमा है। जो संवत् १८४८ की है। मंदिर क्र. २५ भगवान पार्श्वनाथ की सहस्त्रफण युक्त पद्मासन प्रतिमा है। यह मंदिर लगभग २०० वर्ष पुराना है।

मंदिर क्र. २६, २७ एवं २८ - मंदिर क्र. २६ में पद्मपीठिका पर आसीन पद्मावती देवी की प्रतिमा है। सर्पछत्र के ऊपर पार्श्वनाथ की लघु आकृति है। यह प्रतिमा संवत् १५८० की है। मंदिर क्र. २७ में पार्श्वनाथ की एक बड़ी तथा दो छोटी प्रतिमाएं तथा भगवान चन्द्रप्रभ की लघु प्रतिमाएं हैं। ये संवत् १५४८ की हैं। मंदिर क्र. २८ मं मुख्य प्रतिमा पार्श्वनाथ की हैं तथा उसके दोनों पार्श्व में भगवान चन्द्रप्रभ की प्रतिमाएं हैं। पटनागंज के सभी मंदिर एक ट्रस्ट की देख-रेख में हैं।

४. पंडलपुर का जैन मंदिर -

पटनागंज से लगभग २ कि.मी. दूर पंडलपुर में १८वीं शती का जैन मंदिर है। मंदिर के गर्भगृह में भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन तीन विशाल प्रतिमाएं तथा अनेक छोटी-छोटी तीर्थंकर प्रतिमाएं हैं। मंदिर की आंतरिक भित्ति पर सुन्दर चित्रकारी है।

५. बीना-बारहा के जैन मंदिर -

यह सागर जिले की देवरी तहसील मुख्यालय से लगभग ७. कि.मी. दूर स्थित जैन अतिशय क्षेत्र है। यहां एक ही परिसर में कई मंदिर स्थित हैं - मामा-भनेज मंदिर अर्थात् महावीर मंदिर - इसमें मुख्य प्रतिमा भगवान महावीर की है। यह संवत् १८३२ की है। यह मूलतः १३-१४वीं शती का शैव मंदिर था जिसे १८वीं में जैन मंदिर में परिवर्तित हो गया। इसके मुख्य प्रवेश द्वार के कसरदल पर चतुर्भुजी शिव की नृत्य-प्रतिमा है। मंडप द्वार पर ब्रह्मा, विष्णु, नवग्रह, सप्तमातृकाएं तथा शार्दूल की प्रतिमाएं हैं।

शांतिनाथ मंदिर - इस मंदिर में भगवान शांतिनाथ की हरिण लांछन युक्त खड्गासन प्रतिमा है।

गंधकुटी मंदिर - इस मंदिर के गर्भगृह में कोई प्रतिमा नहीं है किन्तु परिक्रमा-पथ में दीवारों पर प्राचीन मूर्तियां लगी हुई हैं। इस प्रतिमाओं में एक विशेष प्रतिमा पार्श्वनाथ की माता वामादेवी की है जिसमें उन्हें शैय्या पर लेटी हुई दिखाया गया है। दिक्कुमारियां माता की सेवा मे व्यस्त हैं।

६. गढ़ाकोटा के जैन मंदिर -

सागर मुख्यालय से लगभग ३५ कि.मी. दूर सागर-दमोह मार्ग पर गढ़ाकोटा स्थित है। यहाँ १८वीं शती के दो प्राचीन जैन मंदिर हैं - पटैरिया का पार्श्वनाथ मंदिर - यह १८वीं शती उत्तरार्द्ध का भगवान पार्श्वनाथ का मंदिर है। इस मंदिर में भगवान पार्श्वनाथ की तीन प्रतिमाएं पद्मासन मुद्रा में प्रतिष्ठित हैं। इन प्रतिमाओं के आगे भगवान महावीर की ३फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति है। मंदिर के परिसर में एक स्तम्भ बना हुआ है। जिसके बारे में कहा जाता है कि स्तम्भ की श्रद्धापूर्वक तीन बार परिक्रमा करने से रोगों से मुक्ति मिलती है।

छतरपुरिया जैन मंदिर- ये परस्पर जुड़े दो मंदिर हैं, जिसमें पहला भगवान महावीर का तथा दूसरा भगवान पार्श्वनाथ का है। १८वीं सदी के इस मंदिर में जैन कथानकों के नहीं वरन् राम और कृष्ण कथाके चित्र चित्रित हैं।

७. खिमलासा के जैन मन्दिर -

सागर नगर से ४१ मील दूर इटावा-मालथौन मार्ग पर इटावा से १२ कि.मी. पर स्थित है खिमलासा। यहाँ दो दिगम्बर जैन मंदिर हैं। एक पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर कहलाता है औरदूसरा वर्द्धमान दिगम्बर जैन मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। मंदिरों की भीतरी दीवारों पर जैन कथानकों के बहुरंगी चित्र चित्रित हैं। ये चित्र १८-१९ वीं शती के हैं। इनके अतिरिक्त एक मंदिर खिमलासा नगर के बाहर भी स्थित है जो कि १५वीं शती का है और पार्श्वनाथ मंदिर के नाम से जाना जाता है। इस मंदिर के गर्भगृह में कोई प्रतिमा नहीं है।

८. सागर नगर के जैन मंदिर -

सागर नगर के तीन प्राचीन मंदिर हैं - चौधरनबाई का जैन मंदिर - यह संवत् १८३१ अर्थात् सन् १७७२ ई. का है। द्वार-लेख में इसे पार्श्वनाथ का जिन मंदिर कहा गया है। मंदिर में भगवान आदिनाथ की पद्मासन मुद्रा में संवत् १११३ की प्राचीन प्रतिमा है। तीन प्रतिमाएं अरहनाथ की हैं जो संवत् १६१६-१७ की हैं, एक प्रतिमा भगवान शांतिनाथ की है जो संवत् १६८७ की है।

काकागंज का जैन मंदिर - द्वार-लेख में मंदिर का निर्माणकाल संवत् १८११ अंकित है। मंदिर के गर्भगृह में श्वेत पाषाण की भगवान आदिनाथ की प्रतिमाहै। जिसके बायीं ओर भगवान पार्श्वनाथ की सप्तफण छत्र वाली प्रतिमा है। मंदिर-प्रांगण में एक चबूतरे पर मुनि के पद्-चिन्ह अंकित हैं। इस मंदिर के प्राचीन स्वरूप का जीर्णोद्धार किया जा चुका है।

बड़ा बाजार दिगम्बर जैन मंदिर - यह नगर के बड़ा बाजार क्षेत्र में स्थित है। द्वार-लेख पर इसकी निर्माण-तिथि संवत् १७३० अर्थात् सन् १६१३ ई. अंकित है। मंदिर के गर्भगृह में भगवान पार्श्वनाथ की संवत् १४४८ अर्थात् सन् १३६१ ई. की निर्मित प्रतिमाएं हैं। ये पद्मासन ध्यानमुद्रा में हैं। इसी मंदिर में भगवान चन्द्रप्रभु की दो अन्य प्रतिमाएं भी हैं। मंदिर के भाग का जीर्णोद्धार किया जा चुका है।

सागर जिले के अन्य स्थानों जैसे - राहतगढ़, सानोधा, मढ़पिपरिया, एरण आदि से भी प्राप्त हुई हैं जो जिला पुरातत्व संग्रहालय, सागर में संग्रहीत हैं।

- एम-१११, शांति विहार, रजाखेड़ी, सागर

ललितपुर जिले के कतिपय स्थान नामों का अनुशीलन

- डॉ. राकेश नारायण द्विवेदी

किसी पदार्थ, व्यक्ति अथवा स्थान की पहचान कराने में प्रयुक्त शब्द नाम या अभिधान कहलाते हैं। यह अर्थहीन सत्ता नहीं, अपितु विचारों और पदार्थ के महत्व का आदान-प्रदान कराने हेतु एक सांस्कृतिक आवश्यकता है। स्थानों का नामकरण मानव सभ्यता के विकास का एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। स्थान नामों के अध्ययन से उस क्षेत्र विशेष की मानव सभ्यता के बहुत से दिलचस्प और उपयोगी पहलुओं को अनावृत्त किया जा सकताहै। ऐसे पहलू कदाचित् किसी अन्यथा प्रकार से ज्ञात न हो पाएं। इसीलिए कहा गयाहै नाम इतिहास की पाद टिप्पणी और पुरातत्व के जीवाश्म हैं। यह व्यक्तियों के वास्तविक संभाषण के महत्वपूर्ण प्रतिनिधि हैं। स्थान नाम बहुधा मनुष्य की स्मरण शक्ति के कारण भाषायी परिवर्तनों से अछूते रहते हैं। जहाँ व्यापक ध्वन्यात्मक परिवर्तनों से होकर परिवर्तनशील रहती है वहां स्थान नाम इस परिवर्तन से असंपृक्त रहते हैं।

भाषा विज्ञान, मानव विज्ञान, भूगोल, नृजाति विज्ञान, संस्कृति, पर्यावरण, पुरातत्व, मिथक शास्त्र, वर्णन शास्त्र, सूक्ति शास्त्र इत्यादि विषयों का अध्ययन स्थान नामों के बिना अपूर्ण रह जाता है। स्थान नामों के अध्ययन से उनकी मूल व्युत्पत्ति, अर्थ और व्याख्या की जा सकती है। सभ्यता के उद्‌गम और मानव आदतों को स्थान नाम रूपायित करते हैं। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में स्थान नाम अंतर्विषयी अध्ययन की मांग करते हैं।

स्थान नामों का अध्ययन भाषा विज्ञान के आधार पर करने का वर्तमान में चलन है। भाषा शास्त्री रूप-रचना, शब्द तथा अर्थ, भाषा व ध्वनि संबंधी विवेचन को अपने अध्ययन के केन्द्र में रखता है। स्थान नामों के अध्ययन को पश्चिम के विद्वानों द्वारा'टोपोनेमी' विधा से अभिहित किया गया है। कुछ लोग भ्रमवश इसे 'ऐटिमोलोजी' सं संबद्ध कर देते हैं। किन्तु एटिमोलोजी में शब्दों की उत्पत्ति का अध्ययन किया जाता है, जबकि टोपोनेमी स्थान नाम विज्ञान है, जिसमें स्थान नामों की व्युत्पत्ति का अध्ययन उसकी विशिष्टताओं के साथ किया जाता है।

जनपद ललितपुर बुन्देलखण्ड का हृदय स्थल ही नहीं अपितु हृदयाकृति का भी है, जो वर्तमान में उत्तर प्रदेश के सुदूर दक्षिण में अवस्थित है। इस जनपद की भौगोलिक स्थिति को उत्तर प्रदेश के मानचित्र में देखा जाए तो यह कुछ वैसा ही दिखता है जैसे भारत के मानचित्र में श्रीलंका। इस जनपद में तीन तहसीलें - ललितपुर, महरौनी और तालबेहट हैं। ललितपुर जिले के स्थान अभिधानों में इतिहास, वनस्पति, वृक्ष, जातियां, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, आदतें, अन्य स्थान अभिधान, संस्कृति, संख्या, फल, सेना, अवस्था, संपन्नता-विपन्नता संबंधी, शरीर संबंधी, व्यवसाय, ग्रह-उपग्रह, वस्तु, वस्त्र, जलाशय, वन, कृषि, पहाड़, समूह, औषधि, संस्कृत, फारसी, अरबी तथा बुन्देली भाषा जैसे अनेक तत्वों का दिग्दर्शन होता है। इन्हें हम निम्नलिखित बिन्दुओं में रख सकते हैं -

पौराणिक - ऐतिहासिक अभिधान

कंधारी कलां (तालबेहट) - गांधारी - कौरवों की मां
कनपुरा (तालबेहट) - कर्ण
सिंदवाहा (महरौनी) - सिंधिया की छावनी
बानपुर (महरौनी) - बाणासुर
कोरवास (महरौनी) -कौरव
पड़वां (महरौनी) - पाण्डव
राधापुर (तालबेहट) - राधा

वनस्पति बोधक अभिधान

कपासी (ललितपुर) - कपास
ककड़ारी (महरौनी+ तालबेहट) - ककड़ी
कुसमाड़ (महरौनी) - कुम्हड़ा
कुम्हैड़ी (महरौनी) - कुम्हड़ा
मिर्चवारा (महरौनी + ललितपुर) - मिर्च
खैरपुरा (महरौनी) - खदिर
खैराई (महरौनी) - खदिर
खैरी (महरौनी) - खदिर
करौंदा (महरौनी) - करौंदा

वृक्ष बोधक अभिधान

कैथोरा (ललितपुर) - कपित्थ
अमऊखेड़ा (ललितपुर) - आम
इमलिया (महरौनी) - इमली
अनौरा (ललितपुर) - अनार
खजुरिया (ललितपुर) - खजूर
अमौरा (महरौनी) - आम
बरखेरा (ललितपुर) - बरगद
चिरौला (महरौनी) - चिरौल
महुआखेड़ा (महरौनी) - महुआ
नीम गांव (महरौनी) - नीम
सेमरा भागनगर (महरौनी) - सेमल
जामुनधाना (ललितपुर) - जामुन
बांसपुर (ललितपुर) - बांस
बिरारी (ललितपुर) - बेर
ऊमरी (महरौनी) - गूलर

पशु संबंधी अभिधान

भैसर्रा (महरौनी) - भैंस
बंदरगुढ़ा (ललिपुर) - बंदर
रीछपुरा (ललिपुर) - रीछ
गदयाना (तालबेहट) - गधा
सेरवास कलां (तालबेहट) - शेर
बघौरा (तालबेहट) - बाघ
बछरई (महरौनी) - बछड़ा

पक्षी संबंधी अभिधान -

कोकटा (ललितपुर) - कोयल
चकोरा (महरौनी) - चकोर
सुकाड़ी (महरौनी) - तोता
गिदवाहा (महरौनी) - गिद्ध
हंसगुवां (तालबेहट) - हंस

जीव-जंतु संबंधी अभिधान -

धमना (तालबेहट) - सर्प विशेष
मछरका (महरौनी) - मच्छर
मकरीपुर (महरौनी) - मकड़ी

मगरपुर (महरौनी) - मगरमच्छ
मिदरवाहा (महरौनी) - मेंढक
नगवांस (तालबेहट) - नाग
गेवरा गुंदेरा (तालबेहट) - विषखोपरा
भंवरकली (तालबेहट) - भ्रमर

जाति संबंधी अभिधान

चमरउवा (ललितपुर) - चमार
बमनौरा (ललितपुरा) - ब्राह्मण
सोंरई (महरौनी) - सहरिया
सुकलगुवां (महरौनी) - शुक्ल ब्राह्मण
बनयाना (महरौनी) - वैश्य
कुमरौला (ललितपुर) - कुम्हार
धोवनखेरी (ललितपुर) - धोबी
कुर्रट (महरौनी) - कोरी
सिंगरवारा (महरौनी) - सेंगर क्षत्रिय

औषधि संबंधी अभिधान -

गुगरवारा (महरौनी) - गुग्गल
बूटी (महरौनी) - औषधीय पादप

खेती संबंधी अभिधान -

बरेजा (महरौनी) - पान की खेती
ऐरावनी (ललितपुर) - सिंचाई

उपग्रह संबंधी अभिधान -

इस श्रेणी में चन्द्रमा पर सर्वाधिक अभिधान यहां पाए जाते हैं।

जलाशय एवं नदी संबंधी अभिधान -

तालगांव (ललितपुर) - तालाब
झरर (तालबेहट) - झरना
झिलगुवां (ललितपुर) - झील
धौरीसागर (महरौनी) - समुद्र
गंगासागर (महरौनी) - गंगा नदी

वन संबंधी अभिधान

बनगुवां (महरौनी+तालबेहट) - वन
बदौरा डॉंग (तालबेहट) - जंगल
झरावटा (महरौनी) - झुरमुट

संख्यावाचक अभिधान -

चौमहू (महरौनी) - चार
सतवांसा (महरौनी) - सात, संतवास भी हो सकता है।
दशरारा (तालबेहट) - दस
इकलगुवां (ललितपुर) - एकल
तेरा (ललितपुर) - तेरह
पंचमपुरा (ललितपुर) - पांच

सांस्कृतिक अभिधान -

भारौनी (महरौनी) - भरशिव
जखौरा (तालबेहट) - यक्ष
नटराई (तालबेहट) - राई नृत्य
नगवांस (तालबेहट) - नागवंश
कठवर (तालबेहट) - भारशिव
जरावली (महरौनी) - भारशिव

अरबी - फारसी मिश्रित अभिधान -

बदनपुर (तालबेहट) - फारसी
शाहपुर (तालबेहट) - फारसी
जमालपुर (तालबेहट) - अरबी
जहाजपुर (ललितपुर) - अरबी

संपन्नता बोधक अभिधान -

भैरा (महरौनी) - बर्बाद होना
प्यासा (महरौनी) - पिपासु
पीड़ार (महरौनी) - पीड़ा
गुन्दरापुर (महरौनी) - मिट्टी के बने कच्चे घर
खाकरौन (महरौनी) - खाक होना
छपरा (महरौनी) - घास-पूस की छत
अंधियारी (ललितपुर) - अंधेरा

पेशा संबंधी अभिधान -

रनगांव (महरौनी) - रण्डियों का गांव

पहाड़ संबंधी अभिधान -

पठरा (ललितपुर) - पठार
टौरिया (महरौनी) - छोटी पहाड़ी
ककरेला (तालबेहट) - कंकड़
गिरार (महरौनी) - गिरि
कारी पहाड़ी (तालबेहट) - काला पहाड़
ककरुवा (महरौनी) - कंकड़

फल संबंधी अभिधान -

गुलेंदा (तालबेहट) - महुआ का फल
निवारी (महरौनी) - नीम का फल

देव संबंधी अभिधान -

बम्हौरी (तीनों तहसीलों में) - शंकर और विष्णु
थनवारा (ललितपुर) - स्थानेश्वर
देवगढ़ (ललितपुर) - देवताओं का निवास

अन्न संबंधी अभिधान -

बिजरौठा (तालबेहट) - बिजरा
बिजौरी (ललितपुर) - बिजरा

वैदिक अभिधान -

भैलोनी (तालबेहट) - भलानस् ऋग्वेद की उन पांच जातियों में से एक है जो दाशराज्ञ (दस राजाओं) के युद्ध में सुदास् के साथ शत्रु पक्ष में थे। भलानस् को हॉपकिन्स ने भलान माना है।

दशारारा (तालबेहट) - दस राजा (दाशराज्ञ)

गौंड़ संबंधी अभिधान -

बेहटा (तालबेहट), बहरावट (ललितपुर), तालबेहट (तालबेहट), बेटना (ललितपुर)

पाण्डव संबंधी अभिधान -

पाण्डुबन (महरौनी), पड़वां (महरौनी)

पूजा पाठ तथा त्यौहार संबंधी अभिधान -

गनगौरा (ललितपुर) - गनगौर
अजान (महरौनी) - समाज के लिए की जाने वाली घोषणा

ललितपुर जनपद के इन अभिधानों को देखते हुए कहा जा सकता है कि यहां वैदिक काल से अभिधानों का उद्गम प्रारंभ हो जाता है। महाभारत काल में पाण्डवों ने यहां अपना अज्ञातवास व्यतीत किया था। अतः उसका निदर्शन करते हुए अभिधान भी यहां अस्तित्व में है। गौड़ राजाओं का भी एक समय यहां आधिपत्य रहा, जिनके रखे कई स्थान अभिधान अपनी कीर्तिगाथा का बखान कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि गौंड़ राजा सुम्मेरसिंह की पत्नी के नाम पर ललितपुर का नाम रखा गया है। चन्देल युग में अनेक भव्य और विशाल जलाशयों का निर्माण हुआ था, जलाशय संबंधी तथा अन्य अभिधान इस युग क्र निदर्शन करते हैं। बुन्देला राजाओं तथा उसके बाद मुगल कालीन नामों की छाप भी यहां के स्थान अभिधानों में दिखाई पड़ती है।

ललितपुर जनपद में पाई जाने वाली वनस्पतियां, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, और जातियों के आधार पर भी यहां के स्थान नामों का एक बड़ा समूह उपस्थित है। यहां के लोगों का आर्थिक स्तर उद्घाटित करते सम्पन्नता एवं विपन्नता बोधक अभिधानों की एक झांकी उपर्युक्त विवेचन में दृष्टव्य है।

- नया पटेल नगर, कोंच रोड, उरई (जालौन)

बल्देवगढ़ क्षेत्र में त्रिपुरोपासना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

- आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि अतीत में विन्ध्य का क्षेत्र शैवसाधना की स्थली रहा है। इस क्षेत्र के अनेक प्राचीन शिव मन्दिरों की धरोहर ऊँचे स्वर में घोषित करती है कि विन्ध्य क्षेत्र अतीत के अन्धकार युग से लेकर मुगलकाल तक साधना के क्षेत्र में शैव ही कहा जाता रहा है। मैंने अपने पिछले लेख में (बल्देवगढ़ की त्रिपुरा देवी में) जब मूर्ति के अध्ययन से पाया कि बल्देवगढ़ क्षेत्र का सम्बन्ध त्रिपुरा की उपासना से रहा है - त्रिपुरा की उपासना जो अति प्राचीन शाक्त अद्वैत परम्परा श्री विद्या का ही एक अंग है - उससे जुड़ाव रहा है इस क्षेत्र का।'' उसी समय मेरे मन में यह बात आई कि विन्ध्य के इस अंचल में, घोर अन्तरतम प्रदेश में 'श्रीविद्या' की उपासना की बात मात्र एक अनुमान है, या तथ्यों से प्रमाणित एक ऐतिहासिक सत्य है? और यही बात अन्य जिज्ञासु पाठकों के मन में आ सकती है इसलिए इसके समाधान हेतु अन्य प्रमाण खोजना ही चाहिए।

इस तलाश के प्रयास में मुझे 'सिंह सिद्धान्तसिन्धु' जैसे श्रेष्ठ विशाल और महत्वपूर्ण तान्त्रिक निबन्ध की रचना का उद्देश्य और उसकी विषय वस्तु की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हुई। यह महान कृति देवीसिंह (देव सिंह) के राजत्व काल में लिखी गई है। यह सर्वविदित है देवीसिंह कुछ दिनों चंदेरी के शासक रहे थे और उनके राज्य में ही तब बल्देवगढ़ का वर्तमान भाग आता था। देवीसिंह के राज्य में रची गई इस अप्रतिम रचना का अति विशिष्ट महत्व है। इस महानिबन्ध की मूल दृष्टि 'श्री-सम्प्रदाय' पर ही केन्द्रित है, हालांकि यह वैष्णवों, शैवों और शाक्तों तीनों सम्प्रदायों से जुड़े धार्मिक कृत्यों का निरूपण बड़े विस्तार से और सूक्ष्मता से करता है। इसी ग्रंथ के (सिंह सिद्धान्त सिन्धु के) प्रथम अध्याय- पूजाकाण्ड- को अनेक विद्वानों ने भ्रमवश (मातंगी पद्धति) के नाम से 'रामभट्ट' जो शिवानन्द जगन्निवास गोस्वामी के शिष्य थे, उन रामभट्ट जी की कृति मान मान रखा है। कारण केवल यह लगता है कि 'रामभट्ट' मातंगी के प्रमुख साधक थे, उनकी 'मातंगिनी पद्धति' और 'मातंगी कल्प' नाम की रचनाएँ साधकों के बीच में प्रिय थी और वे स्वयं शिवानन्द जी के साक्षात् शिष्य परम्परा में प्रमुख थे। 'शिवानन्द' जो भी एक रचना मांत उपासना से जुड़ी मिलती है जिसका नाम है 'मातंगी मंत्र पद्धति'। 'शिवानन्द' की एक अन्य रचना जो बहुत प्रसिद्ध है, उसकी तान्त्रिक साहित्य में बड़ी महत्ता है, वह है 'मातृका चक्रविवेक व्याख्या।' यह श्री 'स्वतन्त्रानन्द' कृत 'मातृका चक्र विवेक' की व्याख्या है। विद्वानों का मानना है कि 'मातृकाचक्र विवेक' ग्रन्थ पर यदि शिवानन्द जी की यह व्याख्या न की होती तो इस ग्रन्थ के गूढ़, गंभीर अति रहस्यपूर्ण श्रेष्ठ तत्व साधकों को सहज सुलभ नहीं हो सकते थे।

'शिवानन्द' की यह रचना 'मातृका चक्र विवेक व्याख्या' प्रथम जो कश्मीर में प्रकाशित हुई थी, उसको पीताम्बरा पीठ दतिया के परमपूज्य गुरुजी (स्वामी जी) की प्रेरणा से हिन्दी अनुवाद के साथ श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद् दतिया ने १६७७ ई. में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशकीय कथन में पंडित ब्रजनन्दन शास्त्री ने मूलग्रन्थ के लेखक श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ और व्याख्याकार श्री शिवानन्द के विषय में मात्र इतना ही कहा है कि वे ''दोनों अज्ञात विभूतियाँ हैं।'' यह काल की महामहिमा ही है कि अभी चार सौ वर्ष भी बीते नहीं है जब इन्हीं 'शिवानन्द जी' ने बल्देवगढ़ के शासक की छत्रछाया में 'सैंतीस हजार श्लोकों का विशाल तन्त्र-निबन्ध लिखा है और अब उन्हीं के प्रदेश के विद्वान उन्हें अज्ञात विभूति स्वीकार कर स्मरण करते हैं। 'शिवानन्द अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होंने 'नित्याषोडशिकार्णव' नामक श्री विद्या की साधना के एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ का भी भाष्य लिखा है। इसी प्रकार इनके शिष्य-पुत्र श्री रामभट्ट भी त्रिपुरापासना के आचार्यों में मान जाते हैं। मुख्य बात यह है कि श्री शिवानन्द जी आदि शंकराचार्य की शिष्य परम्परा से सीधे जुड़े हुये साधक हैं।

आदि शंकराचार्य की परम्परा को फैलाने वाले प्रमुख १४ शिष्य साक्षात् परम्परा में स्वीकृत हैं। ये दृढ़व्रती, निग्रह और अनुग्रह में समर्थ दिव्यात्मा थे। इनमें ५ परिव्राजक (सन्यासी) थे शेष ६ गृहस्थ शिष्य थे। गृहस्थ शिष्यों के नाम थे सुन्दर, विष्णुशर्मा, लक्ष्मण, मल्लिकार्जुन, भिविक्रम, श्रीधर, कपर्दी, केशव और 'दामोदर नाम के आचार्य।' ये आचार्यगण तब पूरे देश में श्री विद्या को शंकर के विचारों के परिप्रेक्ष्य में प्रचारित करने में लगे हुए थे। इनके क्षेत्र नियत थे। विन्ध्यक्षेत्र में कार्यरत थे, मल्लिकार्जुन और उनके शिष्य गण श्री विद्या का प्रचार कर रहे थे। इसी प्रकार भिविक्रम और उनके शिष्य श्री जगन्नाथपुरी के प्रदेश में, श्रीधर के शिष्य गौड़, मैथिल एवं वंग देश में तथा कपर्दी के शिष्य काशी एवं अयोध्या के क्षेत्रों में कार्यरत थे। इन्होंने ऊर्ध्वान्माय के अन्तर्गत ग्रन्थों में व्याख्यायित श्रीविद्या की हादि और कादि गुह्य सारणियों को लोक में प्रसारित एवं प्रचारित किया था। (श्री विद्यार्णव तंत्र १/६०-१००)

इस प्रकार आदि शंकर की प्रथम पीढ़ी के गृहस्थ शिष्य आचार्य मल्लिकार्जुन विन्ध्य के इस सुदूर प्रदेश में आये और फिर यहाँ के सुयोग्य शिष्यों को परीक्षण के उपरान्त उन्हें श्री विद्या के गहन रहस्यों से अवगत कराया था। इस प्रकार शांकर मत के अन्तर्गत इस वैदिक तंत्र विद्या की (श्री विद्या की) विन्ध्य क्षेत्र में प्रतिष्ठा हुई थी। यह वह प्राचीन परम्परा थी जो कपिल, अत्रि, वशिष्ठ, सनक और सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, भृगु, वामदेव, नारद, गौतम, शुनक, शक्ति, मार्कण्डेय, कौशिक, पाराशर, अंगिरा, कण्व, जावाल्नि, भरद्वाज और वेदव्यास आदि ऋषियों से चली आ रही थी।

श्री विद्या की यही परम्परा आज श्री आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित चारों शांकर मठों में विधिवत् उपासित हो रही है।

यही श्री-विद्या है जो 'त्रैपुर-सिद्धान्त' पर आधारित है और इसमें 'त्रिपुरा' की उपासना को केन्द्रस्थ स्थान प्राप्त है। (इसी विद्या की अधिष्ठात्री की मूर्ति बल्देव गढ़ में है, और इसी विद्या से सम्बन्धित ग्रंथ सिंह सिद्धान्त सिन्धु है) इस श्रीविद्या की शांकर मतानुकूल सरणि की स्थापना, आदि शंकर के साक्षात शिष्य 'मल्लिकार्जुन' आचार्य ने और उनके शिष्यों एवं प्रशिष्यों ने विन्ध्य क्षेत्र में बहुत पहले आदि शंकर के कैलाशवासी होने के २०-२५ वर्ष बाद की थी।

इस बात की पुष्टि करते हैं, इसी परम्परा के एक महान् साधक और विद्वान यति 'विद्यारण्यमुनि।' आदि शंकर जो ६ गृहस्थ शिष्य थे उनमें से एक थे 'विष्णुशर्मा'। विष्णुशर्मा के शिष्य हुए हैं प्रगल्भाचार्य। इन प्रगल्भाचार्य के शिष्य थे 'मुनि विद्यारण्य'। विद्यारण्य मुनि अपने समय के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों में स्वीकृत थे। जिस समय दक्षिण में मुनि विद्यारण्य अपने ज्ञान से पूरे दक्षिणात्य प्रदेश को आलोकित कर रहे थे, ठीक उसी काल में कश्मीर प्रदेश में आचार्य 'अभिनव गुप्त' उत्तर भारतीय प्रदेश को अपनी दिव्य प्रतिभा द्वारा गुह्यज्ञान को जिज्ञासु शिष्यों को प्रदान कर रहे थे। इन दोनों विद्वानों का आपस में मिलन भी हुआ था इस बात का उल्लेख स्वयं श्री विद्यारण्य मुनि ने अपने महान ग्रन्थ 'श्री विद्यारावि तंत्र' में गोस्वामी शिवानन्द भट्ट का स्थान है, और यही वे शिवानन्द भट्ट (गोस्वामी) हैं जिन्होंने श्री देवीसिंह के राज्यकाल में बल्देवगढ़ के अंचल में, त्रिपुरामत के सिद्धान्तों पर आधारित 'सिंह सिद्धान्त सिन्धु' नाम का एक महातंत्र निबन्ध लिखा है। इनके (शिवानन्द गोस्वामी के) पुत्र रामभट्ट ने इसी क्षेत्र में महाविद्या मातंगी की सपर्या सम्बन्धी एक ग्रन्थ 'मातंगी पद्धति' की रचना की थी। मातंगी महाविद्या 'श्रीविद्या' के 'कल्पसूत्र' जो श्रीविद्या का एक प्रामाणिक दस्तावेज है, उसमें भगवान परशुराम के हवाले से कहा है कि - "महती विद्या सिंहासनेश्वरी साम्राज्ञी तस्या प्रधान सचिवपदं श्यामा तत्क्रम विमृष्टिः सदाकार्या... प्रधान द्वारा राज प्रसाधनं हि न्याय्यम्।। (परशुरामकल्पसूत्रम् ६/१-२)

अर्थात् - सर्वेश्वरी महादेवी श्री महात्रिपुर सुन्दरी साम्राज्ञी हैं। उनकी प्रधान सचिव श्यामा (मातंगी) हैं। अतः साधना के क्रम में जैसे राजा के दर्शन के लिए प्रथम मंत्री को प्रसन्न करते हैं वैसे ही साम्राज्ञी ललिता श्री त्रिपुर सुन्दरी की प्रसन्नता प्राप्त हेतु प्रथम श्यामा (मातंगी) की उपासना करनी चाहिए।" (परशुराम कल्प. ६/१-२)

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे इस विन्ध्य-क्षेत्र में 'श्री-विद्या' का प्रसार-प्रचार आदि शंकर के समय के २०-२५ वर्ष बाद उनके शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा हो चुका था। यही बात ग्यारहवीं सदी में मौजूद महान साधक विद्यारण्य अपने 'श्री विद्यार्णव तंत्र' में स्वीकारते हैं। निकट के मालवा क्षेत्र में तो इससे भी पूर्व श्री शंकराचार्य के गुरु श्री गोविन्दपादाचार्य तथा गोविन्दपादाचार्य के भी गुरु 'श्री गौड़पादाचार्य' ओंकारेश्वर क्षेत्र के आसपास अपने आश्रम और अन्तेवासी शिष्यों के द्वारा 'श्री विद्या' का प्रचार-प्रसार करते रहे हैं। ये दोनों आचार्य श्री विद्या की महती परम्परा में प्रमुख स्थान प्राप्त आचार्य हैं। अतः श्री विद्या की शांकर परम्परा को विकसित करने में विद्यारण्य की शिष्य परम्परा में दीक्षित श्री शिवानन्द गोस्वामी को 'सिंहसिद्धान्तसिन्धु' जैसे व्यवस्थित विशाल ग्रन्थ की रचना के लिए उचित समृद्ध वातावरण मिला था। इस विशालग्रन्थ और इसके विविध आयामों को देखते हुए यह जरूर एक आश्चर्य की बात है कि मात्र चार सौ वर्षों की छोटी काल की अवधि में, इस ग्रन्थ रत्न के प्रतियाँ दुर्लभ यहाँ क्यों हो गई है? जबकि दक्षिण में (चेन्नई में) एक पूर्ण और अनेक अपूर्ण प्रतियाँ आज भी सुलभ हैं। क्या कारण हैं वे जिनसे यह गुह्य-ज्ञान का पिटारा यहाँ से गायब हो गया है?

मेरा बुन्देलखण्ड के विद्वानों से, बल्देवगढ़ और उसके निकटवर्ती क्षेत्रवासियों से विनम्र निवेदन है कि वे 'सिंह सिद्धान्त सिन्धु' की प्रतियों को राजपरिवारों, राजघरानों से सम्बन्धित, पण्डित-पुरोहितों और प्रतिष्ठित-व्यक्तियों एवं पुराने मन्दिरों के पुस्तक संग्रहों में तलाशें। वे इतिहास में रुचि लेने वाले विद्वानों को इस खोज में प्रेरित करें। मैं सूचनार्थ निवेदित कर रहा हूँ कि अभी तक मेरी जानकारी में उत्तर भारत में केवल एक ही पूर्णप्रति वाराणसैय संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में उपलब्ध है, संग्रहीत अन्य प्रतियां आधी-अधूरी ही है। अतः यह खोज अति महत्वपूर्ण है साथ ही इस बात की पूरी संभावना है कि इस खोज में 'शिवानन्द जी' की अभी तक अप्राप्त दूसरी रचनाएँ भी हाथ लग सकती हैं, क्योंकि शिवानन्द जी असाधारण विभूति थे। उनकी अनेक रचनाएँ प्राप्त हैं। 'मातृका चक्र विवेक' की व्याख्या उनकी लिखी हुई है उसकी पाण्डुलिपि भी इस क्षेत्र में मिल सकती है। अभी कुछ ही महीने पहले मुझे अपने अग्रज श्री कृष्णलाल शास्त्री ग्राम विरगुवाँ (जालौन) में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह में मात्र १३ पृष्ठों की एक पुस्तिका मिली थी। इसकी पुष्पिका में लिखा है "इति सिंहसिद्धान्तसिन्धौ मृत्युंजय विधानम्। शुभं भूयात।।" स्पष्ट है कि यह 'सिंहसिद्धान्तसिंधु' से लिया गया मृत्युंजय-विधान है। लिपि की लिखावट और पन्नों के देखने से वे पन्ने कम से कम १००-१२५ वर्ष पुराने लगते हैं। (साथ में फोटो प्रतिलिपि संलग्न हैं)। अतः पूरी आशा है अन्य ग्रन्थों के मिलने की।

इस विश्वास से मैं यह निवेदन कर रहा हूँ कि यह ग्रन्थ अब प्रकाश में आयेगा, भले ही उसका श्रेय किसी को मिले। केवल 'सिंहसिद्धान्त सिन्धु' ही नहीं यदि शिवानन्द द्वारा लिखी हुई 'मातृकाचक्र विवेक की व्याख्या की पुरानी पूर्ण पाण्डुलिपि (सौ वर्ष से प्राचीन) यदि प्राप्त होती है, तो भी अनेक रहस्यों का रास्ता खुलने की सम्भावना जन्म लेती है। 'मातृका चक्र विवेक ग्रन्थ' सिद्धों का परमप्रिय ग्रन्थ रहा है। 'समय सिद्धान्त में प्रमाता और मंत्रानयव के एकीकरण का सिद्धान्त का आविष्कार श्री शिवानन्द जी ने ही किया है। यह सिद्धान्त अन्यत्र दुर्लभ है। स्वयं शिवानन्द जी ने कहा है कि 'यह विषय स्तुति के योग्य हैं। यह व्याख्या और १२१ सूत्र अवश्य मिलेंगे इससे बल्देवगढ़ और इस परिक्षेत्र की कीर्ति और गौरव में और भी वृद्धि होगी।

- नूतन बिहार कॉलोनी, ढोंगा, टीकमगढ़ (म.प्र.)

गांधी पुस्तकालय दतिया : परम्परा और इतिहास

- डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला

अनुभव, चिंतन और प्रयोग के फलस्वरूप उपलब्ध निचोड़ ज्ञान को प्राचीन काल से ग्रंथकार रूप में संग्रह करने की परम्परा रही है। इतिहास-काल में लेखक-विद्वान ग्रन्थ या पुस्तक को प्रायः हस्तलिपि में काली-सुन्दर स्याही से कागज पर लिखकर ग्रन्थ का रूप देते थे। इन हस्तलिखित मूल ग्रन्थों को हम पांडुलिपि कहते हैं। मूल पाण्डुलिपियों से अन्य जिज्ञासु विद्वान प्रतिलिपियां तैयार कर अपने अध्ययन-ज्ञान एवं जीवन में उपयोग के लिए काम में लाते थे। आयुर्वेद, मंत्रशास्त्र एवं धार्मिक विषयों की अनेक प्रतिलिपि-पांडुलिपियां आज भी बुन्देलखण्ड की रियासतों में आसानी से देखने को मिल जाती है। समकालीन ऐसी अनेक पांडुलिपियों को तत्समय के राजा-महाराजा, बादशाह अपने निजी राजकीय संग्रह में ज्ञानरंजन के लिये रखते थे। मध्यकाल में चित्रयुक्त ग्रन्थ सुन्दर लिखावट में तैयार करने की अनूठी परम्परा थी। मुगल बादशाहों तथा बुन्देलखण्ड की रियासत के राजाओं ने जो बाकायदा चित्रयुक्त ग्रन्थ तैयार करने के लिये विभाग खोल रखे थे। पर ये सब राजकीय ग्रन्थसंग्रह निजी स्तर के थे। आम जनता के लिये नहीं थे। सार्वजनिक ग्रन्थागारों या पुस्तकालयों की स्थापना बुन्देलखण्ड में १६४८ से प्रारंभ मानी जाती है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के शब्दों में ''जिन महापुरुषों ने पहले-पहल अमृतलोक का आविष्कार करके किसी दिन अपने चारों ओर मनुष्यों को बुलाकर कहा था, तुम लोग अमृत के पुत्र हो, तुम्हारा वास स्थान दिव्यधाम है, उन्हीं महापुरुषों का आज स्वर, हजारों वर्ष बीतने पर भी, हजारों भाषाओं द्वारा प्रतिध्वनित हो रहा है।[१]

मई सन् १६४८ में गांधी पुस्तकालय की स्थापना दतिया में रियासत काल के समाप्त हो जाने के बाद हुई थी। दतिया के साहित्यप्रेमी, सार्वजनिक रूप से जनता का हित चिन्तन करने वालों ने, लोकतन्त्र की नई वायु की खुशबू का अनुभव करने वालों ने, दतिया के इस गांधी पुस्तकालय को प्रारंभ किया था। गांधी पुस्तकालय की स्थापना का मूल विचार दतिया के वयोवृद्ध चिन्तक और एडवोकेट रामरतन तिवारी का था। श्री तिवारी जी लखनऊ से सन् १६४६ में एम.ए., एल.एल.बी., कर दतिया में १६४७ में वकालत करने लगे थे। गांधी पुस्तकालय की स्थापना में प्रेमनारायण सिलारपुरिया, हरीमोहन लाल श्रीवास्तव, वासुदेव गोस्वामी, भइया लाल व्यास, चतुर्भुज द्विवेदी 'चतुरेश', आदि का भी योगदान था। इस पुस्तकालय का उद्घाटन मई १६४८ में विन्ध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री कामता प्रसाद सक्सेना ने किया था। उद्घाटन के समय कामता प्रसाद सक्सेना के साथ मन्नूलाल द्विवेदी संसद सदस्य भी थे। मन्नूलाल द्विवदी, कामता प्रसाद सक्सेना के गुरु रहे थे, अतः उद्घाटन के समय उनको प्रमुखता प्रदान की गई थी। विंध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री कामता प्रसाद सक्सेना ने इस अवसर पर छः हजार रुपये गांधी पुस्तकालय को दिये। इस समय रामरतन तिवारी इस पुस्तकालय के अध्यक्ष थे और प्रेमनारायण सिलारपुरिया इसके महामंत्री थे। बब्बा नाम से पुकारे जाने वाले किशोरी शरण श्रीवास्तव इस पुस्तकालय के पहले ग्रन्थपाल थे। रामरतन तिवारी ने २५० रुपये की अपने निजी संग्रह की पुस्तकें इस पुस्तकालय को दान में दी थी। यह पुस्तकालय टाउनहाल की ऊपर की मंजिल में सायंकाल संचालित होता था। दिन में इसी मंजिल में नगरपालिका का कार्यालय संचालित होता था। इस पुस्तकालय की देखरेख का भार सिलारपुरिया जी उठाते थे, जब तक वे दतिया रहे इस पुस्तकालय की देखरेख व्यवस्थित रूप से करते रहे। वे रियासतकाल के उच्च श्रेणी के कर्मठ काम करने वाले और शिखर मापदण्ड के ईमानदार है। उस समय गांधी पुस्तकालय के ग्रन्थपाल की वेतन पन्द्रह रुपये माहवार थी। और ग्रन्थपाल के हिसाब के लिये कैशबुक रखी जाती थी।

इस सार्वजनिक पुस्तकालय या ग्रन्थालय के पूर्व दतिया में दुर्गसिंह परमार द्वारा स्थापित रणदूल्हा पुस्तकालय भी था। पर यह सार्वजनिक रूप नहीं ले सका था और कुछ ही समय बाद इसका अस्तित्व समाप्त हो गया। प्रेमनारायण सिलारपुरिया के अनुसार ''उस समय दतिया में ऐसा कोई भी स्थान नहीं था, जहाँ बुद्धजीवी बैठकर आपस में ज्ञान चर्चा कर सकें और अध्ययन का लाभ उठा सकें।'' अतः गांधी पुस्तकालय की स्थापना इस ओर पहला कदम कहा जा सकता है। दतिया में राजा का दुर्ग में दुर्लभ पांडुलिपियों और ग्रन्थों का एक निजी संग्रहालय था, जिसे कुतुबखाना अर्थात् पुस्तकों का घर नाम से जाना जाता है। इसमें हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी की कुल सात हजार, आठ सौ बयालीस पुस्तकें थीं। जिनमें दो हजार, एक पांडुलिपियां थीं। यह मध्यकाल से चला आ रहा दतिया राज्य का अनुपम और अनूठा पुस्तकों का संग्रह था। जो सार्वजनिक होने की क्रिया में शासन की अनदेखी और दतिया के नेतृत्व की निष्क्रयता की भेंट चढ़ गया।[२]

इस गांधी पुस्तकालय में साहित्यिक चर्चाओं की साप्ताहिक बैठकें हुआ करती थीं। जिनमें प्रमुख रूप से सर्व श्री रामरतन तिवारी, सिलारपुरिया, हितकिशोर पस्तोर, भइयालाल व्यास, माधौसिंह श्रीवास्तव आदि भाग लेते थे। इस संस्था की दूसरी बड़ी उपलब्धि इसमें ''कवि दरबार में चतुरेशजी विदूषक की भूमिका निभाते थे। कवि दरबार के पात्रों के रूप में कुछ प्रमुख पात्रों के नाम हैं, शिवचरण दीक्षित, भगवानदास सरबरिया, गोपाल रावत, रति व्यास आदि। एक बार तत्कालीन दतिया कलेक्टर डब्लू.बी. केलकर ने भी पुरानी कतईया-धोती पहनकर उत्सुकता से भाग लिया था। कवि दरबार में ऐलान किया गया कि दतिया कलेक्टर सी.एम.ओ. को खोजते हुए इन्द्र के दरबार में आये हैं। हरीमोहन लाल, वासुदेव, और श्री व्यास जी ने इस कवि दरबार के मंचन का निर्देशन किया। यह दतिया का रियासतकाल समाप्त होने के बाद का सर्वप्रथम सार्वजनिक सांस्कृतिक मंच था। इस मंच के माध्यम से जनता के युवाओं की खुशी की आत्मिक भावनायें

अनुभूतियों के दर्पण में सामने आ रही हैं कि हम देखो लोकतंत्र की हवा में रियासतकालीन की अनावश्यक जासूसी और सजाओं से मुक्त हो गये हैं। पुस्तकालय के माध्यम से प्रकट साहहित्य दरबारी न होकर मुक्त और आनन्द का साहित्य था।''[३]

जब दतिया में सन् १९५६ में राघवेन्द्र तिवारी जिलाधीश थे, उस समय इन्हीं लोगों ने दतिया नुमाइश या सुरईयन मेला में 'छत्रसाल' नाटक का मंचन किया था। इसके पात्र थे, रामरतन तिवारी, राधेश्याम सक्सेना, हरदास दुबे, भगवानदास श्रीवास्तव, कृष्ण प्रकाश अंगल, श्रीपत माते आदि। वर्तमान में सुरईयन के उस मेला वाले मैदान के चिन्ह एकाध खड़े गेट के रूप में शेष रह गये हैं। दतिया के इस गांधी पुस्तकालय में तीन-चार बार कवि सम्मेलनों का भी आयोजन हुआ। इन कवि सम्मेलनों में बलवीर सिंह रंग, शिशुपाल सिंह, डॉ. आनन्द, नाथूराम माहौर, रामचरण मित्र हयारण, सेवकेन्द्र, आदि बाहरी कवियों ने मंच की शोभा बढ़ाई। दतिया के कवि तो होते ही थे और इस संस्था ने ''प्रयाग महिला विद्यापीठ'' एवं ''हिन्दी साहित्य सम्मेलन'' की परीक्षाओं का आयोजन और अध्ययन का प्रबन्ध किया। कन्हैयालाल जिलाधीश के सहयोग से इस पुस्तकालय का भवन तिगैलिया से भैरव मंदिर की ओर जाने वाली रोड पर बना, जो आज भी इसी नाम से पुकारा जाता है। पर वर्तमान में नगरपालिका की लापरवाही से वह पुस्तकालय मिटकर इसी नाम का मुहल्ला हो गया है। पी.सी. गुप्ता नगरपालिका प्रशासक के समय में व्यवस्था संचालन हेतु नगरपालिका ने इसे ले लिया था। उसी समय से इस पुस्तकालय को ग्रहण लगता चला गया और अनेकों विधान सभा प्रश्नों की बौछार झेलता हुआ आज पुस्तकालय से मुहल्ला बन गया है। दतिया के रियासत काल के तत्काल बाद के सांस्कृतिक मंच की यह अवसान की गाथा और स्वतन्त्रता के पांच दशक का यह इतिहास है।[४]

मुगल बादशाहों के काल में भी पुस्तकालय हुआ करते थे। पर उन्हें बादशाह का स्वयं का निजी पुस्तकालय ही कहेंगे, वे आम जनता की पहुँच से असंभव की दूरी पर थे। मुगल बादशाह हुमायूं की मृत्यु पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर हुई थी। समकालीन लेखक अब्दुल कादिरबदायूनी ने अपने ग्रन्थ मुन्तखबुत्तवारिख में लिखा है - ''रबी-उल अब्बल ९६३ हिजरी (२०, जनवरी, १५५६) को बादशाह अपने किताब खाने के कोठे पर से, जिसे उन्होंने देहली के दीनपनाह के किले में बनवाया था, उतर रहे थे। उतरते समय अजान देने वाले ने अजान देना प्रारंभ कर दिया। वे अजान के प्रति सम्मान देने के लिए बैठ गये। उठते समय डंडा लड़खड़ा गया और उनका पांव फिसल गया।'' बादशाह के दुर्ग के उस पुस्तकालय के लायब्रेरियन को उस समय ''किताबदार'' कहा जाता था। अकबर बादशाह (१५४२-१६०५) के काल के प्रसिद्ध लेखक अबुल ने ग्रन्थ आईने-अकबरी में लिखा है ''सम्राट ने पुस्तकालय को कई भागों में बांटा है। कुछ पुस्तकें राजप्रसाद के भीतर और कुछ बाहर रखी जाती हैं। इन दोनों में से प्रत्येक को कई भागों में विभक्त किया गया है। सदैव विभिन्न विधा तथा विषयों की पुस्तकों को मूल्य के विचार से उच्चतथा निम्न पद देतेहैं। पद्य, गद्य, हिन्दी, फारसी, यूनानी, कश्मीरी और अरबी की पुस्तकें अलग-अलग रखी जाती हैं। इसी क्रम से वे बादशाह के सामने लायी जाती हैं। अनुभवी लोग प्रतिदिन उनको बादशाह के सामने पढ़ते हैं और प्रत्येक पुस्तक को आरंभ से अन्त तक सुनातेहैं। प्रतिदिन जहां तक पुस्तक पढ़ी जाती है वहां सम्राट अपना चिन्ह लगा देते हैं और पृष्ठां की संख्या के अनुसार पाठक को सोना या चांदी पुरस्कार के रूप में दिया जाता है। प्रसिद्ध पुस्तकों में से कम ऐसी होंगी जो बादशाह के दरबार में न पढ़ी जाती हों। ''इस वर्णन से यह जानकारी सामने आती है कि अकबर बादशाह ने पुस्तकों का वर्गीकरण कर रखा था। पुस्तकालय विज्ञान पढ़ाने वाले आधुनिक अध्यापकों को इस तथ्य की ओर ध्यान देना चाहिये। अकबर ने रामायण सहित अनेक प्रसिद्ध हिन्दू धर्म ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया था। उसके दरबार में उस काल के एशिया महाद्वीप के प्रसिद्ध चित्रकार थे। उस काल में ग्रन्थ लेखन एवं चित्रकला को पृथक नहीं माना जाकर एक माना जाता था। वर्तमान ग्रन्थालयों की भूमिका निर्धारण के संदर्भ में इन प्राचीन स्वरूपों और व्यवस्थाओं को शामिल किया जाना चाहिए। ग्रन्थालय व्यवस्था मानवीय अनुभूतियों का एवं विद्वता का केन्द्र बने जैसा मुगलकाल में था। आज के तंत्र में उलझी व्यवस्था ने ग्रन्थालय को लिपिक वर्ग की हेकड़ी का अनुगामी बना रखा है। शिक्षा विभाग का होते हुए ग्रन्थपाल को शिक्षक या ज्ञान का बांटने वाला नहीं माना जाता है। समस्याओं पर विचार करने वाले अधिकारी ग्रन्थालय व्यवस्था और वर्तमान जरूरतों के विषय में पूर्ण अज्ञानी हैं। अकबर का पुत्र जहांगीर भी चित्रकला का अनन्य प्रेमी था। उसने पिता के साहित्य प्रेम का पूरा आदर किया।

पुस्तकालय मानव के बुद्धिबल के संग्रह केन्द्र हैं। सत्ता को इन्हें पूरा सम्मान और आदर देना चाहिए ताकि ये संस्थाएं देश की सांस्कृतिक धरोहर बनी रहें। इस प्रदेश का शिक्षा विभाग सार्वजनिक पुस्तकालयों के संचालन में पूरी तरह असफल है। इस ओर गंभीरता से ध्यान देने की जरूरत है।

संदर्भ सूची -

१. मधुकर पाक्षिक, वर्ष-१, अंक-२, १६ अक्टूबर १९४० (सम्पादक बनारसीदास चतुर्वेदी, वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़), पृ. ८

२. दतिया दर्शन (सम्पादक हरिमोहनलाल श्रीवास्तव, स्वाधीन प्रेस, झांसी, १९५६), पृ. ३९-४१ एवं श्री रामरतन तिबारी तथा प्रेमनारायण सिलारपुरिया से संकलित जानकारी।

३. श्री रामरतन तिबारी तथा श्री सिलारपुरिया से संकलित जानकारी ये दोनों चिंतक दतिया नगर के वयोवृद्ध एवं कर्मण व्यक्तित्व के मालिक हैं।

४. श्री तिवारी जी एवं सिलारपुरिया जी

५. मुगलकालीन भारत भाग-दो, (सैयद अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़, १९६२), पृ. १७२, आईने-अकबरी (अबुलफजल कृत, अनुवाद हरवंश राय शर्मा, महामना प्रकाशन इलाहाबाद, १९६६), पृ. १०२-१०६, अकबर दा ग्रेट मुगल (व्ही.ए. स्मिथ, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लन्दन, १९२७) पृ. ४२४-४२५, जहांगीरनामा (मुंशी देवीप्रसाद कृत, सम्पादन डॉ. रघुवीर सिंह, पब्लीकेशन स्कीम, जयपुर १९९६),पृ. २२४-२२५, २७५-२७६

- कुंजनपुरा, दतिया, म.प्र.

पारंपरिक लोकगीत

- श्रीमती कुन्ती व्यास 'दादी'

सोहर

मलिया के घर बाग लगे हैं, बेला कली मँहकाय।

सासू जो आवै चरुआ चढ़ावै, माँगै अपनों नेंग
चरुआ के गेहुंआ भीतर सरकाय देओं, सासू ले ना जाँय।।
चार कनूका उनकी झोली में डार देओ, छूँछी घरै ना जाँय।।

मलिया के घर बाग लगे है, बेला कली मँहकाँय।।

जेठानी जो आवैं, लड्डू बंधावै, माँगे अपनों नेंग
लड्डू के कोपरा भीतर सरकाय देओ, जिठनी ले ना जाँय,
लड्डू को झारन उनकी झोली में डार देओ, छूँछी घरै ना जाँय।

मलिया के घर बाग लगे है, बेला कली मँहकाँय।।

देवरानी जो आवैं रसोई तपावै, माँगै अपनो नेंग
हड़ा के चावँर भीतर सरकाय देओ, देवरानी के ना जाँय
चार कनूका उनकी ओली में डार देओ, छूँछी घरै ना जाँय।

मलिया के घर बाग लगे है, बेला कली मँहकाँय।।

ननदी जौ आवै सतिया धरावैं, माँगें अपनों नेंग,
पीतल की अँगूठी उन्हे पैरा देओ, वे ननदी जल्दी घरै चली जाँय

मलिया के घर बाग लगे है, बेला कली मँहकाँय।।

पड़ोसिन आवैं सरिया गवाबै, माँगें अपनों नेंग
लड्डू के थार भीतर सरकाय देओ, वे पड़ोसिन ले ना जाँय
लड्डू के झूरन उनकी गोदी में डार देओ, छूँछी घरै ना जाँय।

मलिया के घर बाग लगे है, बेला कली मँहकाँय।।

सगुन गीत

मोरी अटरिया पै बोल गओ कागा।
भले भाई सगुना आजु भले।
जैसे सगुना आज के जी, ऐसेई नित उठि होय।।...
खरिक दुहावन हम गये,
और बछड़ा नें मारी लात, भले भाई
दूध गई दोहनी गई, कम्मर में आई चोट भले भाई
को जे विसावे दोहनी।
और को जे विसावे गुड़ सोंठ।
ससुर विसावे दुहनी और, राजा विसावें गुड़ सोंठ।।

- नरसिंहगढ़पुरवा, छतरपुर

बरसौ झमाझम आज

- डॉ. शिवाजी चौहान

अरजी पै मरजी हो बहना बदरिया बदरिया सो बरसो झमाझम आज
सजनवां जान न पावें विदेसा खों,
बादरवा मोरो जेठ लगत है लगत है सो कैबे में लागत लाज
सजनवा जान न पावें बिदेसा खों
बरस बरस कौ दिन जौ सलौनों सलौनो सो काँकी तैयारी महाराज
सजनवा जान न पावें बिदेसा खो
सबके घरैया घरन खों लौटे लौटे सो तुमरौ का ऐसौ काज
सजनवा जान न पावे बिदेसा खों
गोरी गजब की गोला गिरी है सो माता नें दई आवाज
सजनवा जान न पावें बिदेसा खाँ
भारत की सीमा पै बैरी दलाकें दलाकें सौ आफत में पर्वतराज
सजनवा जान न पावे बिदेसा खों
स्वामी जा बेरा अबेरा की नइयाँ नइयाँ सौ सजलेव सूरन के साज
सजनवा जान न पावें बिदेसा खों
मैं सोऊ संग तुमारे चलहों चलहों सो अरि पै गिरैहों गाज
सजनवा जान न पावें बिदेसा खों

- गुरसराय, झांसी (उ.प्र.)

भोर दुपहरी संजा

- गोविन्द यदुवंशी

चैत की चाँदनी रात, लागे ज्यों रूप सुंदरी,
भुँसारे से कटिया काटें, बैलन खां देवे सानी,
रहट चलाय खेत में ढारें, गंगा जल सो पानी,
सुआ चरेरू हांकें मेंड़न, चाल चले मरदानी,
बोलें बुन्देली के बोल, मन मानिक से अनमोल,
केसर के रंग रंगी देह, आँखें ज्यों फूल पंखुरी।।

बरा तरें दुपहरी बिलमावें चन्दन जैसी छाव,
हरयाइ गोदी में खिलावें, नन्दन जैसों गाँव,
घामे में उड़ावें धन धान, हवा देवे वरदान,
ढेंर लगी रास लागे जैसें हो सूरन की खुरी,
चैत की चाँदनी रात लागे ज्यों रूप सुन्दरी।।

अथइयां पै सांज होत वांसुरी पुकारे
खेतों से लौट रये हलधर हलधारे,
घर घर में दीप जलें देहरी ओ द्वारे
गोरी धना बैलों की आरती उतारें,
घंटियाँ बजें गाँव लागे जैसें हो द्वारिकापुरी
चैत की चाँदनी रात, लागे ज्यों रूप सुंदरी।।

- राममंदिर के पास, पन्ना

होरी

- संकलनकर्ता - पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

ओरछा राज दरबार की साहित्य के क्षेत्र में समृद्ध परम्परा रही है। जी हाँ बुन्देलखण्ड की देशी रियासतों ने साहित्य, कला, संस्कृति, भक्ति, आध्यात्म आदि अनेक क्षेत्रों में अपनी अनूठी पहचान स्थापित की है। यथा पन्ना राज्य ने स्वामी प्राणनाथ के कारण आध्यात्म और भक्तिभाव में अग्रणी स्थान पाया, चरखारी राज्य ने रंगकर्म के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर अपनी छाप छोड़ी, दतिया राज्य ने भारतीय शास्त्रीय व संगीत के क्षेत्र में बुन्देली घराने को जन्म दिया, जिसे विस्मृत कर दिया गया। तो ओरछा राज्य में हिन्दी के प्रथमाचार्य राजकवि कवीन्द्र केशव मिश्र से लेकर इस राज्य के सनदधारी अन्तिम राजकवि स्व. प्रेम बिहारी जी जिन्हें हिन्दी जगत मुंशी अजमेरी के नाम से भली भाँति जानता है, तक साहित्य के क्षेत्र का इतिहास छिपा है यहाँ इस क्षेत्र में शोध की अपार संभावनाएं हैं। संकलनकर्ता पं. गुणसागर 'सत्यार्थी' द्वारा प्रेषित राजकवि 'अजमेरी' जी द्वारा टीकमगढ़ के होली दरबार में 'विक्रम संवत् १९२९ में पढ़ी गई 'होरी' शीर्षक यह बुन्देली रचना बुन्देली काव्य परम्परा के स्वर्णिम पृष्ठों की एक बानगी है।

ओरी, ओ होरी, ओ होरी!
तें हिरनाकुस की भगिनी है,
प्रहलाद भक्त की ठगिनी है,
तें अपुन बरउवल अगिनी है;
सत, त्रेता, द्वापर, खिला चुकी,
अब कलजुग की खेंची डोरी।
ओरी, ओ होरी, ओ होरी!
तें भौत पुरानी होरी है,
हरसाल जात झकझोरी है,
पै तौऊ कुँवर किसोरी है;
अनवासत हार गए क्रोरन जन,
तउ है कोरी की कोरी।
ओरी, ओ होरी, ओ होरी!
तें रंग-रंगीली, अलबेली,
रीजत-खीजत कर रँगरेली,
गों देख करत है मों ठेली;
तें सुगर-सुशील साउकारी,
तें चतुर चमक चउदस-चोरी।
ओरी, ओ होरी, ओ होरी!
तें छटा छबीली छैलन में,
फरफंदिन पूरी फैलन में,
इठलत-गुठलत मिल गैलन में;
तें मनमुसक्यात, रिसात चखन तें
राजी विरजी-बरजोरी।
ओरी, ओ होरी, ओ होरी!
कोउ मारत तोय फूल-मालन,
लग जात कुम कुमा कोउ घालन,
कोउ मलत गुलाल गोल गालन;
ढोरत अबीर झोरी कोऊ,
फोरत कोउ रँग की गागर तोरी।
ओरी, ओ होरी, ओ होरी!
तें तर होकें अगर-लगर में,
फाग मचा कें सगर-नगर में,
देंत दोंदुवा डगर-वगर में,
तें भींज, भिजैंकें भगत, ठगत मन,
तें चलाँक है, तें झोरी।
ओरी, ओ होरी, ओ होरी!
तें लएँ गगर रँग केसर की,
लुरकत लटकनियाँ बेसर की,
सारी रँग डारत में सरकी;
मिचकें झेलत, खुलकें खेलत,
मेलत गुलाल भर-भर झोरी।
ओरी, ओ होरी, ओ होरी!
मरदन कों रंग-डोलची दै,
तें ठाँड़ी होत दोटना लै,
मन चाहे मारत हो निरमै;
मुख घूँघट में, कुच आधे अँगि पै,
उघरत पेट, ढाँक गोरी।
ओरी, सु-मारवारिन होरी!
माथे पै खूंटा सौ खुरसें,
छाती पै अँगिया तंग कसें,
घूँघट में रोंना-रजत लसें;
तें जाटन के हुरदंगन सें,
सब अंगन रंगन सरबोरी।
ओरी, हरयाने की होरी!
तें सहरातिन में सहरातिन,
तें देहातिन में देहातिन,
तें है सब जातिन की जातिन;
तेरें समान हैं कनबजिया,
कामथ, कलार, केवट कोरी।
ओरी, अन्तर बेदिन होरी!
सेंदुर की माँग, तेल घर कौ,
नथ कौ चौंराव फुट्ट भरकौ,
तें हुक्का पियत नरियर कौ,
खा कें सतुवा, सुन कें कबीर,
रँग छिरकत लै रोरी थोरी।
ओरी, उत्तर-पूरब होरी!
तें रसिया गाकें रास रचै,
भर जाटिनियन के अंग नचै,
लहरें लै लै कें उलट नचै;
तें गालन गुलचा मार, मिंड़त,
मीड़त हुरयारिन मुख-रोरी।
ओरी, ब्रजमंडल की होरी!
तें फाग डगे की है नामी,
हो जात लट्ठ लैकें सामी,
चढ़ जात तऊ ऊरधगामी;
तें कुटवा देत बइयारन* सें,
होवें कोउ चाँय बड़े धोरी।
ओरी, बुँदेलखण्डिन होरी!
महाराज विराजत हाथी पै,
पिचकारी पसरत छाती पै,
रँग बरसत तो मदमाती पै,
तें लाल-हरी-पीरी-पचरंगी,
तें साँवर है, तें गोरी।
ओरी, टीकमगढ़ की होरी।
तें जुगल निवास बगीचन में,
लै राजा-प्रजा नगीचन में,
धँस जात धमार-धगीचन में,
नर-झंडन में इठलात,
जात फिर रँग के कुँडन में बोरी।
ओरी टीकमगढ़ की होरी!
महाराज सवाई महेन्द्रवीर,
बाँकुरे बुँदेला धर्म-वीर,
ओर्छाधिराज सुंदर सरीर;
जइ भाँत मनावें सदाँ तोय,
जा होय असीस सकल मोरी।
ओरी टीकमगढ़ की होरी!

---

*मूलरचना में चमरियन शब्द है

- राजकवि 'अजमेरी'

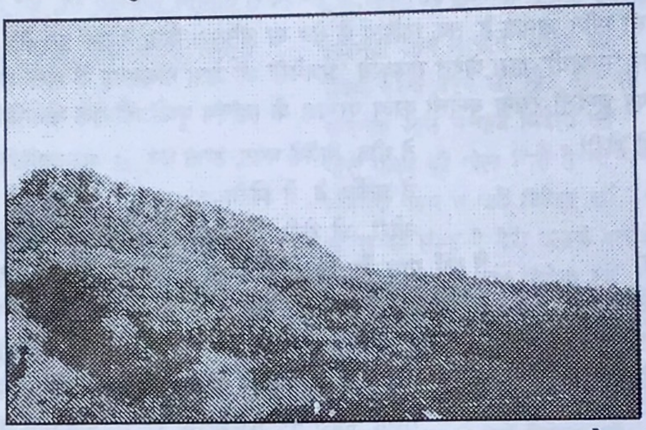
- कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़

कालंजर की पहचान के तीन वृत्त

- डॉ. राहुल मिश्र

सद् युगे कीर्तिको नाम त्रेतायां च महद्गिरिः।
द्वापरे पिंगले नाम कलौ कालिंजरौ गिरिः।।
(पद्म पुराण, पातालखंड, उमा महेश्वर संवाद)

सद्युग में जो कीर्ति पर्वत था, त्रेतायुग में महद्गिरि के नाम से जाना गया, द्वापर में जिसे पिंगल कहा गया वह पर्वत कलियुग में कालंजर के नाम से विख्यात है। प्रत्येक युग में विद्यमान प्राचीनतम, कालजयी कालंजर बुंदेलखंड के दक्षिण पूर्व में विद्यमान है। आदिकालीन मानव सभ्यता के उद्गम और विकास का साक्षी यह कालंजर परिक्षेत्र अपनी अनूठी संस्कृति, धार्मिक महत्ता ऐतिहासिकता और प्राकृतिक सम्पदा के कारण महत्वपूर्ण रहा है। अनार्यों से लेकर आर्यों तक, राजा-महाराजाओं से लेकर नवाबों-अंग्रेजों तक और फिर आजाद भारत के बनते-बिगड़ते इतिहास की खट्टी-मीठी यादों को चप्पे-चप्पे में छिपाए कालंजर दुर्ग और इसके आसपास का क्षेत्र आज भी अध्ययन की अपार संभावनाएँ छिपाए हुए है।



प्रख्यात इतिहासकार डॉ. एस.डी. त्रिवेदी कालंजर परिक्षेत्र को बीस हजार से लेकर दस हजार ईसा पूर्व तक पुराना मानते हैं। अंग्रेज इतिहासकार कॉकबर्न ने कालंजर और इसके आसपास के दुर्गम शैलाश्रयों में भित्तिचित्रों की खोज करके यहाँ प्रागैतिहासिक मानव के अस्तित्व का अनुमान लागया है। रानीपुर के जंगल में शबरी प्रपात के निकट, फतेहगंज और बृहस्पतिकुंड में अनेक शैल चित्र मिलते हैं इसके साथ ही बरियारी गाँव में प्राप्त हुए पूर्व पाषाणयुगीन अस्त्रों से यह सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र में आदिकालीन मानव ने अपना निवास बनाकर मानव सभ्यता विकसित की।



राम ने अपने वनवास का लगभग पूरा समय यहीं पर बिताया और कालंजर से होते हुए दक्षिण की ओर गए। राजा विराट के इस राज्य में पाण्डवों ने अज्ञातवास का समय गुजारा। रामायण और महाभारत काल में इस क्षेत्र में अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, सारंग, अत्रि, व्यास, चरक, च्यवन और माण्डव ऋषियों समेत तमाम ऋषि-मुनियों के आश्रम थे। आसपास के गाँवों के नामों की यदि भाषा विज्ञान की कसौटी पर व्याख्या की जाए तो इस तथ्य की पुष्टि होती है।

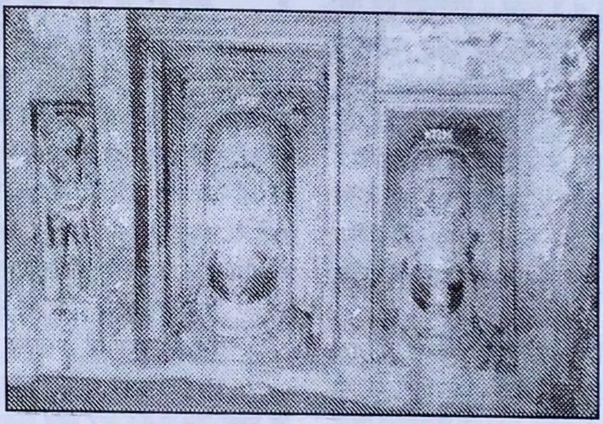
मौर्य काल के सोलह महाजनपदों में से एक चेदि राज्य का अंग रहा कालंजर परिक्षेत्र अपनी अकूत वन सम्पदा और खनिज की बहुलता के कारण राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण रहा है। मौर्य राजवंश के बाद शुंग, नाग, पाण्डव, गुप्त, गुर्जर, प्रतिहार, कलचुरि, वाकाटक, चंदेल, बघेल, मुगल और बुंदेले शासकों ने यहाँ पर अपना आधिपत्य जमाया। कालंजर परिक्षेत्र की अकूत खनिज सम्पदा ने विदेशी आक्रांताओं को भी आकृष्ट किया। कहा जाता है कि सन् १०२२ में महमूद गजनवी ने आक्रमण कर भारी लूटपात की, किन्तु इस क्षेत्र ने मात्र छः महीने में ही इस लूट की भरपाई कर ली। सन् १५४४-४५ के आसपास शेरशाह सूरी ने कालंजर पर आक्रमण किया किन्तु इस अभेद्य दुर्ग को जीते बगैर ही उसकी मृत्यु हो गई। दुर्ग की तलहटी में शेरशाह की समाधि आज भी विद्यमान है।

विंध्य की दुर्गम पर्वत श्रृंखलाओं और पहाड़ी नदियों के कारण प्राकृतिक रूप से सुरक्षित इस क्षेत्र में चंदेल नरेशों ने मुख्य रूप से अपनी सैन्य शक्ति का केन्द्र बनाया और किलों व मंदिरों का निर्माण कराया। यद्यपि यह माना जाता है कि ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर पाँचवी शताब्दी के मध्य केदारवर्मन ने कालंजर दुर्ग का निर्माण कराया, तथापि इस क्षेत्र के विकास का श्रेय मुख्यतः चंदेल शासकों को ही जाता है। विभिन्न कालखण्डों में हुए निर्माण के कारण कालंजर में गुप्त शैली, गुर्जर प्रतिहार शैली और पंचायतन नागरीय शैली के साथ ही वास्तुकला के दुर्लभ प्रयोगों के दर्शन सुलभ हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह क्षेत्र जितना महत्वपूर्ण रहा है

उतना ही खनिज सम्पदा से परिपूर्ण भी रहा है। बेहतरीन हीरों की खानें आज भी इस क्षेत्र में विद्यमान हैं। नजदीक ही कुठला जवारी गाँव में लाल कंकड़ पाए जाते हैं, मान्यता है कि इन कंकड़ों से यहाँ के आदिवासी सोना बनाया करते थे। इसके साथ ही यहाँ पर ताँबा, लोहा व अन्य कीमती धातुओं की खान होने की प्रबल संभावनाएँ हैं।

कालंजर परिक्षेत्र का विशिष्ट धार्मिक महत्व भी है। महाभारत के वनपर्व, वायुपुराण, लिंग पुराण, कूर्म पुराण, वामन पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, स्कंद पुराण, भागवत, अग्निपुराण, गरुण पुराण और देवी भागवत् सहित विभिन्न धर्मग्रंथों में, बौद्ध ग्रंथों और पालिजातकों में इस क्षेत्र का महात्मय यहाँ की धार्मिक महत्ता को प्रस्तुत करता है। विभिन्न पंथों और धर्मों के समन्वय के लिए यह क्षेत्र निःसंदेह अनूठा है। मड़फा में स्थित चंदेलकालीन जैन मंदिर और कालंजर में प्राप्त वज्रयानी बौद्ध परम्परा की मूर्तियाँ साक्षी हैं कि यहाँ पर जैन और बौद्ध धर्म अपने समय में बहुत प्रचलित था। शैव, शाक्त, वैष्णव, सिद्ध और कबीर मत के साथ ही इस्लाम के अनुयायी इस क्षेत्र में मिलजुल कर रहते हुए धार्मिक समन्वय की मिसाल कायम करते हैं।



कालंजर में नीलकंठ मंदिर, पाताल गंगा, पाण्डव कुंड, बुढ्ढक क्षेत्र, सिद्ध की गुफा, भैरव की झिरिया, मृगधारा, कोटितीर्थ, बलखंडेश्वर महादेव मंदिर, नौगवा की कबीर गद्दी, गौरइया मंदिर, गुढ़ा का हनुमान मंदिर, सिधौरा का देवी मंदिर, पाथर कछार का रक्तदंतिका और विष्णु मंदिर; बानगंगा, रौली गोंडा और बिलहरिया का विष्णु मंदिर; वीरगढ़ का देवी मंदिर; गोले पुरवा के निकट हुमायूँ की छावनी और शेरशाह सूरी की मजार तथा जैन और बौद्ध तीर्थंकरों-श्रावकों की यत्र-तत्र प्राप्त मूर्तियाँ इस क्षेत्र की धार्मिक महत्ता का स्वतः बखान करती हैं।

धर्म के साथ ही कालंजर परिक्षेत्र में प्रकृति का सौन्दर्य भी स्वयं में अनूठा है। विंध्य पर्वत श्रेणियों में सूर्योदय और सूर्यास्त की छटा भी निराली होती है। बानगंगा कुंड का जलमग्न वृक्ष आज भी पर्यटकों के लिए आश्चर्य का विषय है और वनस्पति विज्ञानियों के लिए खोज का। इसी तरह बृहस्पति कुंड से लगभग चार कि. मी. दूर बेधक नामक स्थान पर एक ऐसा वृक्ष है, जो शैलोदक प्रभाव के कारण पूरी तरह से पत्थर का हो गया है, मगर उसकी शाखाएँ आज भी पुष्पित पल्लवित हो रही हैं। शबरी प्रपात, सकरो प्रपात, मगरमुहा प्रपात और बेधक प्रपात प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है। पाथर कछार में दो पहाड़ियों के बीच प्राकृतिक रूप से बन गई दो झीलें नैनीताल जैसा सुखद अहसास देती हैं। लखन सेहा के देवालय की विचित्र पत्थर की चौखट दर्पण की तरह ही नहीं है वरन् इसमें मानव छाया का प्रतिबिंब दस पन्द्रह मिनट तक बना भी रहता है। पहाड़ी नदियों के उद्गम, नदियों के मुहाने, हरी-भरी पर्वत श्रृंखलाएँ, मनोहारी प्रपात और इन सबके बीच विचरण करते पशु-पक्षी समग्रतः ऐसा आकर्षण पैदा करते हैं जो मन को बरबस ही प्रकृति के इस आनन्दोत्सव में बाँध लेता है।

चाहे ऐतिहासिकता की बात हो, धर्म-संस्कृति की बात हो या फिर प्राकृतिक सौन्दर्य की बात हो, कालंजर परिक्षेत्र की पहचान अनूठी और अविस्मरणीय है। मगर अपने स्वर्णिम अतीत से गर्वोन्नत, धर्म-संस्कृति का ध्वज वाहक और विराट प्राकृतिक सौन्दर्य का धनी कालंजर परिक्षेत्र आजाद भारत में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। रामचंद्र चौबे कालंजर दुर्ग के अधिकारी किलेदार थे, सन् १८१२ में अंग्रेजों ने कालंजर को कब्जे में ले लिया और यहीं से इसका अस्तित्व सिमटने लगा। गुलाम भारत आजाद भी हुआ मगर आजाद देश के नुमाइंदों ने कभी राजनीतिक अवसरवादिता के कारण तो कभी उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश के सीमा विवाद के कारण इस क्षेत्र को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने की जहमत नहीं उठाई। वह कालंजर परिक्षेत्र जहाँ कभी हीरा पैदा होता था, धर्म का बिगुल बजता था, रणबाँकुरे जन्म लेते थे, डकैत पैदा करने को मजबूर हो गया। शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसी अनिवार्य जरूरतों के लिए, बिजली, पानी और सड़क जैसे अनिवार्य संसाधनों के लिए तरसते कालंजर परिक्षेत्र में दस्यु उन्मूलन के नाम पर सरकारी रस्म अदायगी तो बहुत होती रही पर मर्ज की जड़ तक जाने का प्रयास किसी ने नहीं किया।

इतना अवश्य है कि कुछ बुद्धिजीवियों ने, शोधार्थियों ने और जिम्मेदार नागरिकों ने इस परिक्षेत्र से देश-दुनिया को परिचित कराने का कार्य बिना किसी सरकारी मदद के किया है। प्रख्यात इतिहासकार राधाकृष्ण बुन्देली ने कालंजर पर वृत्तचित्र बनाया है, हर प्रसाद शर्मा ने पुस्तक लिखी है और भगवानदास गुप्त कालंजर के बारे में लिखते रहते हैं। कुछ वर्षों से कालंजर महोत्सव का सरकारी आयोजन किया जाने लगा है, जिसकी सार्थकता शायद सरकारी नुमाइंदों की जेब में सिद्ध होती है। वस्तुतः उन लोगों को आगे आने की जरूरत है जिन्हें अपने गौरवशाली अतीत को सहेजना आता हो। यदि इस क्षेत्र में ईमानदारी के साथ विकासकार्य किया जाए, मूलभूत संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ और पर्यटन स्थल के रूप में विकसित किया जाए तो इस विश्वविख्यात धार्मिक सांस्कृतिक-ऐतिहासिक स्थल पर हमारी संततियाँ गौरवान्वित होंगी।

- छबी तालाब रोड, कैलासपुरी, बाँदा (उ.प्र.)

बुन्देली कहावतों में स्वास्थ्य सूक्तियाँ

- डॉ.डी.आर. वर्मा 'बेचैन'

"शरीर माधं खलु धर्म साधनम्" शरीर ही निश्चित रूप से सभी धर्मो की साधना का आधार है। मानव जीवन का सबसे प्रथम सुख निरोग माना गया है। "पहला सुख निरोगी काया" की उक्ति शत् प्रतिशत सत्य है। बुन्देलखण्ड ही नहीं अपितु सभी प्रान्तों की क्षेत्रीय भाषा में कहावतों का भंडार भरा पड़ा है। भाषाई वैषम्य अवश्य हो सकता है, परन्तु उनमें भाव साम्यता भी देखने को मिलती है। यह कहावतें व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। हमारे पूर्वजों ने इन कहावतों में अनुभवों को सूक्तियों के रूप में पिरोया है। स्वास्थ्य से सम्बन्धित सैकड़ों कहावतें समाज में बिखरी पड़ी हैं, जिन्हें संजोने की महती आवश्यकता है। व्यक्ति की दिनचर्या, आहार-विहार, खानपान तथा लाभकारी व हानिकारक विषय वस्तुओं से सम्बन्धित बुन्देली कहावतें बड़ी रोचक बन पड़ी हैं। प्रायः सभी प्रकार की कहावतों में काव्यात्मकता व तुकबंदी होने से वे सरल व मर्मस्पर्शी बन गयी हैं। स्वास्थ्य संबंधी कुछ कहावतें इस लघु कलेवरीय आलेख में बानगी स्वरूप प्रस्तुत की जा रही है। कहा गया है -

१. "खाय आहार तौ ढकेलै पहार" - भावार्थ है कि यदि किसी की खुराक अच्छी होगी तो वह निश्चित ही शक्तिशाली व स्वस्थ होगा। परन्तु इस आहार पर भी विचार किया गया है कि क्या खावें और कब खायें तथा क्या कब न खायें? यदि व्यक्ति भक्ष्य अभक्ष्य सभी खाता चला जायेगा तो स्वास्थ्य लाभ की अपेक्षा वह रोगी होगा।

२. स्वास्थ्य लाभ करने के लिये आरोग्य के विशेषज्ञों, कविराजों ने किस माह में क्या न खाने के लिये कहा है। साथ में यह भी कहा है कि यदि अमुक महीने में अमुक वस्तुओं से परहेज किया जाए तो वैद्य की आवश्यकता ही न पड़ेगी। अवलोकन कीजिए -

"चैते-गुड़, वैशाखे तेल।
महुआ जेंठ, असाड़े बेल।।
सावन दूध, व भादों मही।
क्वाँर-करेला, कातिक दही।
अगहन-जीरा, पूस-धना।
माव में मिश्री फागुन चना।
जे जो बारा देय बचाय।
ता घर वैद्य कभी न जाय।।"

उक्त कहावत का मनन करने पर यह विदित होता है कि यह वस्तुएं बताये गये महीनों में पैदा अधिक होती है। नयी नयी होने के कारण उनमें तेज या गर्मी या शक्ति अधिक मानी गयी है, जो शरीर को हानिकारक होती है। दैनिक जीवन में यह देखा भी जाता है कि उक्त वस्तुएं यदि वर्जित महीनों में सेवन की जाय तो हानि करती हैं। "बचाव ही उपचार है" अर्थात् परहेज भी स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है। अन्य कहावत में अनुभव कीजिए

३. "क्वांर करेला, कातिक दई, मरै ना तौ परै सई।"

इस बुन्देली कहावत में लोगों को कितनी सख्ती से क्वांर में करेला तथा कार्तिक में दही खाना मना किया गया है। यदि कोई खाता भी तो कहावत के अनुसार बीमार अवश्य हो जाता है।

इसी प्रकार से प्रतिदिन उषा पान के लाभ व दूध के खाने से लाभ का वर्णन निम्न कहावत में दृष्टव्य है।

"निन्नें पानी जो पियें, हर्र भूंज कें खांय।
दूध व्यारी जो करें, ता घर वैद्य न जांय।।"

प्रातः काल निराहार ऊषापान (जलपान) करना, प्रतिदिन हरड़ भूँन कर खाना तथा संध्या काल के भेजन (ब्यारी) में नित्य दूध का सेवन जो व्यक्ति करते हैं उनके घर वैद्य नहीं जाते हैं। सारांश यह है कि उक्ताहारी निरोग रहते हैं। इसी प्रकार से हरड़ व नीम की दातुन के गुणों का वर्णन अग्रांकित कहावत में देखिए-

४. "प्रात हर्र जो खाय, करै नीम दातौन नित।
एक बेर जो खाय, ता घर वैद्य न जावई।।"

इस कहावत में पर्याप्त जान दिखाई देती है, कि यदि प्रातःकाल हरड़ (हर्र) को भून कर खाई जाय तथा प्रतिदिन नीम की दतौन की जाय तथा दिन रात में एक बार भोजन करने वाले के यहाँ वैद्य नहीं जाते हैं। अर्थात् उक्त नियम वाले व्यक्ति स्वथ रहते हैं। स्वास्थ्य की यह अनुभूत बुन्देली कहावतें वैद्य इसी प्रकार से शौच जाने के सम्बन्ध में कहावत प्रचलित है -

५. "एक बेर योगी - दो बेर भोगी।
तीन बेर जाय सो - असल रोगी।"

इस काव्यात्मक बुन्देली कहावत में यह बताया गया है कि जो केवल दिन में एक बार शौच क्रिया को जाता है वह मानो योगी की भांति है तथा जो व्यक्ति दो बार शौच क्रिया चौबीस घंटे में करते हैं, वे व्यक्ति भोगी अर्थात् गृहस्थ हैं और भोग का आनन्द उठाने वाले हैं तथा जो व्यक्ति ३ बार शौच क्रिया करते हैं वे निश्चित रोगी माने गये हैं। व्यक्ति अपने-अपने लक्षणों के अनुसार अनुमान लगा सकते है। दैनिक जीवन में बहुधा देखा भी गया है कि एक बार शौच जाने वाले व्यक्ति स्वस्थ होते हैं। इसी प्रकार पेट विकार व आंखों के सम्बन्ध की कहावत देखिए -

६. "पेट खाँ लंघन, आँख खाँ बंधन।"

बुन्देली कहावत का भावार्थ यह है कि यदि पेट में अफरा हो, अपच हो, दर्द हो, पेचिश या दस्त आदि पेट सम्बन्धी विकार हो तो कुछ न खायें। लंघन करा दें। इसी प्रकार नेत्र से सम्बन्धित कोई विकार हो तो पट्टी अवश्य बांधे ताकि धूल, धूप, धुवां से बचा जा सके।

लोक जीवन में काले सर्प के इलाज के लिये बुन्देली कहावत सुनी जाती है -

७. "कारी गुलीशर कारी पाढ़। का करै करिया की डाढ़।।"

इस कहावत का अर्थ है कारी गुलीशर (जड़ी) तथा कारी पाढ़ (जड़ी) है। इन दोनों को मिलाकर काले सर्प दंशित व्यक्ति को दूध में पीस कर देने से या यों ही पानी में देने से सर्प का विष समाप्त हो जाता है।

विशेष नोट - कहावत जो चलन में है उसको उद्धृत किया गया है। इसके प्रयोग करने को नहीं कहा गया है। वर्तमान समय में सर्पदंशित व्यक्ति को तुरंत सरकारी अस्पताल में ले जाना चाहिए।

खाज, दाद तथा चर्म विकार के लिये एक कूट पदावली से युक्त मनोरंजक कहावत दर्शनीय है -

८. "काला जीरा, कमल गटा, गाँव का ठाकुर गाय का मठा।
गोरी नाइन देव मिलाय, दाद, खाज अरु कोढ़ नशाय।।"

औषधियां रोगानुसार अनुभूत है। कहावत में बद्ध होने के कारण यहां अंकित की गयी हैं। आवश्यक नहीं है कि कोई उक्त औषधियों का प्रयोग करे। अर्थ यह है कि काला जीरा, कमल गठा, गाँव का ठाकुर अर्थात पंवाड़ के बीज तथा गोरी नाइन अर्थात् हल्दी लेकर सबको गाय के मठा में पीसकर लगाने से दाद, खाज, कुष्ठ आदि रोग ठीक होते हैं। इसी प्रकार कहा गया है -

९. "दाद, खाज सेउआ - एक कोढ़ जेउ आय।"

अर्थात् उक्त रोग कोढ़ ही जानो अर्थात् यह चर्म रोग साधारण न समझे जाय।

बुन्देलखण्ड में निम्नांकित कहावत बड़े प्रचलन में है कि-

१०. "कम खाव उर गम खाव।
न हकीम के इतै जाव, न हाकिम के इतै जाव।"

भावार्थ है कि यदि आप इस कहावत का पालन करते हैं तो जीवन बड़ा सुखी रहेगा तथा उसका कारण स्वास्थ्य ही होगा। यथा - जितना आपका आहार हो, उससे थोड़ा कम ही लेना, स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद होता है और वैद्य हकीम के पास जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसी प्रकार गम खाने से लड़ाई नहीं बढ़ती और उसका परिणाम अच्छा मिलता है। क्योंकि किसी हाकिम् के पास नहीं जाना पड़ता और व्यर्थ का पैसा बर्बाद होने से बच जाता है। इसी प्रकार से स्वास्थ्य को दुरुस्त चुस्त व सही रखने के लिये निम्नांकिल कहावत का भाव देखिए -

११. "तेल, मिरच उर खांय खटाई। रोग बसें बीमारी आई।।"
इसी प्रकार-"तेल, खटाई, मिर्च का सज्जन करें जो त्याग।
कोई रोग होबै नहीं, पत्थ होय कंठाग्र।"

दोनों कहावतों में भाव साम्य है। तेल, खटाई तथा लाल मिर्च खाने से रोग उत्पन्न होना स्वाभाविक है। आंख व दांत के लिए कहावत देखिए -

१२. आँख खाँ अंजन - दांत खाँ मंजन।"

आंखों को स्वस्थ रखने के लिये उक्त कहावत चली आ रही है कि प्रतिदिन अंजन लगाना लाभदायक होता है। इसी प्रकार से दांतों में प्रतिदिन मंजन करना दांतों के स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होता है। इसी प्रकार से परम्परागत रूप से चला आ रहा दोहा कहावत के रूप में प्रातःकाल स्नान करने के सम्बन्ध में है-

१३. "ऋण चुकन, कन्या मरन, प्रातकाल स्नान।
जे पैलां दुख देत हैं, पीछें सुक्ख महान।"

भावार्थ कि प्रातः काल का स्नान करना पहले भले ही कष्टकर लगता हो परन्तु दिनभर तरोताजा रखता है तथा शनैः शनैः निरोग रहकर व्यक्ति सुन्दर भी लगता है।

इसी प्रकार से सावन के महीने में ब्यारी यदा कदा करें, भादों में पूरे माह न करें तथा क्वांर का महीना भी इसी प्रकार निकालें और दीपावली के पश्चात् खूब ब्यारी करें। कहावत का आदेश देखें -

१४. "सावन ब्यारी जब तब करिये, भादों ऊकौ नाव न लइये
क्वांर मास के दो पखवारे, जतन जतन से जेइ निकारें।
आदे कातिक भई दिवारी, फिर हूँक कें करौ ब्यारी।।"

प्रस्तुत कहावत के पीछे यह विचार धारा है कि वर्षात के महीनों में हाजमा शक्ति कमजोर हो जाती है, और भोजन पाने में अपर्याप्त होती है। अतः कम भोजन करना लाभदायक होता है वर्षा निकल जाने के बाद दीवाली तक यह अग्नि तीव्र हो जाती है तो फिर भोजन खूब किया जा सकता है। सामान्यतः भोजन कम करना स्वास्थ्यप्रद होता है। इसी प्रकार से एक कहावत में यह उल्लेख किया गया है कि क्या खाने से क्या लाभ होता है -

१५. "मांस खांय मांस बढ़ै, घी खायं खोपड़ी।
दूध पीके चल पड़ी, सौ बरस की डोकड़ी।"

भावार्थ है कि मांसाहारी पुरुष के मांस में वृद्धि होती है और वह स्थूलकाय हो सकता है। घी का सेवन करना बुद्धि के लिये लाभप्रद होता है, तथा वृद्ध लोगों को दूध का सेवन बहुत लाभप्रद तथा शक्तिप्रदायक होता है। इसी प्रकार प्रातःकाल घूमने के सम्बन्ध में परम्परागत रूप से यह उक्ति प्रचलित है -

१६. "प्रात समय की वायु जो, सेवन करै सुजान
तासों मुख छवि बढ़त है, बुद्धि होत बलवान।"

प्रातःकाल का घूमना प्रत्येक व्यक्ति को लाभकारी होता है। इससे होने वाले लाभ अनपढ़ व्यक्ति भी जानते हैं। प्रातः घूमने से बुद्धि प्रबल होती है तथा ओज व कांति में वृद्धि होती है। इसी प्रकार से भोजन के पश्चात् मूत्र त्याग करना तथा सोने से पहले पांव धोना चाहिए। इसका आयुर्वेद में भी उल्लेख है। कहावत इस प्रकार है -

१७. "खाकें मूतै सोते पाँव। वैद्य न जावे ताके गांव।" कहावत का अर्थ है कि जिस गांव के लोग भोजन करके पेशाब करते हैं तथा सोने से पूर्व पांव धोके शयन करते हैं, उस गांव में वैद्य की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसी प्रकार से गाय का मठा पीना स्वास्थ्यप्रद है। मछली के साथ दूध का प्रयोग वर्जित है। घी और शहद समान मात्रा में लेने से विष का काम करता है। पुराना गुड़, पुराने चावल लाभदायक होते हैं। पुरानी शहद, पुराना घी नेत्र में लगाने से लाभ करता है।

- ग्राम व पोस्ट स्यावरी, वाया मऊरानीपुर
जिला झांसी (उ.प्र.)

नरसी भक्त का रागकेदार

- पं. राजकुमार पुजारी 'साहित्य रत्न'

भक्त शिरोमणि नरसी भक्तों की श्रृंखला में एक अलग स्थान रखते हैं। पौराणिक कथन है कि भक्त नरसी नन्दनन्दन श्री कृष्ण भगवान को नित्य राग केदार एकतारा बजाकर सुनाते थे। रास बिहारी जू सरकार नित्य उनका राग केदार सुनते और महामाया राधिका रानी के साथ उन्हें दर्शन देते थे। इस बात को सभी जानते थे।

भक्त नरसी की नगरी में एक गरीब ब्राह्मण परिवार रहता था, विप्र की कन्या शादी योग्य हो गई थी, लेकिन अर्थाभाव के एवं दहेज के कारण अपनी बिटिया के पीले हाथ नहीं कर पा रहा था, उस ब्राह्मण को जब किसी ने सहायता नहीं की तो वह एक दिन भवन नरसी के पास गया और अपनी विपदा भक्त नरसी को सुनाई। भक्त नरसी और विप्र के बीच जो बातचीत हुई और विप्र की कन्या का विवाह भक्त नरसी के सहयोग से कैसे सम्पन्न हुआ। इस लोकशैलीबद्ध बुन्देली गीत में पिरोने का प्रयास किया है। पूरी गाथा इस प्रकार है -

विपद कौ बादर छायो रे...
कैसे निपटै काज आज बिटिया कौ आयो रे

एकऊ टका गांठ में नइयां, कैसें काज बनावें।
सुनी न सेठ साहूकारन ने, द्वारें न झक पावै।
लगत है ऐसे गंगा जू में, अपने प्राण गमावै।
तरस कोऊ ने न खायो रे...
कैसे निपटै काज आज बिटिया कौ आयो रे।।१।।

तुमई एक हो जग में मोरे, मोरी लाज बचइया।
बेटी 'बनी' बनी बैठी है, तुम हो काज बनइया।
गाके राग केदार से अपने, वस में करै कन्हैया।
उने वो राग सुनाओ रे
कैसे निपटै काज आज बिटिया कौ आयो रे।।२।।

बोले नरसी भइया मोनो, लुटिया उर न थारी।
कैसें बिटिया व्याही जैहे, बैठी बिटिया क्वांरी।
रखवारे हैं सबके प्यारे, नटखटिया गिरधारी।
उनईं सें लगन लगाओ रे -
कैसे निपटै काज आज बिटिया कौ आयो रे।।३।।

नरसी जू जा टेक है मोरी, लौट घरें न जैहों।
अगर रुपइया नही मिले तो, प्रान टका से देहो।
बिटिया कैसे ब्याही जैहे, कैसे अपयश लैहों।
कहू अब जतन बताओ रे -
कैसे निपटै काज आज, बिटिया कौ आयो रे।।४।।

चले विप्र संग सुमर कृष्ण खों, द्वार सेठ के आये।
बैठे सेठ तो नरसी जी ने, ऐसे वचन सुनाये।
विप्र की बिटिया क्वारी बैठी, कर्जा मांगन आये।
काज जो तुमई बनाओ रे...
कैसे निपटै काज आज बिटिया कौ आयो रे।।५।।

सेठ जी बोले भक्त नरसी से -

बगैर लक्ष्मी के हम नरसी, नहीं लक्ष्मी देते।
आदे देत रुपइया जब हम, दूनो धन धर लेते।
टिया निकरवै पै हम दूनो, सूद मूर पै लेते।
बिना धरैं धन न पाओ रे...
कैसे निपटै काज आज बिटिया कौ आयो रे।।६।।

जिस समय भक्त नरसी थे, उस समय लोग मूँछ के बाल को भी गिरबी रख लेते थे - लोग बात पर भरोसा करते थे।

नरसी भक्त सेठ से बोले -

हमनो का है धरवै भैया, राग केदारा गावैं।
उइखो धरलो गाँने आजसे, उनै न राग सुनावै।
सुनने हुइये उनै केदारा, तो आके बेई उठावैं।
रुपइया तुम ले जाओ रे -
कैसे निपटै काज आज बिटिया कौ आयो रे।।७।।

सेठ से रुपया लेकर भक्त नरसी ने ब्राह्मण को दे दिये, विप्र की कन्या का विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया। भक्त नरसी भी मन ही मन व्याकुल थे कि अपने कन्हैया को वह राग केदार नहीं सुना पा रहे हैं, एवं उनके दर्शन भी नहीं हो पा रहे हैं। वहीं दूसरी ओर यदुनन्दन रासविहारी ने मन में विचार किया कि बहुत दिन से भक्त नरसी का राग केदार नहीं सुना, विचार कर राधिका रानी से कहने लगे -

राधा से माधव जू बोले, जा इक बात बताओ।
भौत दिनन से नरसी ने, नई राग केदार सुनाओ।
ध्यान लगा कैं देखो उनने, भेद समझ में आओ
नरसी वन कर्ज चुकाओ रे...
कैसे निपटै काज आज, बिटिया कौ आयो रे।।८।।

श्रीकृष्ण भगवान ने जैसे ही ध्यान लगाकर देखा तो पूरी बात समझ में आ गई। नरसी का रूप रख के यदुनन्दन सेठ जी के पास गये और जो रुपया उधार भक्त नरसी ने लिया, वह भक्त वत्सल, भगवान ने चुका दिया। सुबह जब भक्त नरसी सेठ जी के दरबाजे से निकले तो सेठ जी नरसी से बोले कि कल जो धन दिया था उसकी पावती तो लिये जाव, नरसी की समझ में पूरी बात आ गई और उस दिन से पुनः बाँके बिहारी को नित्य राग केदार सुनाने लगे।

- पुजरयाना, पृथ्वीपुर,
टीकमगढ़

कभऊँ नई भूलनें बौ मिलन दद्दा दादा को

- वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

सनू १९६० की २१ मार्च कौ बौ दिन कभऊँ नई भूलत। ऊ दिना हम सिटी बस में बैठकें नई दिल्ली के नार्थ एवेन्यू में पौंचे। बस से उतरतनई बिजुरी की चकाचौंध में हमें ऐसौ लगो कै जानें हम कितै आ खड़े भये। एक जांगा ९६ नं. की पट्टी लगी देखी सो उतई जाकें खड़े हो गए। तनकई देर खों खड़े भये हते कै हमाए कानन में बंशी की सी गुरीरी धुन गूंज उठी - "काय, भैया! को आव तुम? इतै काए आय ठांड़े?"

बिलकुलई नैंगर आ गए एक अनजान भले से मर्द खों अपनी बोली में बोलतन देख मोय ऐसौ लगो जैसे अपनो कौनऊँ सगौ-सम्बंधी आय मिल गओ अचानक ई परदेश में। उनकी जौ बतयावो तौ मोरे हिरदे मे मिसरी सी घोर गओ सो हमने सोऊ ठेठ बुंदेली में उनसे पूँछ धरो - "मै तो ठहरो, भैया! गांव, गौवड़े कौ! ठेठ बुन्देलखण्डी। पै तुमाई जा गुरीरी सी बोली सुनकें तौ मोय ऐसो लगौ जैसें मैं अपने घर-अई में आगओ होंव। सो अपुन तनक जा तौ बता देव-कै तुम कितै के आव? का इतै हमाये दादा जू पं. बनारसी दास चतुर्वेदी नौई रात?"

"हओ भैया! बेई तौ रात इतै। पै अपनऊ तौ बताव कै अपुन कां के आव? कां से आरये इतै?"

"हम तौ भैया! भौतई दूर - टीकमगढ़ सें भोर आए ते रातवारी गाड़ी सें जानै है, सो दादा जू से मिलें चाउत/ थोरो सो अई दरस-परस कौ औसर हाथै लग जातो तौ मोरो भाग सुधर जातो। काका दादा जू भीतर हैंगे?

"नई, अबै तौ भीतर नैंया! पै आऊतई हुइयें बे औ दद्दा जू। दद्दा जू खों तो तुम जानत हुइओ? हम सोउ ओई तांय के तौ आयें - कुण्डेश्वर के, जां दादा जू भौत दिनां रए आए।"

"काय भैया! ऐसी काय कात। हमऊ तौ टीकमगढ़ में रात। कुण्डेश्वर, कौन उतै से भौत दूर आय है। हम तौ अक्सर उतै श्री प्रेमनारायण जी रूसियासें मिलवे जात रत। औ रई दद्दा जू की, सो वे हमाए जिला झाँसी के तो आयें। हम का, उनें पूरी दुनियां जानत, हम तौ हैई, का! हाँ जा तौ बताओ, राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त की बात कर रए हौ न अपुन।"

"हाँ, भैया! उनई खों दद्दा जू कात। ठीक है। तुम जा तौ बताव अपुन रूसिया जी खों जानत? उनई ने तौ हमें दादा जू के संगें ठौर ठिकानो दिवा दओ तो। उनें तुम कैसे जानत?"

"बा भैया! वाह! वे उतई के तौ आंय जा के हम आंय यानी मऊरानीपुर के। टीकमगढ में तो हम हायर सेकेण्डरी स्कूल में पढ़ाऊत हैं - अध्यापक हैं। वाह, कैसो नौनो भाग्य है मोरो! कै एक सगै दोऊ जनन के दरस मिल जाने तनक में, मोय।"

"तो मैया! इतै आव तनक बैठकें सुस्ता लेव। जोलों वे दोऊ जनें सप्रू हाउस की सभा सें लौट कें आऊत, तौलों तनक तुम चाय-जलपान कर लेव। औ कछु बतया सोऊ लैबू अपुन।"

इतनों कै वे तौ तुरतंई मोरे सुआगतू-सत्कार में जुट गए। मोय तौ ऐसी लग रओ तो जैसें अपने घरै अपुनन में बैठे होंय, हम दोऊ जनें जबै बतयाय रए ते कै सामे सें एक कार आऊत दिखानी। हमें ऐसो लगो जैसे कै अब बौ समइया आवे वारी है जौन के लानें हम इतै तलक आये हते। कार आकें ठाड़ी भई औ ऊमें से दो जनें भव्य साफ-सुथरे औ सादे से खद्दर के लिवास में उतर कें हम दोऊजनन के ताई धीरे-धीरे बढ़न लगे। अब हम ठाँड़े हो गए। वे जैसे - जैसे ऐंगर आऊत जात ते हमाए हिरदे की धड़कनें बढ़त जात तीं औ हमाई नजरें उनें टक-टकी लगायें निहार रई ती। जब वे हमाए बिलकुल नैगरई आ गए तौ हमाई खुशी कौ ठिकानों न रओ। पूज्य दद्दा जू औ दादा जू खों एक सगै देख वे को जौ हमाओ पैलो औसर हतो, बड़ो नौनो लग रओ तो। उन दो बुजुर्गन की चरन रज लेवे के लाने जैसेइ दद्दा जू के चरनन में झुको अई हतो कै दद्दा जू ने हमाओ कोंचा (हाथ) बीचई में पकर लओ औ कै उठे - "भैया! पैला अपुन जौ तौ बताव के अपुन आव को? कां से आए?"

"मैं वीरेन्द्र शर्मा टीकमगढ़ से आओ।"

मैं और अगाऊं कछु कै पांव के ऊके पैलऊ दादा जू उनें बताउन लगे - "जे हमाए एक पुराने संगी पं. पन्ना लाल शर्मा के भतीजे आंय।" इत्ती कैकें वे फिर बोले - "अपुन तनक बैठियौ, मैं अबई हाजिर भओ।" जब दादा जू भीतर खों चले गए तौ बा समय कौ मौन भंग करत भये दद्दा जू कै उठे - "नईं भैया! बिलकुल नईं! हम बामनन सें कभऊँ पांव नईं पराउत।"

"नई दद्दा जू! नई, ऐसौं कैसें हुई सकत? भलां हम अपने संस्कारन औ शास्त्रन की शिक्षाओं को कैसे भूल जायें, जिनके अनुसार बिना किसी भेद-भाव के बड़े-बूढ़े हरदम पूज्य होत। सो जौ हमाओ अधिकार बनत, इये न छुड़ाव हमसें।"

"सो भैया! अपुन कौ जौ कैबो तौ ठीकई - ठाक है पै अपुन दोऊ जनन में बड़ौ औ पूज्य को है, सो किये पतौ?"

"बा दद्दा जू! बाह! खूब कई अपुन ने तौ। कां अपनु और कां मैं तुच्छ छोटो सौ जन। ज्ञान, बुद्धि, उमर, अनुभव सबई में अपुनई तौ बड़े औ पूज्य हौ। सो मोय अपने चरनन की रज सिर माथे पै लैबे सें बंचित न करो जू ई बेराँ।"

इतनौ कैकें मैं फिर उनकी चरन रज लैवे खों झुको तौ भी उनने बीचई में मोरो हाथ पकर लओ औ कैन लगे "बस, बस, रन देव। ठीक है, पै अब जौ तौ बताओ, कैसे आवौ भओ हतो इतै? दिल्ली में?"

"एक उन्टरव्यू के लानें आओ तो इतै दैनिक हिन्दुस्तान के कार्यालय में सो हो गओ। रातवारी गाड़ी से जानै है सो दादा जू के दर्सनन के लाने इतै चलो आओ तो। बौतो मोरो भाग्य नौनो हतो सो एकई संगे अपुन दोऊ महाजनन के दर्शन हो गए। ई

वेरा मोय तौ ऐसो लग रओ जैसे महात्मा कबीरदास जू पैलऊ कै गए हते पै हम तनक शब्दन की फेर ऐसी करें देत - ''दद्दा दादा दोऊ खड़े, काके लागों पांय।''

सो तुरतंई मोय जौ लगो कै दादासे बड़ो औ पूज्य दद्दा होत। बस फिर का सोचनें तो, मोरे हाथ बढ़ गए अपनु के चरनन की ओर पै अपुन नें तौ बीचई में रोक लंओ।''

नई, भैया! नई, तुमाई जा बात ठीक नइयां काए सेंके दादा यानी पितामह दद्दा यानी पिता सें बड़ौ नइयां। बड़े भैया खों तो दादा कोऊ-कोऊ आय कऊं-कऊं कात पै दादा तौ पिता का पिता ही सबकऊं कओ जात। ईसे दद्दा से दादा ही बड़ौ हुइये। काय, मानत जा बात कै नई?'' इत्ती कैकें वे मोरी तायें हेरन लगे। के जुआव में कौनऊ तर्क न सूझ रओ तो।

अब तौ मोय उनकी ई बात सो भौचक्कर सौ चुपचाप ही खड़ो कौ खड़ों रै गओ और करतों अई का। अब उनई नें मोय ई हैरानी सें उवारवे के लाने फिरकैवो शुरू कर दओ - ''भैया। ठीक है हम तुमओं कैबो मानें लेत पै कबीदास जी की आंगू की लैन दादा जू पै लागू करने परै। ''ऐसी कैकें बे तो मोरी ओर निहारन लगे।''

नई दद्दा जू! नई जौ नई हो सकत। बा लैन तौ ऐसी जुरै आंगू - ''बलिहारी दादा आपनी, दद्दा दियो चिनाय।''

हमाई जे बातें दद्दा जू सें होई रई ती कै तबई दादा जू आ गए औ मोरी इच्छा ऊ बखत् भौतई नौनी तरां पूरी हो गई। ई के बाद कछु देर तक उन दोऊ महाजनन खों आपस में बतयात देखत खड़ो रओ। फिर दद्दा जू दादा जू से एक मौटो सौ ग्रंथ लैके अपनी कार की ताई चलन लगे औ दादा जू थोरी दूर तक उनके संगै जान लगे। अब का! मैं सोऊ आगे बढ़ो औ दद्दा जू की चरन रज लैबे खों झुको। ई बेरां दद्दा जू अपनों हाथ मोरे सिर पै धर असीस देत भये बोले - ''पंडित जू! जौ लरका तौ भौतई नरम स्वभाव कौ जान परत। बुंदेली में ईको बतकाव मोय भौतई नौनों लगो।'' फिर मोरी तांय हेरत भए उननें जौ असीस - ''हम तौ हरदम जेई मनाऊत कै तुम जितै रओ व जाओ सदा सुखी स्वस्थ रओ।'' मोय कभऊँ नई भूलनें।

ई के बाद दद्दा जू तौ अपनी कार में बैठ चले गए। उनें प्रनाम कर दादा जू के संगे मैं उनके निवास की ओर चलो आओ। वे बोले - ''कैसो रओ इन्टरव्यू?'' ''का-कैसो रओ! का कै सकत अबै।''

''खैर! जो हुइये सो आगे सोच-समझ कें निर्णय लईयो। हम तौ तुमें जेई राय दें, कैं सरकारी नौकरी छोड़ पत्रकारिता की अस्थिर नौकरी में जावौ ठीक नइयां। फिर जैसी तुमाई मरजी।'' ऊ के बाद तौ उनसें बिलात बातें होत रई जिनके बारे में फिर कभऊँ लिख हौं पै दद्दा जू सें अचानक भई भेंट तौ भूलतई नइयां। उनसें भओ बौ मधुर मिलाप, उनकी बा उदारता, बा विनम्रता, बा मीठी-मधुर मुस्कान मोरे मन में आज तलक ऐसी गुरीरी मिसरी सी घुर रई कै कछु कात नई बनत। भौतई नौनी औ कमऊँना भूलवे वारी हती बा छिन भर की भेंट, जी की याद जबै-जबै आऊत, तबई तबई मोरे मन पै उन दोई मूर्तियों की छवि ऐसी उभरत चली आऊत कै उयें शब्दन में नई उकेरो जा सकत। ऊ मिलन के बारे में तौ दद्दा जू की कविताई सैं अपनी विनम्र श्रद्धा उन दोई जनन के चरनन में ई तरां अरपन कर दैवे में भौतई नीनो आय लग रओ मोय ई बेरां -

''बहु कल कण्ठ खगों के आश्रम, पालक या प्रतिफल प्रणाम।
भव-भूतल कौ भेद भवन में, उठने वाले शाल प्रणाम।''

- १४३, कुरेंचानाका, मऊरानीपुर, जिला झांसी (उ.प्र.)

फागुनी दोहा

- शंकर दयाल खरे 'शंकर'

अब बसंत रित आ चली, चलत फागुनी ब्यार।
फूल-कलिंन सें करत है, देखौ, भौंरा प्यार।।१।।
कोयलिया भइ बावरी, कुहू-कुहू रइ कूक।
जनें-जनें के कान में, प्रेम-मंत्र रइ फूँक।।२।।
नइँ-नइँ कौंपल निंकर रइँ, अब पतझर के बाद।
कैसी नौंनीं गुदगुदीं, मखमल आउत याद।।३।।
जुही, चमेली, मौंगरा, गुड़हल औ कचनार।
पैरें सारी कैउ रँग, सजगइ धरनी नार।।४।।
बागन लाल गुलाब हैं, बन में छेवला लाल।
रितराजा नें कर दये, लाल धरा के गाल।।५।।
ठूँठ सोउ पतया गये, उनपै चड़ो बसंत।
बैरागी बौरा गये, रसिक हो गये संत।।६।।
बन-बगियाँ फूलन लदीं, मन-बगिया हरषाय।
हाले-फूले सब फिरें, हरष न मनें समाय।।७।।
लता-बिरछ झूँमत-झुकत, दरस-परस मन भाय।
भौंरा फिर-फिर फूल कौ, रस पी-पी इठलाय।।८।।

बिरह के दोहा

सदा करेजौ सालबै, जौ बियोग कौ बाँन।
पीरा पिण्ड न छोड़बै, देही मरे समान।।१।।
जिनके 'पी' परदेस में, उनें न कछू पुसात।
'बामन कीं डग' सी लगें, उनें बसंती रात।।२।।
बन में फूले छेवला, लगें लपट-अंगार।
फूलन के गजरा उनें, लगै गरे कौ भार।।३।।
नचबौ-हँसबौ-बोलबौ, उनें न तनकउ भाय।
हँसी-मसकरीं काउसें, करबौ नई पुसाय।।४।।
भौंरा बैरी सौ लगै, कोइल सौतन घाइँ।
फूलन-कलियाँ सेज कीं, गड़बैं लम्पा नाइँ।।५।।
चंपा डूबी सोस में, सोस-सोस रै जाय।
भौंरा सबलौ जाय पै, मोरे ढिंग नइँ आय?।।६।।
जरे 'काम' कौ जोर जौ, जियत करै का हाल?
'हर' नइँ हरते देह तौ, होतो कौंन हबाल?७।।
जौ वियोग दुख काउ खाँ, नइँ देबै करतार।
सबके संगै सदाँ रयें, उनके प्रिय भरतार।।८।।

- अवस्थी बंगला के पास, दूल्हाबाबा मार्ग, नौगांव, जिला छतरपुर

कुबड़ाई

- डॉ. देवदत्त द्विवेदी

ई धरती पै जब सें मान्स नें जनम लवो हुइये सतजुग, तिरेता, दुवापर, कलजुग कौनउ जुग होबे, कुबड़ाई की पठौनी मान्स के सगै बँदी चली आई। काय कैं जगत्तर भरे में जितने साजे सुवाद हैं उनमें कुवड़ाई कौ सब सें अलगइ सुवाद है। ई की बिरोबरी तो कौनउ मीठी चीज आज लों नइँ कर पाई। येंसौ कौनउँ मान्स न हुइये जीनें कुबड़ाई की गुरयाट न चींखी होबे।

''कुबड़ाई की मिठाई-थोरी भोत सबई ने खाई'' पोथी पुरानन में जोंन नों रस बताये हैं और पिरकिति ने जित्ते फल, फूल, पत्ता, बकला, और जरन में रस बनाये हैं, वे सबई रस कुबड़ाई बारन हों, ई रस के आँगू फीके से लगत हैं। कुबड़ाई के रस में डूबे मान्स अच्छी तरां से ई को मजा लेबे में निपुन होत हैं। बे जीकी कुबड़ाई कर-कर कें सालन मन बैलाउत रेहें ऊ बिचारे हों तो पतौ लौ नइँ पर पाउत, अगर की दाँइँ कभउँ पतौ चलई गव तो बे आँमू-साँमू जुरबे पे जर-मूड़ सें मेंट जैहें। तोउ कौनउ नउड़ा सुनइया ने जो उनके सामूँ मों पै केइ दई-कै काहो तुम उदनाँ येसी बातें कात तो हते-तो बे ऊ बतकाये हों तुरतइँ सुदार कें कैहें - अरे बा बात येसी नोंइँ कई हती, बा तो येसी आय।

असल में कुबड़ाई के रसिया बड़े हुन्नबारे और मीठो बोलबे में भौतइ चतुर होत हैं, बे अन चिनारू मान्सन सें सोउ बातन-बातन में अच्छौ दारमेर करकें हिलमिल जात और फिर उनके भीतर बारे में अपनी पक्की जाँगा बना कें मिठया कैसी बिलू लपका लेत। फिर हराँ-हराँ मौका बकत पै उनइँ के मेरबारन, नाते रिस्तेदान उर पुरापरोस बारन की कुबड़ाई नोंन मिरच लगा-लगा कें करबो चालू हो जेहें। बे धजी को सांप बनाकें अपनी पेंनी अकल सें ई तराँ से बुराई करबे को डोरो डारहें कै सुनबे वारन हों सौरा-आना साँसो जँचन लगत, कछू दिनन में उनें इतनों विशवास हो जात कै इन भइया जू सें बड़कें हमाव साजो सोसबे बारो उर भलो करबे बारो दूसरो कोउ नइयाँ। फिरतो बे गपोड़ीलाल बनउवल बड़बाई कर-कर कें उनके भीतर की सबरी गाँठें छोर कें अपने रंग में इत्तौ रँग लैहें कै सामूँ बारौ उनकौ पक्कौ भगत बन जेय और बे अपनी ई सुफलता पै फूले न समैहै उनें येंसो सुक चैन मिले जैसें कौनउ जग जीत लव होबे।

कुबड़ाई कौ हतयार भौत गैरी मार करबे बारो है। जब राजा दसरत के बड़े कुँवर श्रीराम के तिलक की चरचा सुनकें रानी कैकई की दासी मन्थरा नें कैकई हों अपनी मीठी-मीठीं बातन में ऐसो भरमाव तो कै उनें साजे बुरय उर लाबरे-साँसे की परख पेंचान उड़ गइ ती। अपने पेट सें पराज कें मन्थरा नें राजा दसरथ जू और माता कौसिल्या की ऐसी कुबड़ाई करी कै कैकई कों उतनौ जबर बिसवास कपूर सौ उड़ गव तो, और रानी कैकई ने दासी की बातें मानकें राम को बनवास करवा दवो तो, जैई खासिअत होत है कुबड़ाई करबे बारन की, बे मेंपर में विष मिलै कें चटाबे बारे मानो चाइये।

जाइ बात तुलसीदास बब्बा जू ने लिखी है - ''सुनतबात मृदु अन्त कठोरी - देति मनहु मधु माहुर घोरी।'' आज काल सोउ येंसीं मन्थरा और सकुनी मम्मा हैं। जिनकें ऐकई काम हैं - पराईं, कुबड़ाई बुराई करबे को। उनें दिन भर गुदली करबे चानें बेई सें कभउँ अघातईं नइयाँ। चांय जाँ अपनी कतन्नी सी जुबान चला-चला कें बैर-बुराई की जा बउत रात हैं, बे लावरे इतै बतकाय की येसी तुकतान मिलै देत कै काऊ की अच्छी भली बसी-बसाई गिरस्ती छिन भरे में रनबन की हो जाबे। इनहों ड़ूँड़ा की भेड़ी बिदैबे में झेल नइँ लगत; कब बिनापते को पुरा परोस में काउ सें न्याव टन्टो बिदवा देबें, जे सगे भइया-भइया में फूट डारबे में सोउ नँईं चूक सकत। जो कोउ इनके भरम जाल में बिद गव ऊये जे अपनी किहन की जादूगरी से येही मोहनियां डारत कै ऊ बिचारौ मदाड़ी के जमूरा घाँई इनकौ हुकम बजाउतइ रैहे। इनकी पैराई टोपी तो मरगटइ पे जाकें उतरत, जियत भर तो मान्स इनकी खासी मरजी को बनो रात।

एक जने हते दरबारी माते। पड़े लिखे तो दोई पाटी लो हते, पै हुसियार बिलात के हते, उनें येसीं येसीं पिड़उ बातें आउत हतीं के बड़े-बड़े वी.ओ. पड़इयंन के कान काटत रय। उने जब कुवड़ाई करबे की बुरई रफत पर गई सो बे दिन भर काउ की न काउ की कुबड़ाई करतई रात ते। कभँउ-कभँउ तो येसौ लौ भव के बे अपनी गाँठ को किराव खरचा लगा कें आंनगांव हाँ सुट जाबू करे और अपने गाँव के कौनउ रिस्तेदार के घरे डेराडार कें येसी रामप्यारी रगड़तते के दोई जोर घी चुपरी खात रये और ओई के रिस्तेदार की बुराई कुबड़ाई करत रये। कछू दिनन में फिर अपने घर की गैल पकरी और उतै सें आँन के ऊ रिश्तेदार की कुबड़ाई अपने गाँव वारे ऊके नतेत से करन लगे कब कैसी रई दोई जांगां दोई जनन हों भले बने रये। उनकी येसीं कुबड़ाई करे सें केउ लरका बिटियन के तो ब्याव बन्ज बिलुर गये तो अब ई बातन को भेद खुलो सो गाँवबारन ने उने खूबई थुड़याव, घरइयंन ने सोउ दाबो धाँसो, सो बे दस पांच दिन हाँ चिमा गये फिर बेई बातें धोकन लगे - बा कैसी कन लगत ''कुत्ता की पूंछ पुँगरिया में डारी-जब काड़ी जब टेड़ी की टेड़ी''

येसउ हाल उन दरबारी कक्का को जनम भर बनो रव तोउ नये नये मुरगा बिदत रात ते और बे बड़ी हालफूल से कुबड़ाई को इमरत पियत-पियाउत रेबू करे। जोलों बे काउ की निंदरा न कर लेबें उनके पेट की रोटी नइँ पचत हती। जब माते कक्का लौ बैठबे बारे कम जान लगे, सो उननें अपने बगल में चिलम तमाखू और लौंग सुपारी धरबौ चालू कर दव अब तो जो कोउ दुवारे हुन कड़ो, उननें तुरतइं टेरो-बुलाव - अरे आव फलाने बैठ कें तमाखू

सुपारी खापी लो। सेंत मेंत की तमाखू सुपारी के लोब में केउ जने उते फिरकउँ बैठन-उठन लगे और येंसइँ-येंसें माते जू की हँसीं मसकरीं ओई तारां चलत रइँ।

ई कल काल की कछू येसी महमा है के मसकरया और लबरया मान्स चाँय जाँ फुर जात अर पराये ऐव-कुटेब बखान कर कें सब हों अपनी बाचा में बांद लेत। बेई सब सें बड़े गुनियाँ ज्ञानी माने जात और गाँव आनगांव सबई में पाँच पंचयाटन हों बुलाय चलाय जान लगत।

जाई बात रामायन में लिखी है के -

जो कह झूठ मसकरीं नाना।

कलियुग सोई गुणबन्त बखाना।।

साँसी बात तो जा है कै कुबड़ाई करइया और सुनइया दोई जनें बिरोबरी के दोषनदार होत हैं। काय के पराइ निंदरा बुराई को मजा तो दोई जने लेत हैं। अपुन चाँय गोड़न सें मूड़ लो सबरें भिड़ाने होबे पै दूसरे को तनक सो छिटका ऊकी कुबड़ाई करबे हों ढूँड़ लैंहें।

येंइ सें कइहै कौ - कानी अपनो टेंट न निहारे, दूसरे की फुली पर-पर कें देखे।।

कुबड़ाई के केउ सुबाद सोउ होत हैं जा गुरीरी, नुनखरी, चिरपरी और करई होत है।

एक जने ने कइहै - ''कुबड़ाइ एक-स्वाद अनेक'' जब कुबड़ाई करबे बारे अच्छो नोंन मिरच लगा-लगा कें कुबड़ाई करबे हों जुटत तो उनें नमकीन कैसो मजा देत और सुनबे वारन हाँ भौतउ गुरीरी लगत, काय के - ''बड़बाई अपनी ओ कुबड़ाई पराई सबई हो अच्छी लगत'' और देखो कउँ जिनकी कुबड़ाई हो रइ हो बे बेई अपने कानन सुन लेबें तो उनें नीम सी करई लग जैहे और अगर बाई बात ऊके घरइया के मेरबारे सुनहें तो उने मिरचें सीं लग जैहें जियै कन लगत चिनचिनो लग जैहै।

दुवापर जुग में पांड़वन की रानी द्रोपदी ने अपने कक्यांवते देउर सें हँसी में कैलो, चांय कुबड़ाई कैलो, बिना सोसें समजें एक बात जा कै दइ ती कै ''अँदरन कें अँदरई पजत'' ई बात कौ दुरयोधन हों इत्तो बुरव लगो कै सबरे कोरबन हाँ तीर सौ ठट गव और द्रोपदी पै येंसी आँख फार गये कै भरी सभा में नंगो करबे हों उतारू हो गये ते, बा तो मुरलिया बारे ने येन मौका पे लाज बचा लईती सो कुसर रे गइती तोउ आँगू चल के इतनो बड़ो महाभारत भवतो। जाइ बात जेठन ने रोकी है कै - ''न बात बिरानी कइये - न ऐचातानी सइये।''

हमें लगत कै बाई हरन की चरचा करे बिना जा बात पूरी नइँ होनें, काय कै बाई हरें तौ भोतउ खंड खेलू होतीं, दूनें पाँख कौ परेबा बना कें उड़ा बे तो झेलइ नइँ लगत। जे ओरें तो हर जुग में कुबड़ाइ करबे में आदमी सें मीरा रइँ आँईं इनें बतकाय की येसो सुवा डोरो मिलेबे को अटकर होत है, कै अच्छी दाँतकटी रोटी बारन हों घरी भरे में बैरी बनाकें छोड़तीं।

येसई एक जनी बड़ी बाई कहाउत हतीं, ऊसें हतीं तो बे रीते हाँतन, पै सबरे गाँव में केउ सालन से उनइँ की चलत आ रइती। पटवारी कक्का तौ सरग राजा हो गये ते पैं चालिस एकड़ धरती छोड़ गये ते, सो अकेली बड़ी बाई अदिया-बटिया के गल्ले में गाँव भरे की साख बनी रातीं। अँदयाई से सपरखोर कें एक पेट को बनावां-खावां, फिर दिन भर ऐकइ काम ई की बुराई ऊ की निंदरा, खिसयाबो गरयाबो, ठटरी के कैकें टेरबौ तो उनकौ भौतउ प्रेम कौ बुलावो मानो जात तो। इतने बड़े गाँव की सब हर खबर बड़ी बाई सें पूँछ लो। कीनें का खाव पियो, कीनें का पेरो ओड़ो, को कितै गव-आव, कीसें की कौ बत बड़याव हो परो, पूरे गाँव कौ निन्नो बड़ीबाई के मों पै धरो रात तो। गाँव में पुलस-पटवारी कोउ आबै उनें बड़ीबाई सें पैलउँ अटक कें मिलनें, काय के बड़ी बाई हों दो चार की बुराई करकें कछू न कछू टंटौ जरूरई बिदवा दैनें। फिर बीच बचउआ हों अगारूँ आ जानें।

कछू जनन हों तौ कुबड़ाई करबे की येसी नीचट रफत परजात कै बे कलेवा बाँदे सुनबे-सुनाबे हों दौरे-दौरे फिरत रात, कछू न मिलै तौ जे पुरानी पिरथा के पुजारी बिटियन के पड़बे लिखबे हों कुबड़ाई के फड़ पै जमा के रे जैहें, इनें पराई बड़वाई और बड़वो देखो नइँ जात, जे इत्ते जरुवा होत कै अपनो जरापन कुबड़ाई कर करकें काढ़त रात। कछू जन जनम से जरुवा होत, कछू संगत गुन सें बिलुर जात, खूब पड़े लिखे मान्स लौ कुबड़ाई करबे में नइँ चूकत, औरन की का कइये। अब तौ जे टैलीफून चल गये सो घरई बैठें फूनइँ सें कुबड़ाई करबे को सादन हो गयो, काउ की तनक कन्नमुर्र भई और इननें झरे में कूरा बगरावो जे अलबद्द के बगल में टाँक- सें-टाँक जोर कें आन बैठें, सँगै काम करें, सँगै खेंय पियें और जेसई कें आँखन से ओजल भय, पीठ पछारूँ कुबड़ाई करबे जुट परें, कोउ खों बिशवासइं न हुइये के जे हमाई इत्ती कुबड़ाई करत हुइयें।

देखौ भइया-बैन हरो कुबड़ाई करबे उर सुनबे में जितनी नौंनी लगत उतनईं बुरई और अपजस बारी-सोउ है, पराइ कुबड़ाई करबे सें बड़ो पाप और कौनउ नहयाँ। कुबड़ाई करबे वारे हों एक न एक दिना भोतई नेंचो हेरनें परत। जब सबरी बातें उगर जाती सो नाँक ढाँकवे हों लत्ता लौ नईं मिलत और फिर मारे फिरत रात, कौनउँ आव-आदर नई रै जात, ऊपर सें दूसरे जनम में चमगोदर की जोंनी में जनम लेने परत। रामायन में साफ लिखो है कै ''सबके निंदा जे जड़ करही - वे चमगादड़ होय अवतरही।''

ई सें कुबड़ाई की गुरयाई खावे वारे सबई भइया बैनन सें जा बिनती है कै अपुन मन्थरा कैसीं घरफोरू न बनो और न शकुनी मम्मा घाँई महाभारत रचयाव। येई में सबकौ भलौ है। अगर किदाँई काउ को कोनउँ बतकाव कै चाल चलन तुमें अच्छौ नइँ जँचे तौ ओई के सामू सूदो मों पै कै डारो। ई सें कछू फायदा हुइये और कोउ बुरव न माने, सब जने तुमें अपनौ हितुबा हितेसू मानहें।

काय, के फिर तौ जा बात हो गइ -

''निंदक नियरे राखिये- आंगन कुटी छबाय।''

- पुरानी तहसील के सामने, बड़ामलहरा

शोध का विषय - विराधकुण्ड

- अशोक चतुर्वेदी

विश्ववन्दनीय भारत हृदय बुन्देलखण्ड की पावन रज का पुनीत गौरव युग-युगीन प्रभुता सम्पन्न रहा है। बुन्देलखण्ड की वैभवशाली परम्परा में भक्तवत्सल भगवान, चक्रवर्ती सम्राट महाराजा दशरथ नन्दन कहाये। अयोध्या के राजमुकुट संकट के कंटक निवारण के सन्दर्भ में अपने माता-पिता की आज्ञा शिरोधार्य करते हुये - "निशचर हीन करहुँ महि, भुज उठाय प्रण कीन्ह" की पूर्णता हेतु मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने वनवास काल में अपनी धर्मपत्नी जनकनन्दिनी जानकीजी, लघुभ्राता शेषावतार लक्ष्मण जी सहित श्री चित्रकूट गिरि पर निवास किया। इस पर्वत से सूर्योदय की दिशा में महासती अनुसुइया जी के तप के प्रभाव से प्रगट हुई मन्दाकिनी गंगा जी प्रवाहित हो रही हैं।

अखिल ब्रह्माण्ड नायक ब्रह्मा-विष्णु-महेश को बालरूप प्रदान कर, पयपान कराने वाली, वात्सल्यमयी महासती अनुसुइया जी ने, जनकनन्दिनी जानकी जी को पतिव्रत धर्म का उपदेश दिया। महर्षि अत्रि और महासती अनुसुइया जी से विज्ञान दर्शन प्राप्त करते हुये, श्री रामचन्द्र जी वन पथ पर आगे बढ़े। इस सन्दर्भ में श्रीमद्‌बाल्मीकीय रामायण में वर्णन है -

सीतया सह काकुत्स्थस्तस्मिन् घोर मृगायुते।
ददर्श गिरिश्रृंगणभं पुरुषादं महास्वनम्।।
अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः।।

अर्थात् - भयंकर जंगली पशुओं से भरे हुये उस दुर्गम वन में सीता के साथ श्री रामचन्द्र जी ने एक नरभक्षी राक्षस देखा, जो पर्वत शिखर के समान ऊँचा था, और उच्च स्वर से गर्जना कर रहा था, मैं विराध राक्षस हूँ।"

उस विराध राक्षस ने खून से भीगा, और चरबी से गीला, मृगचर्म पहन रखा था। समस्त प्राणियों को त्रास पहुँचाने वाला वह राक्षस यमराज के समान मुँह बाये खड़ा था। इक्ष्वाकुवंशीय श्री रामचन्द्र जी ने अपना परिचय देते हुए दण्डक वन में स्वेच्छा से विचरण करते हुये उस अवध्य विराध राक्षस का वध किया। वन में उस भयंकर बलशाली राक्षस विराध का वध करके परम् पराक्रमी श्री रामचन्द्र जी ने सीताजी को हृदय से लगाकर सान्त्वना दी और उद्दीप्त तेज वाले भाई लक्ष्मण से इस प्रकार कहा - सुमित्रानन्दन, यह दुर्गम वन बड़ा कष्टप्रद है। हम लोग इसके पहले कभी ऐसे वनों में नहीं रहे हैं। (अतः यहाँ के कष्टों का न तो अनुभव है, और न अभ्यास ही है।) अच्छा! हम लोग अब शीघ्र ही तपोधन शरभंगण जी के पास चलें। ऐसा कहकर श्री रामचन्द्र जी शरभंगण मुनि के आश्रम पर गये।

विराध राक्षस वध के सन्दर्भ में अध्यात्म रामायण में वर्णन है कि - अत्रि मुनि के आश्रम से आगे चलते समय, श्री रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण जी से कहा - यहाँ से हम दोनों को बहुत सावधान होकर चलना चाहिये, मैं धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर हाथ में बाण लेकर आगे-आगे चलता हूँ और तुम धनुष धारणकर पीछे-पीछे चलो। हे अरिन्दम्! सब ओर सावधानी से निगाह रखो। हमने जैसा पहले सुना था, उसी के अनुसार इस दण्डकारण्य में राक्षसों का अत्यन्त भय दिखाई देता है।

इत्येवंभाणमाणौ तौ जग्मतुः सार्धयोजनम्।
तत्रैका पुष्करिण्यास्तेकह्लार कुमुदोत्पलैः।।
अम्बुजैः शीतलोदेन शोभमाना व्यदृश्यत्।
तत्समीपमथो गत्वा पीत्वा तत्सलिलं शुभम्।।
ऊषुस्ते सलिलाभ्याशेक्षणं छायामुपाश्रिताः।
ततो ददृशुरायान्तं महासत्वं भयानकम्।। (अध्यात्मरामायण)

इस प्रकार परस्पर वार्ता करते हुये वे डेढ़ योजन (छह कोस) निकल गये। वहाँ कुमद - कल्हार और कमलादि से सुशोभित एक पुष्करिणी (तलाई-तलइया-छोटा सरोवर) थी। वह कमल वन और शीतल जल से अतिसुन्दर दीख पड़ती थी। उन्होंने उसके निकट जाकर उसका शीतल जलपान किया और कुछ समय के लिये जल के किनारे वृक्ष की छाया में बैठ गये। उसी समय उन्होंने एक महाबलवान और भयानक राक्षस आता देखा। यहाँ पर भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने उसका वध कर दिया। विराध के स्वर्ग सिधारने पर श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी और सीता जी के साथ शरभंग मुनि के सर्वसुखदायक तपोवन को गये।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरित मानस के अरण्यकाण्ड में इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार किया है -

"मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले वनहिं सुर नर मुनि ईशा।।
आगें राम अनुज पुनि पाछैं। मुनिवर वेष बने अति काछें।।
उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।
सरिता, वन, गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं वर वाटा।।
जहँ-जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ-तहँ नभ छाया।।
मिला असुर विराध मग जाता। आवत हीं रघुवीर निपाता।।
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा।।
पुनि आये जहँ मुनि सरभंगणा। सुन्दर अनुज जानकी संगा।।

उपरोक्त प्रसंगों के वर्णन से पूर्ण रूपेण स्पष्ट है कि श्री रामचन्द्र जी, महर्षि अत्रि आश्रम से आगे चले, मार्ग में उन्होंने विराध राक्षस का वध किया, और इसी स्थान पर कमल वन और शीतल जल से सुशोभित पुष्करणी (लघुसरोवर) का शीतल जलपान किया। इसके उपरान्त आगे चलकर महामुनि शरभंगजी के आश्रम में पहुँचे। महर्षि अत्रि (अनुसुइया आश्रम, चित्रकूट) आश्रम के आगे और महामुनि शरभंगा जी के आश्रम से पहले घनघोर वन क्षेत्र में श्री रामचन्द्र जी को एक सरोवर मिला, इसका स्पष्ट वर्णन अध्यात्म रामायण अरण्यकाण्ड में वर्णित है। इस प्रसंग के आंशिक उद्धरण उपरोक्तानुसार अवलोकनीय हैं।

दूर-दूर तक चौरस पठार होने के कारण यह क्षेत्र वर्तमान में पाठा क्षेत्र कहलाता है। इस क्षेत्र में पानी का अभाव अनुभव किया जाता है। खोदे हुये कुयें गर्मियों में सूख जाते हैं। वर्तमान में अब तो इस क्षेत्र में विकास का अरुणोदय हो चला है।

भारत सरकार (अंग्रेजी शासन) के सचिव टी.एच.मेंडक ने ''बुन्देलखण्ड और सागर नर्मदा टेरीटरीज'' में भूमि सर्वेक्षण कराया था। उस समय सन् १८४२ ई. में सर्वेक्षणकर्ताओं ने 'विराधकुण्ड' की गहराई नापने का असफल प्रयत्न किया। इसी असफलता को दृष्टिगत रखते हुये, इस ओर विश्व के विविध विद्वानों का ध्यानाकृष्ट हुआ, और सन् १८४४ ई. में अमेरिका के प्रसिद्ध प्रोफेसर ''लूप लिरपा'' द्वारा विराध कुण्ड की गहराई नापने का असफल प्रयत्न किया गया। डॉ. रामअवतार शर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध ''श्री राम वनगमन स्थल'' में वर्णित किया है कि चित्रकूट में अत्रि (अनुसुइया) आश्रम से ०६-०७ कि.मी. दूर वन में रमणीक स्थान 'अमरावती' है। यह महाराजा अम्बरीष की तपःस्थली है। इसी अमरावती में विराध राक्षस ने, दनवासी भगवान् श्रीराम लक्ष्मण, जानकी जी पर आक्रमण किया था। अमरावती से तीन कि.मी. दूर घनघोर वन में एक भयंकर कुण्ड (विराधकुण्ड) है। इस कुण्ड में झाँकने पर भी डर लगता है।

वर्तमान में इलाहाबाद-इटारसी रेलमार्ग पर मानिकपुर जंक्शन से लगभग १५ मील दूर टिकरिया रेलवे स्टेशन से लगभग दो मील पर ''विराधकुण्ड'' स्थित है। पाठा क्षेत्र का यह भू-भाग जमुनहाई-पाथर-कछार- (बरौधा) आदि नामों से भी प्रसिद्ध रहा है। आवागमन की असुविधा के कारण सघन वन्य क्षेत्र में स्थित इस स्थल पर प्रायः कम दर्शनार्थी ही पहुँच पाते हैं।

श्री चित्रकूट धाम के प्राचीन पुण्य स्थानों की पैदल तीर्थयात्रा के क्रम में अपने सहतीर्थ यात्रियों के साथ हमारे पूज्य पिताजी ने इस विराध कुण्ड के दर्शन किये हैं। श्री अनुसुइया (अत्रि) आश्रम से शरभंगण आश्रम की ओर घनघोर वनक्षेत्र में पैदल चलकर विराधकुण्ड पहुँचा जा सकता है। विराध कुण्ड पर किया गया शोधकार्य हमारे बुन्देलखण्ड की युग-युगीन वैभवशाली परम्परा का चमत्कार पूर्ण दर्शन होगा।

– ५१, महावीर नगर, गरौठा, पो. गरौठा,

होरी

- गोपालदास रूसिया

मार मार पिचकारी, नई रग डारी सारी
पूजन भइया दोज गई ती
जब चढ़ आई उरइयाँ
मिले सखन संग श्याम सखी री
हरे कदम की छइयाँ
होरी होरी करके दौड़े बजा बजा के तारी।। नई रंग ...।।
हटकत हार गई नटवर से
जोर जोर कर गुइयां...
गालन लाल गुलाल लगाकें
पकर मसक दई मुइयाँ
लाख कही पर एक ना मानी, विनती कर कर हारी।। नई रंग...।।
नन्द बाई खोरी दे मोखाँ
ताने मारे सइयाँ
भोर होत सासो दे गारी
का है राम करैयाँ
जीमें चैन परै न सजनी, मोरी मत गई मारी।। नई रंग...।।
बुला लेव सब घरन घरन के
लरका बिटिया भइया
ऐसौ घेरा डारो जुरमिल
निकर न पाये कन्हैया
फिर 'गुपाल' मन कौ तुम कर लो, बना बना कें नारी।। नई रंग ...।।

- हरिहर रोड, हरपालपुर,
जिला छतरपुर

दूर हमाये गाँव रे

- बाबूलाल गुप्त 'गुप्तेश'

हम शहरन से दूर बसत हैं, जितै नेहकी छाँवरे।
दूर हमाये गाँव रे।।

जाँ गबुआरन की किलकोरन, जगें सुहानी भोरें।
राम राम करवे भुँसारे, आबें दोरन-दोरें।।
भैया, नन्ना, दद्दा के, बोलन में इमरत पाँव रे।।...

ऐसौ रँग बरसाबै साबुन, गली-गली बृजखोरी।
खोरन-खोरन दिखैं कनैया, दोरन राधा गोरी।।
सुखमय मथुरा विंदरावन सें, का कम मोरौ ठाँव रे।।...

हम तौ निपट गमइयाँ तौऊ, मरजादा में रइये।
हम रसिया पै बृजवसिया के, और न चित्त डुलइये।।
जब हियरा में हुलस उठै तौ, लमटेरा सन्नाँब रे।।...

हाँत दये ईसुर ने हमखाँ, ई धरती के लानें।
ऐइ हमाये तीरथ जानो, ऐई खेत खलयानें।
खेतन पै हर की मुठिया पै, राधा किशन बुलाँव रे।।...

हम ना जाने बड़न-बड़न के, धरम करम की भाषा।
हम तौ रोज गढ़ेरे भैया, करतब की परभाषा।।
अपनी मेंनत सें धरती पै, नओ बसंत खिलाँब रे।।...

दुख अपने करमन सुख गुनिये, ईसुर की करतारी।
मौन भोग मानें हम तसमइ, मिलै कै बेर बियारी।।
जो ईसुर ने दओ प्रेम की, वंशी रोज बजाँवरे।।...

- बड़ामलहरा, जिला छतरपुर

कितनौ बदलौ मेरो गाँव

- डॉ. जवाहर लाल द्विवेदी

एक जमाने में हमाय गाँव में रहवें वारे लोगन में खूबई प्रेम और सद्भाव रत तो। पर समें की ऐसी जहरीली हवा चली के प्रेम की जांगा आपुस में खूब लड़ाई और झगड़न कौ विषैलो माहौल बन गऔ। जिन अथाई और लम्बरदान के चौतर पे कौड़े पे रात में गांव भरे के मान्स जुरके अकेले आगई नईं तापतते, उते बैठके सुख दुख की बातें होत ती और मौका पर जाये तो एक दूसरे खौं भरपूर मदद सौउ करत ते। अब देखवें में जौ आ रऔ के वे सब अस्थान बीरान और सूने डरे हैं। बजाय एकई हैं के ई में पंचायत के चुनावन की बुराई भलाई ने घर-घर और पुरा-पाले में भारी विरोध बढ़ा दऔ है। दूसरौ कारन जौ सौउ है अब आदमी अपनी ठसक में घूमत फिरन लगौ उखौ कोउ के सुख दुख से कछु नई लेने देने। इतै तक तो ठीक हैं, पर घर-घर में भईयन-भईयन में पैले जैसौ प्रेमभाव देखवें नई मिल रऔ। काये जे बेई गांव आयं जिते कभउं देवर-भाभी में मसकरी होत ती और गांव के कुआं बावरियन में पनहारनें आपुन में हंसत खेलत ती और बतयाउ ती। अब तौ सरकार ने गांव गांव में हेंडपम्प का लगा दये हैं, उनपे पानी तौ कम भरो जात पर झगड़ा खूब होत है। तनक तनक सी बुराई थाने और कचैरी तक पौंच जाती। जी से आपुस में प्रेम को जौ धागा बरसन से जुड़ों हतौ मिनट भरे में छार-छार हो जात।

मोय अपने बालापन की कछु मीठी मीठी यादें रय गई। जेसे गांव में जब कौनउ के ते बिटिया को ब्याव होत तौ तो सबरे गांव में खुसी कौ माहौल बन जात तौ। और लगत तौ के सबई गांव के लोगन के काज-औसर हैं। वे सब जने अपनी हैसियत से पईसा-टका नाज-पानू की मदद् करवे सैं नई चूकत ते। कभंउ कभंउ तौ देखवे में आउत तौ के वे बारातईन खौ पूरो मान देत ते और बैलगाड़ी के बैलन खो चारे की सौउ व्यवस्ता कर देत ते। ई प्रकार से जब बिटिया की विदाई की बेरा पालकी उठत ती तो सबरे मौहल्ला और गांव की औरतन के असुआँ ढड़कत ते। जे सब बनाउटी न होके दिल में बसौ प्रेम कौ तरल रूप होत तौ। समें की ऐसी बेढंगी चालें देखवे मिलन लगी के सगे भइंया की मौड़ी के ब्याऔ में सबरे घर के लोगई सामिल नई होत। लगतई नईंया के पुराने जमाने के जैसो काज हो रऔ। इतनउ नई रिस्तेदारन में सोउ पुराने समें को उल्लास नई दिखात। राम और भरत के ई देस में जी में रामान कौ पाट तो रोज खूब होत है पर लगत के पूरौ असर नई हो पा रऔ। काय भईया-भईया के बीच में धरती के एक टूंका खौ लेके जब कतल जैसी बात होत तौ दिल फटो कौ फटो रे जात। कछु जने जा कैबे से फिर नई चूकत के जो तौ घनघौर कलजुग को बुरो समें आ गऔ है। शहरन के जैसो सोच गांवन में भी देखवे मिलन लगौ। जीमें आदमी सिरफ अपने सुख स्वारथ की बातई सोचत पाउत है। केबे के लाने गावन में शिक्षा को खुबई विस्तार भऔ, खेती बारी में तरक्की भई और सिमन्ट के बड़े-बड़े अटा और महल बन गये। पर उनमें रहने वाले लोगन में पेले जैसो प्रेम तौ लगत के कपूर जैसो उड़ गऔ। जिन गांवन में कभंउ चकिया पीसवें के संगे महिलायें गीत गाउत ती। आज उते उनई महिलन में भुनसरा उठवे की अदत नई रे गई। एक ई के कारन उनमे केउ प्रकार के रोग सोउ देखवे आउन लगे। जेसौ मौड़ी-मौड़ा अपने बाप मताई खो देखत बेसउ वे आचार विचार अपनाउन लगत हैं। जौ कछु अचरज की बात नई है, एक कैनात है के - जैसे जी के बाप मताई - वैसे उके लरका, जैसे जा के नदियां-नारे वैसे बांके भरका। आज गांवन में सोउ बूढ़े मताई बाप की सेवा करवे खौं आफत मानन लगे, जो भौतई बुरई बात है के नई? अब ई प्रकार से अगर होत रऔ तो आगे जमाने में और बुरई हालत हो जाने। शहरन में तो बूढ़े लोगन को रेवे को ठिया कछु समाज सेवा की संस्थायें कर देती है, पर गांवन में तो उन बुजरगन के सामूं एकई रासता बचो है, के तो भीक मांगे नईतर फिर कछु ऐसी चीज खावें। जीसे चोलई संग छोड़ देवे। गांवन में शहरन की बुरई-बुरई बातें सबरीं अपाना में तनकउ देर नई करी। वे तो कन्यन को पेटई में मारवे की कोसस करवे से नई चूकत। जी देस में दो नौदेविन में कन्ययन को देवी मानके पूजवे को चलन होवे, उते ये सब बातें करेजे में कांटा बनके भाई पीरा देत है।

आज पुराने गांवन की जे बाते कभउ कभंउ जब आखन के सामने आवती है तो लगत है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी कन लगत ते के भारत की आत्मा तो गांवन में बसत है। जब ई आतमई को जो हाल है तो फिर तो शरीर की का हाल होई है - भगवानई जाने। पर ये सब सोचके निरास नई होने। कछु ऐसे परवार ओर लोग आज भी गांवन में है। जो पैले जमाने के संस्कार बचावे की कोसिस कर रय हैं। गांव बसारी में हरसाल होवे वारो बुन्देली उत्सव ई परम्परा को साक्षात नमूनौ है। जीमें बुन्देली बोली संस्कृति और आचार विचार पे नौने कार्यक्रम होत जो सबई सराहवे जोग है। और सबसे अच्छी बात जा है के ई से लोक कलाकार भईयन खौ मंच मिलत ओर आंगे बढ़वे को रास्ता मिल जात। आज फिर से जरूरत है के गांव की अथाई या चौपाल जो अपनी दुरगत पर असुआं बहा रई उये पोछवे की ईमानदार कोशिस करी जावे। चुनाव की जोन बुराई बनती उने बदले की भावना से ना लऔ जावें। लोक तंत्र पे उन गन तंत्र (तुबक तंत्र) सवार हो गऔ तो जा जाने रईयो के हम सब को आगे को समें खतरे में पड़ जैहे। हमें तो बुन्देली माटी को करज चुकाउने और ईके लाने राज्य बनावे को जो बन सके, सो कोशिस करने है।

-प्राध्यापक वाणिज्य विभाग,
शासकीय विद्यालय राघौगढ़, जिला गुना

बुन्देलखण्ड की सकराँत-बुड़की अर्थात् मकर संक्रान्ति

- कु. रामकिशोरी गुप्ता

भारतीय पंचांग के अनुसार पूरे वर्ष भर व्रत, पर्व, त्यौहार होते रहते हैं। इन्हीं में एक त्यौहार है 'मकर संक्रान्ति'। सूर्य के मकर राशि में प्रवेश को मकर संक्रान्ति के रूप में पूरे देश भर में अलग-अलग नामों और अलग-अलग ढंग से मनाया जाता है। हमारे बुन्देलखण्ड में अधिकतर लोग इसे बुड़की या संकरात कहते हैं। बुन्देलखण्ड के नर-नारी, बाल, वृद्ध सभी बुड़की के त्यौहार के आने की प्रतीक्षा महीना भर से पहले करने लगते हैं।

बुड़की (संकराँत) किस तिथि को किस दिन है, इसकी विधिवत सूचना पंडित जी जब घर घर संकराँत सुनाने आते हैं तब सभी को ज्ञात हो पाती है। अपना पंचाँग निकालकर पंडित जी संकराँत बाँच कर सुनाते हैं। संकरात का रूप क्या है, कैसे वस्त्राभूषण पहने हैं, क्या खा रही है, किस पर सवार है, किस दिशा से किस दिशा जा रही है, बुड़की को पुण्यकाल क्या है? इस सबकी जानकारी वह संकराँत सुनाकर देते हैं। फिर किस राशि कितने लाभ, कितने खर्च, किस राशि के कैसी है का ब्यौरा अपने यजमानों को देकर तथा अपनी दान-दक्षिणा लेकर दूसरे यजमान के यहाँ चले जाते हैं।

इसके दो एक दिन आगे पीछे जोतकरा (जोशी) अपनी खंजड़ी और मजीरा लेकर घर-घर जाकर सकरात की गीत सुनाते हैं जिसकी टूट होती है 'श्रीगंगा'। अपने लोकगीत के द्वारा वे सरमन (श्रवण कुमार) की कथा अथवा राजाकर्ण की धार्मिक कथा सुनाते हैं जैसे -

भज मन गंगा, भज मन राम श्री गंगा।
भजो गुविन्द शालिगराम श्री गंगा।
राजा करन से दानी भये श्री गंगा।।

दो एक दिन बाद बुड़की आने के पूर्व घरों में लडुआ (लड्डू) बनना शुरू हो जाता है। लडुआ कनक के, रैन (बेसन) के, मूँग के, चावल के, कुदई के, रजगिरा (रामदाना) के, जुआँर के फूलों आदि आदि के तो बनते ही हैं, तिली के लड्डू बनना अनिवार्य होता है। लड्डू बनने का कार्य संकरात के पूर्व तक पूरा हो जाता है।

संकरात की पूर्व संध्या को तिलइयाँ कहते हैं। तिलइयाँ की रात्रि में तेल की कढ़ाई चढ़ती है और ठडूला, पपरियाँ, इंदरसे, सेव, खुरमा, मीठे नमकीम, जुवाँर के मीठे नमकीन पूड़ी, भजिया आदि व्यंजन बनाये जाते हैं। जिन्हें परिवार के सभी लोग बड़े चाव से खाते हैं।

बुड़की लेने कहाँ जाना है, किन्हें-किन्हें जाना है, जाने का साधन क्या होगा? मेला में से क्या आवश्यक वस्तुएँ खरीदकर लाना है आदि के सम्बन्ध में रात्रि में ही सब कुछ तय हो जाता है।

बुड़की के मुहूर्त, बुड़की लेने जाने के स्थान की दूरी को ध्यान में रखते हुए लोग अपने-अपने घरों, अपने-अपने साधनों से बुड़की लेने हेतु निकल पड़ते हैं। घर से निकलते ही लोकगीत लमटेरा शुरू हो जाते हैं।

''दरस की बेरा ता भई रे....
बेरा भई रे पट खोलो छबीले भोलानाथ रे,
दरस की आय हो....
मलिनियाँ की गजरा तो न देय रे ...
गजरा न देवे ऊको भोरँइँ
उजारों बेला बाग रे मलिनियाँ की अय हो...
अतर की दो-दो शिशियाँ रे...
दो-दो शिशियाँ रे एक संजा चढ़ा दऊ
इक भोर दे, अतर की अय हो।''

न जाने ऐसे कितने गीत गाते स्त्री-पुरुष समूहों में पैदल जाते हुए, बैलगाड़ियों में सजे-धजे बैठे हुए, (अब तो इनका स्थान ट्रैक्टर-ट्रालियों ने ले लिया है) गाते हुए मेला के स्थान की ओर बढ़ते जाते हैं। सभी के मन में एक ही बात रहती है कि हमें ठीक समय पर बुड़की लेना है जिससे पूरा-पूरा पुण्य लाभ प्राप्त हो सके। बुन्देलखण्ड में ऐसा कोई भी स्थान न होगा, जहाँ किसी नदी-नाले अथवा तालाब के किनारे १० से २० किलोमीटर की दूरी पर संक्रान्ति को मेला न लगता हो।

पिसी तिली का सर्वांग में उबटन लगाकर तिल जल में छोड़कर जल में उतरकर एक हाथ से नाक बन्द कर बुड़की लगाने का सिलसिला घाटों पर कई घंटों तक चलता रहता है। बुड़की लेकर वहीं से लोटा में जलभर कर सूर्य नारायण को अर्द्ध देने एवं मंदिर में जाकर शंकर जी को जल, तिल, पुष्प, बेलपत्ती आदि चढ़ाकर निवृत हो, मेले में अपना-अपना फड़ डाले ब्राह्मणों आदि को खिचड़ी गड़ियाँ घुल्ला, तिल के लड्डुओं का दान कर, फिर सभी लड्डू और अन्य पकवान खाने हेतु समूहों में बैठकर 'गोट' (पिकनिक) जैसा आनन्द लेते हैं।

इसके बाद मेला घूमना शुरू होता है। मेला में बुन्देली संस्कृति का अनूठा रंग चहुँ ओर बिखरा दिखाई देता है। जहाँ ठेठ बुन्देली परम्परा का सजीव दर्शन प्राप्त होता है। यह मेले ग्रामीण सभ्यता, आचार-विचार, मेल-मिलाप आदि की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण होते हैं। ग्रामीणों की दैनिक चर्चा से हटकर इन मेलों में उपस्थित, उनमें नवीन उत्साह, उमंग और ताजगी भर देती है। वे आनंद सागर में डूब जाते हैं। नई ताजगी से मेले में खरीददारी कर उनकी घर वापिसी होती है।

संकराँत के अवसर पर हाथी घोड़ों का कोई विशेष महत्व माना जाता रहा है। इसीलिए ऐसी परम्परा है कि संकरात के १०-५ दिन पूर्व बच्चे पीतल के घुल्ला दौड़ना शुरू कर देते

हैं। संकराँत के पूर्व कुम्हार मिट्टी के बने कम से कम दो-दो हाथी-घोड़ा पूजा हेतु दे जाता है। जिनकी पूजा संकरात के दिन की जाती है। धातु और मट्टी के घोड़ों के अतिरिक्त शक्कर के भी घोड़ा आदि मिठ्या बनाकर बेचते हैं जो गढ़िया-घुल्ला कहलाते हैं। पूजा में यह आवश्यक होते हैं।

शक्कर के घोड़ा-हाथी के अलावा विभिन्न प्रकार के पक्षी, आभूषण भी बनाये जाते हैं। किन्तु पूजा एवं दान के अतिरिक्त इनका कोई महत्व नहीं होता। मैंने कहीं ऐसा पढ़ा है कि महाराष्ट्र में संक्रान्ति के अवसर पर तिल गुड़ और शक्कर को मिलाकर आभूषण बनवाये जाते हैं जिन्हें घर में बच्चे के जन्म देने वाली माँ अथवा नव-वधू एवं जनजात शिशु को पहनाया जाना शुभ माना जाता है। उनका यह भी मानना है कि मकर संक्रान्ति पर इन गहनों का दान करने से पुण्य की प्राप्ति होती है।

मिट्टी के एवं घर में उपलब्ध धातु के घोड़ों की पूजा पश्चात् हमारे यहाँ गौन भरने की भी एक विशेष परम्परा है। कपड़े की एक विशेष प्रकार की सिली हुई थैली में संकरात के अवसर पर जो भी पकवान बनाये गए हैं उनको थोड़ा-थोड़ा इस थैली में डालकर बंदकर दिया जाता है और उसे बसन्त पंचमी के दिन पूजा करके लड़कों द्वारा खोला जाता है जो गौन खोलना कहलाता है। कहीं-कहीं इन्हें कठारी कहा जाता है। बसंत पंचमी आने के बहुत पहले तक संकरात के पकवान समाप्त हो जाते हैं। इसलिए बच्चे बड़े बेसब्री से बसंत पंचमी आने और गौन खुलने का इंतजार करते हैं। संध्या को सभी जन खिचड़ी खाते हैं या केशरिया चावल खाते हैं।

सकरात के दूसरे दिन से सम्बन्धियों, परिजनों, एवं इष्टमित्रों का संकरात खाने हेतु आमंत्रण शुरू हो जाता है जो कई दिनों तक चलता रहता है। परिवार से जुड़े पेशादार वर्ग के नाम से जाने वाली महिलाएं घर-घर जाकर पावन माँगती है। जिन्हें पावन के रूप में सभी प्रकार के पकवान थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिए जाते हैं। पावन मांगने की यह परम्परा तो बुन्देलखण्ड में हर पर्व त्यौहार पर थी जो अब धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है।

आदरणीय भइया श्री गुणसागर 'सत्यार्थी' जी ने मुझे गाकर सुनाया कि -

बुड़की तो आ गई नयो गुर लयें
गुर लए दो दो लडुआ
मसक ल्येव यार रे।

उन्होंने कहा कि जिस तरह लमटेरा में नए गुरका वर्णन है उसी तरह कालिदास ने भी अपने शिशिर वर्णन में (ऋतु संहार में) भी गुड़ का वर्णन किया है -''प्रचुर गुड विकारः स्वादुशाली क्षुरम्यः प्रबल सुरत-केलिजीत-कंदर्प-दर्पः''

अर्थात् -जे दिन नई बराई ल्याए, गुर के विजन भाए
घर-घर में रसयार (रसवीर) बनत है,
सिसिर सुहावन छाए।''

संक्रान्ति के बाद से दिन थोड़ा-थोड़ा बढ़ने लगता है और सर्दी कम होने लगती है, कहावत है कि - ''माघ तिलतिला बाढ़ें, फागुन गोड़े पसारे।'' एक और विशेष बात है कि अंग्रेजी तारीखों के हिसाब से संक्रान्ति १४ जनवरी को पड़ती है। पंचांग में इसकी कोई निश्चित तिथि नहीं होती है। संक्रान्ति के बाद आने वाली माघ कृष्ण पक्ष गणेश चौथ को तिल, गुड़ और अदरक को कूटकर तिलकूचा के लड्डू बनाकर अंग्रेजी की पूजा कर भोग लगाया जाता है।

मकर संक्रान्ति प्रतिवर्ष आती है और चली जाती है, किन्तु वह हमें विचार करने हेतु कुछ प्रश्न अवश्य छोड़ जाती है। जैसे - जोशियों द्वारा संक्रान्ति पर श्रवण की, कर्ण की कथा ही क्यों गाई जाती है? संक्रान्ति पर घोड़ों की पूजा क्यों? गढ़िया घुल्ला के नाम पर हाथी घोड़ा एवं आभूषणों का शक्कर से बनाया जाना पूजा में उपयोग एवं दान क्यों? संक्रान्ति के दिन कपड़े की थैली 'गौन' (कठारी) में पकवानभरकर रखना और बसंत पंचमी को पूजन कर उसका खोलना आदि की परंपरा का प्रारंभ क्यों और कैसे हुआ। इसे गंभीरता पूर्वक व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप में विचार किया जाना आवश्यक है जिससे कि स्थापित परंपराओं का उद्देश्य समझा जा सके।

– पुराना पोस्ट आफिस, हवेली रोड, टीकमगढ़

बिटिया की पाती

- संतोष सौनकिया 'नवरस'

मोरे बापू करत तुमाई, बिटिया है परनाम।
जिदना सें डोली में धर दौ लऔ न अबलों नाम।।

तुमतौ कत्ते मोरी बिटिया, है प्रानन सें प्यारी,
तउ पै ऐसौ फेर लऔ मौं, सुध नइँ लई हमारी,
नैकउ समउ न काढ़ सकौ, तुम ऐसौ केसौ काम।।...

बीत रई जो मो पै मोरी, तुलसा मैया जानें,
दिया धरें घी के संगै ऊ, में अँसुआ भर जानें,
ऐसी रहन हमारी लखकें, सरमा जाँय गुलाम।।...

नाक तुमाई रखने कों हम, घुट लेवें मनई मन,
पापिन पीर हूक दै उठतइ, पर पी लेवें नैनन,
कौआ रोज उड़ावें मसकाँ, मौ में लगी लगाम।।...

इतनी लिखदई तौउ न चेते, तौ बिटिया न पैहौ
मेरो मरबो सुन तन खन तुम, रो-रो कें मर जैहों
मेरो कछु ना बिगरै बापू, तुम हुइयौं बदनाम।।...

- जालौन (उ.प्र.)

वीरांगना अवन्तीबाई : साहित्य के झरोखे से

- डॉ. डी.पी. खरे 'प्रसाद'

हर घर का स्वाभिमान जगाती हैं बेटियाँ।
देश का सम्मान बढ़ाती हैं बेटियाँ।
जब कभी गर्दिश में पड़ा देश हमारा,
देश हित गर्दन भी कटातीं हैं बेटियाँ।

भारत भूमि वीर प्रसूता है। भारतीय इतिहास वीरों की अमर गाथाओं को संजोये उनके त्याग, शौर्य और बलिदानों से भरा हुआ है। शहादत के प्रति भारतीयों के मन में बहुत मोह है। यदि शहादत किसी नारी की होती है तो मोह बहुत गहरा होकर श्रद्धा की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है।

देश पर प्राण न्यौछावर करने वाली भारतीय नारियाँ कभी भी पुरुषों से पीछे नहीं रही। वे सदैव पुरुषों की प्रेरणा शक्ति बनकर जनमानस में अमर हो गईं। यह दूसरी बात है कि इतिहासकारों ने उनके बलिदान को कभी कमतर आंकते हुए उन्हें यथेष्ठ स्थान नहीं दिया हो।

ऐसी ही वीरांगनाओं में रामगढ़ राज्य की रानी अवन्ती बाई लोधी का नाम आता है, जिसने अपनी सूझबूझ और कुशाग्र बुद्धि तथा रणकौशल से न केवल अंग्रेजों को अपने पराक्रम का लोहा मनवाया अपितु अनेक देशी राजाओं, जागीरदारों, शूरवीरों में अद्वितीय छाप छोड़ी।

अवन्ती बाई जमींदार गुलजार सिंह[१] की इकलौती बेटी थीं। इनका जन्म १६ अगस्त १८३१ को मध्यप्रदेश के सिवनी जिले के मनखेड़ीग्राम[२] में माँ दुर्गा के आशीर्वाद से हुआ था। गौंड़वाने में इन्हें रानी दुर्गावती का अवतार कहे जाने की चर्चायें हुआ करतीं थी। वे बचपन से ही वीरों की कहानियां सुनने, अखाड़ों में तलवारबाजी के खेल देखने में न केवल काफी उत्साहपूर्वक भाग लेतीं, अपितु अपनी सहेली मुगिया के साथ अपने घर के अखाड़े में तलवार, कटार, भाला आदि चलाने का अभ्यास करते हुए प्रवीण हो चुकी थी।

अवन्ती बाई ने बचपन में ही घुड़सवारी सीख ली थी। एक बार उन्होंने अपने गांव के ही साथी राखन सिंह को, जिसने इन्हें घुड़सवारी सिखाई थी, तेंदुआ के मुंह में से बचाया था। इस घटना से उनकी बहादुरी और पराक्रम की चर्चायें घर-घर में होने लगी थी।

उन दिनों राजा शंकर शाह गढ़मण्डला के यशस्वी राजा थे। उनका सभी दूर आदर और सम्मान था। वे अवन्तीबाई के पिता से मित्रवत व्यवहार किया करते थे। मित्र की इच्छा जानकर अवन्तीबाई का विवाह रामगढ़ के राजा लक्ष्मण सिंह के इकलौते राजकुमार विक्रमाजीत लोधी के साथ शिवरात्रि को सम्पन्न कराया था।

रामगढ़ के प्राचीन दुर्गा मंदिर में नवदुर्गा की पूजा के समय राजकुमार विक्रमाजीत के कहने पर इन्होंने तलवार के एक ही वार से भैंसा की गर्दन काट कर बलि दी तब उपस्थित जन समुदाय ने रानी की वीरता की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए जयनाद किया था।

रानी अवन्तीबाई के दो पुत्र पैदा हुए थे। बड़े पुत्र का नाम जगावर सिंह[३] तथा छोटे का नाम शेर सिंह था। कालान्तर में राजा विक्रमाजीत का मन राजकाज से उचट गया और उन्हें कुछ वैराग्य सा होने लगा। वे घण्टों नदी में स्नान करते रहते थे। उन्हें कुछ मानसिक विक्षिप्तता भी होने लगी थी। डलहोजी की हड़पनीति ने रामगढ़ को भी कोर्ट आफ वाईस कर अपने अधीन ले लिया था। रानी अवन्तीबाई पर एक साथ विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। इधर अंग्रेजों ने उनके राज्य को हड़प लिया और उधर उनके पति का स्वर्गवास हो गया।

रानी ने हिम्मत नहीं हारी और उन्होंने अंग्रेजों से बदला लेने के लिए कमर कस ली। उनकी वीरता, देशप्रेम, शौर्य और बलिदान को लेकर हिन्दी साहित्य में उपन्यास, काव्यादि लिखकर साहित्यकारों ने यथेष्ट सामग्री प्रदान की।

ऐतिहासिक उपन्यास सम्राट वृन्दावन लाल वर्मा ने रानी अवन्ती बाई पर आधारित एक उपन्यास लिखा था। दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास 'रक्तगंगा' इकबाल देवसरे ने सन् १९८१ में प्रकाशित कराया। यह एक श्रेष्ठ उपन्यास है जो रानी अवन्तीबाई के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। काव्य के क्षेत्र में डॉ. दुर्गा प्रसाद 'दुर्गेश' न रानी अवन्ती बाई पर केन्द्रित वीररस का एक उत्कृष्ट खण्डकाव्य 'बलिदान' की रचना की जिसे पढ़कर कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा रचित रानी लक्ष्मीबाई पर आधारित कविता 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' की याद ताजा हो जाती है।

रामगढ़[४] की रानी अवन्तीबाई विलक्षण प्रतिभा और कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न नारी थी। बात उस समय की है जब गढ़मण्डला के राजा शंकरशाह अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करने हेतु विजयादशमी की तिथि निश्चित कर चुके थे और अपने विश्वसनीय सरदारों के माध्यम से मौखिक रूप से समीपस्थ राजाओं, जागीरदारों तथा योद्धाओं को भिजवाना प्रारम्भ कर दिया था।

यद्यपि कुछ लोग इतनी देर तक इंतजार करने के पक्ष में नहीं थे, किन्तु संदेश सभी जगह भेजने और सैन्य संगठन को सुदृढ़ करने की दृष्टि से यह आवश्यक भी था। 'रक्तगंगा' के आध ार पर रानी अवन्तीबाई की सूझबूझ से संदेश भेंजने का एक विलक्षण तरीका बड़ा कारगर हुआ। रानी ने कपड़े की छोटी छोटी थैलियों में चूड़ियाँ, बिन्दी तथा एक छोटी गोली जिसमें दो पंक्ति का संदेश लिखा रहता था अनेक जागीरदारों, वीर क्षत्रियों, ५२ नम्बर की पलटन के जवानों तथा अंग्रेजों के विरुद्ध जय स्वदेश का नारा देने वाले स्वतंत्रता प्रेमियों[५] के पास भिजवाना प्रारम्भ किए। इन थैलियों को सिवनी, मण्डला, सागर, जबलपुर, दमोह, नरसिंहपुर, बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड के उत्साही वीरों के पास

भी भेजा गया। इस संदेश की भाषा पढ़कर वीरों में एक नई चेतना जाग उठी। वे अंग्रेजों के खिलाफ यथाशीघ्र विद्रोह करने के लिए तैयार हो गये। यहाँ तक कि जब राजा शंकर शाह को इस संदेश की भाषा पढ़ने को मिली तब वे रानी की विलक्षण बुद्धि की प्रशंसा करते न अघाते। संदेश में लिखा था कि –"देश हित के लिए हथियार हाथ में पकड़ो। प्राणों की बलि चढ़ाओ या हाथ में चूड़ियाँ पहन कर और माथे पर बिन्दी लगाकर घर में घुसे बैठे रहो।"

विश्व इतिहास में ऐसे कम ही दृष्टान्त मिलते हैं, स्काटलेण्ड के पहाड़ी प्रदेशों में सलीव भेजकर लोगों में उत्तेजना फैलाई जाती थी। उधर आर्स्कोइन ने भी लिखा है कि उन्हीं दिनों जनवरी मास में जिले के अधिकाँश भागों में छोटी-छोटी रोटियाँ भेजी जाती थी।

'वही' कंडिका ११-१३ में इस बात का उल्लेख किया गया है कि मई १८५७ में ऐसी कथायें प्रचलित की गई थी कि शासन के आदेश से घी, आटा और शक्कर में क्रमशः सुअर की चर्बी, गाय का रक्त और हड्डियों का चूरा मिलाया गया है।

इधर अंग्रेजों को जबलपुर में विद्रोह की कुछ सुगबुगाहट की खबरें मिलने लगी थीं। राजा शंकरशाह जो गढ़मण्डला छोड़कर जबलपुर के समीप 'पुरवा' ग्राम में रह कर क्रान्ति के लिए आधार तैयार कर रहे थे। शंकरशाह द्वारा अपने राज्य से निष्कासित कारिन्दा गिरधारी दास और जमीदार शेर अली ने डण्डे शाह बनकर शंकरशाह द्वारा विजयादशमी की तिथि का भण्डाफोड़ किये जाने से जबलपुर के डिप्टी कमिश्नर क्लार्क ने १४ सितम्बर १८५७ को पुरवा ग्राम में पिता पुत्र को गिरफ्तार कर लिया था। गिरधारी दास और जमीदार शेर अली की गद्दारी से राजा शंकरशाह और उनके बेटे रघनाथ शाह को १८ सितम्बर १८५७ को मेजर असकिन जो मध्यप्रदेश का प्रधान कमिश्नर था, ने एक फर्जी कोर्ट का नाटक रचते हुए मौत की सजा देकर तोपों के मुँह से बंधवाकर दोनों बाप-बेटों को तोप के गोलों से उड़वा दिया था।

अंग्रेजों के उक्त नृशंस कार्य ने भारतीयों में खासकर ५२ नम्बर की पलटन के सैनिकों में विद्रोह की लहर दौड़ पड़ी तथा उसी रात्रि सूबेदार बल्देव तिवारी के नेतृत्व में ५०० सैनिकों के कैम्प छोड़कर समीप के पाटन थाने पर हमला कर अपने कब्जे में कर लिया।

थैलियों वाले संदेश ने गौंड़याना क्षेत्र में इस प्रकार की जागरूकता की लहर दौड़ाई कि सभी ओरसे रानी अवन्ती बाई को नेतृत्व करने और उनके साथ मर मिटने को तैयार हो गये। इधर उत्तर भारत में झाँसी, कालपी, ग्वालियर, लखनऊ, कानपुर दिल्ली में पहले से बगावत प्रारम्भ हो चुकी थी।

नवम्बर १८५७ को सोमवार के दिन रानी अवन्ती बाई ५०० किसानों के साथ रामगढ़ का किला छोड़कर क्रमशः घुघरी, रामनगर, विछिया, नारायनगंज थानों को अपने कब्जे में करती हुई मण्डला की ओर कूच कर गई। मण्डला का डिप्टी कमिश्नर वाडिंगटन किला छोड़कर समीप की पहाड़ी पर रानी अवन्तीबाई से मोर्चा लेने को तैयार खड़ा था। भीषण लड़ाई छिड़ी, अवन्तीबाई की वीरता के सामने अंग्रेजों के पैर उखड़ने लगे। रानी मारकाट करती हुई अपने घोड़े पर सवार होकर आगे बढ़ी, अंग्रेज सैनिक भागते हुए नजर आ रहे थे। सामने वाडिंगटन दिखाई दिया। रानी ने तलवार का वार करना चाहा। वहाँ अपनी मौत पक्की समझकर वाडिंगटन रानी के चरणों में अपना सिर झुका कर प्राणदान की याचना करने लगा –

"मुझे बचा दो हे रण चण्डी, मैं खुद ही थर्राया हूँ।
आज आपसे निज प्राणों की, भीख मांगने आया हूँ।।" (बलिदान से)

रानी की तलवार उठी ही रह गई। वाडिंगटन को रानी ने प्राणदान दिया। उसे जबलपुर लौट जाने दिया गया। रानी की उदारता और हृदय की विशालता की जितनी प्रशंसा की जाय, कम ही है। बाद में वाडिंगटन के बेटे को जब रानी के कुछ सैनिक पकड़कर लाये तो रानी ने उसे भी तत्काल सुरक्षित उसकी माँ के पास भेज दिया। अपने बेटे हार्डी को सुरक्षित वाडिंगटन की पत्नी ने रानी अवन्तीबाई की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए सच्ची वीरांगना निरूपित कर कृतज्ञता व्यक्त की।

इतिहास पुनः दोहराया गया। पृथ्वीराज चौहान के साथ जिस प्रकार विश्वासघात हुआ था, ठीक उसी प्रकार रानी अवन्तीबाई के साथ भी हुआ। वाडिंगटन ने जबलपुर पहुँचकर रानी अवन्तीबाई से बदला लेने की योजना बनाई और कुछ ही दिनों में अंग्रेजों को जैसे ही कामठी और नागपुर से गोरों की छावनी से सहायता मिली, वह रामगढ़ की रानी द्वारा जीते गये सभी स्थानों को रौंदता हुआ रानी से बैर का बदला लेने रामगढ़ आ धमका।

रानी ने अपनी योजनानुसार रामगढ़ किला खाली कर दिया था। वह अपने विश्वसनीय सरदारों और लड़ाकों के साथ समीप की पहाड़ी देवहारगढ़ के जंगलों में अंग्रेजों को छापा मार युद्ध से पराजित करने के लिए मोर्चा सम्हाले थीं। वाडिंगटन के पास बहुत अधिक सैन्यबल व भारी तोपें थीं। २० मार्च १८५८ को एक मुठभेड़ में रानी को एक अंग्रेज सैनिक की गोली ने पाँव से जख्मी कर दिया। वह घोड़े से नीचे आ गई। उसने अपनी बन्दूक से वाडिंगटन को निशाना बनाया। फायर थोड़ा चूक गया और वाडिंगटन का देह उड़ाती हुई गोली निकल गई। रानी चारों ओर से अंग्रेज सैनिकों से घिर गई। उसने अपने समीप खड़े ठाकुर उमराव सिंह की तलवार छीन कर अपना हृदय चीर डाला।

वाडिंगटन ने युद्ध बंद कर दिया और रानी अवन्ती बाई की चिता को अंतिम सलामी दी। धन्य है वीरांगना अवन्तीबाई का बलिदान, जिसने भले ही अंग्रेजों से झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के बाद विद्रोह किया, किन्तु रानी लक्ष्मीबाई से पहले शहीद[६] हो गई।

हिन्दी साहित्य में 'बलिदान' खण्डकाव्य तथा 'रक्तगंगा' ऐतिहासिक उपन्यास यद्यपि दोनों ही श्रेष्ठ हैं, किन्तु कुछ तिथियों सम्बन्धी भूलें इन दोनों में परिलक्षित होती हैं, जो खटकने वाली हैं। इन पंक्तियों के लेखक का उद्देश्य इन भूलों की ओर इंगित

करने का आशय इन ग्रंथों को कमतर आंकना नहीं है, बल्कि भावी शोधकर्ताओं को तिथियों की वास्तविकता से अवगत कराते हुए इन ग्रंथों को दोष रहित कर भावी प्रकाशन हेतु सुझाव देना है। 'बलिदान' खण्डकाव्य में डॉ. दुर्गेश के निम्नांकित छंद दृष्टव्य हैं-

तेइस नवम्बर सन सन्तावन, पावन पर्व हमारा है।
बलिदानी वीरों की बहती, शिरशोणित की धारा है।
रानी बढ़ी रामगढ़ पहुँची, अपना झण्डा फहराया।
मार भगाया दुश्मन दल को, उन अरियों को थर्राया।।(११४)

(इसके आधार पर रानी अवन्ती बाई ने २३ नवम्बर १८५७ को अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का शंखनाद किया)

"हँसते हँसते बीस मार्च को, स्वयं भोंक ली तीक्ष्ण कटार।
मार्ग प्रदर्शित कर वीरों का, रानी गई थी स्वर्ग सिधार।।"(२१४)
"बीस मार्च सन सन्तावन को, एक श्रेष्ठ बलिदान हुआ।
युगों युगों तक याद रहेगा, ऐसा कार्य महान हुआ।
महापुण्यमय तीर्थ क्षेत्र पर, वीर निरन्तर जायेंगे।
वीर अवन्तीबाई जी के, यश के गीत सुनायेंगे।"(२२३)

(इस पंद्यांश के आधार पर अवन्तीबाई का बलिदान २० मार्च १८५७ दिया है, जो निश्चित ही त्रुटिपूर्ण है) यह २० मार्च १८५८ होना चाहिए।

इसी प्रकार पद्यांश क्र. २०३ में प्रयुक्त शब्द 'अबला' भी रानी अवन्तीबाई के लिए उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। पंक्ति दृष्टव्य है –

"लड़ते लड़ते उस अबला का, घोड़ा स्वर्ग सिधारा था।"

ज्यादा उपयुक्त होता –

"लड़ते लड़ते रणचण्डी का, घोड़ा स्वर्ग सिधारा था।"

'रक्तगंगा' उपन्यासकार ने रानी अवन्तीबाई के पिता का नाम न लिखकर उन्हें 'जमींदार' सम्बोधित किया है। ऐतिहासिक उपन्यास में नाम व तिथियाँ सही-सही लिखने से इसकी प्रामाणिकता बढ़ जाती है।

इसी उपन्यास में रानी के बलिदान की तिथि शनिवार १८ मार्च १८५८ लिखी गई है। हिसाब लगाने से १८ मार्च १८५८ को बुधवार का दिन पड़ता था।

दूसरा तिथि सम्बन्धी दोष 'रक्तगंगा' के पृष्ठ क्र. ३१२ पर दिये गये निम्नलिखित कवित्त से परिलक्षित होता है –

"प्रबल प्रचण्ड विकराल कालिका सी दौर,
मोरचा फिरंगिन को मार मार जीते हैं।
बैरी तज युद्ध चलयो मारग में घेरियो धाय,
सूत्यो मुख छटपटात प्राण भय भीते हैं।
गहि पग जीवदान माँगत सो छाँड़ दियो,
रामगढ़ की रानी के कारज पुनीते हैं।
धन्य मदन योग युद्ध दया दान आयु अबे,
बरस छब्बीस गये सात मास बीते हैं।"

उक्त कवित्त का तात्पर्य है कि रानी अवन्तीबाई ने वाडिंगटन को जब प्राण दान दिया तब रानी की उम्र २६ वर्ष ७ माह की थी। इसे रानी की जन्मतिथि १६ अगस्त १८३१ में जोड़ने पर यह तिथि १६ मार्च १८५८ आती है।

उपन्यासकार ने पृष्ठ ३१६ पर यह उल्लेख भी किया है कि रानी को अभियान से लौटे दो ढाई महीने बाद ही रामगढ़ पर चढ़ाई की तब फिर उपन्यासकार द्वारा १८ मार्च १८५८ को रानी के बलिदान की तिथि लिखना संदिग्ध हो जाता है।

हाँ! यदि उक्त कवित्त की अंतिम पंक्ति में सात मास के स्थान पर चार मास कर दिया जाय तो यह विसंगति समाप्त हो सकती है।

इन पंक्तियों के लेखक को टीकमगढ़ नगर में शासकीय वीरांगना अवंतीबाई लोधी कन्या महाविद्यालय के तथा बलिदान की तिथि २० मार्च का लेख पढ़ने को मिला। बलिदान की तिथि तो सही है, पर ज्यादा अच्छा होता कि वहाँ पर सन् १८५८ भी लिख दिया जाता।

रानी अवन्ती बाई का बलिदान भारतीय प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, जो सन् १८५७ में प्रारम्भ हुआ था, के इतिहास में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के पूर्व हो चुका था[७] और वह भी बहादुरी से अंग्रेजों से टक्कर लेने तथा उन्हें परास्त करने के उपरान्त उतना ही महत्व रखता है, जितना रानी लक्ष्मीबाई का बलिदान। इस प्रकार अवन्तीबाई के बलिदान को इतिहास में स्थान न देकर न्याय नहीं किया गया, जिसे पुनः लिखने की आवश्यकता है।

संदर्भ -

१. अवन्तीबाई के पिता का नाम डॉ. दुर्गेश ने 'बलिदान' खण्डकाव्य में राव जुझार सिंह लिखा है। देखें छन्द क्र. २२

२. मनखेड़ी ग्राम का नाम अवन्तीबाई पर केन्द्रित ऐतिहासिक उपन्यासकार इकबाल बहादुर देवसरे ने 'रक्तगंगा' में 'मनकहड़ी' तथा डॉ. दुर्गेश ने 'बलिदान' में मनकेड़ी दिया है जो वास्तव में मनखेड़ी के ही अपभ्रंश हैं।

३. रानी अवन्तीबाई के बड़े पुत्र का नाम 'बलिदान' खण्डकाव्य तथा 'रक्तगंगा' उपन्यास में अमान सिंह लिखा है जबकि म.प्र. पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा प्रकाशित कक्षा ५ की हिन्दी भाषा की पुस्तक 'भारती' में पृष्ठ क्र. १०१ पर जगावर सिंह दिया गया है।

४. इतिहासकार रामगढ़ को पृथक राज्य ही नहीं मानते। यह एक जागीर थी जिसे लक्ष्मण सिंह के पूर्वजों को महाराजा निजाम शाह ने एक नरभक्षी सिंह/बाघ को मार डालने के उपलक्ष में प्रदान की थी। यह मण्डला राज्य की जागीर थी। बाद में अन्य जागीरों की तरह यह भी स्वतंत्र राज्य बन गया था।

५. जय स्वदेश का नारा 'सलेमानाबाद' की छावनी में ५२ नम्बर की पल्टन के सिपाहियों ने अंग्रेजों से बगावत कर छाँवनी छोड़ते समय दिया था। (रक्तगंगा, पृ. २४८)

६. रानी झाँसी – लक्ष्मीबाई का शहीद/बलिदान दिवस बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास पृष्ठ ३७२-७३ में डॉ. पी.के. त्रिपाठी ने १६ जून १८५८ लिखा है।

७. रामगढ़ की रानी अवन्ती बाई का बलिदान दिवस २० मार्च १८५८ है 'रक्तगंगा' उपन्यास में यह १८ मार्च १८५८ दिया गया है। (देखें पृ. ३५२)

– प्रसाद कॉलोनी, शहीद स्टेडियम के पास,
टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली लोकगीतों में श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव

- डॉ. हरिमोहन पुरवार 'बुन्देलरत्न', उरई

भगवान श्रीविष्णु के चौबीस अवतारों में श्रीकृष्ण अवतार ऐसा अवतार है जिसमें श्रीकृष्ण सम्पूर्ण कलाओं से युक्त हैं। अन्य अवतार श्री विष्णु के अंशावतार कहे जाते हैं। जबकि श्रीकृष्ण अवतार पूर्ण अवतार माना जाता है। दुष्टों का दमन, अत्याचारियों का मर्दन तथा धर्म की स्थापना ही इन अवतारों का प्रमुख उद्देश्य होता है। द्वापर में जब कंस का अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार सीमा से अधिक बढ़ गया तो देवताओं की प्रार्थना पर श्रीविष्णु का कृष्ण अवतार के रूप में प्राकट्य हुआ।

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुणाश्रयः।
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः।।[१]

अर्थात - सबके हृदय में विराजमान भगवान विष्णु देवरूपिणी देवकी के गर्भ से प्रकट हुये, जैसे पूर्व दिशा में सोलहों कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा का उदय हो गया हो।

मथुरा के महाराज कंस को आकाशवाणी द्वारा ज्ञात हुआ था कि उसकी बहिन देवकी के आठवें पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु होगी। अतः जब श्रीकृष्ण ने जन्म लिया तब उनकी माता देवकी एवं पिता वासुदेव दोनों ही कंस की कारागार में बन्दी थे। भाद्रमास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में जब घनघोर अन्धकार छाया हुआ था। तेज बारिश हो रही थी। बिजली चमक चमक कर हृदयबेधी शब्द कर रही थी तभी लीलाधारी भगवान श्रीकृष्ण, का अवतरण हुआ।

अथ भाद्रासिताष्टम्यां प्रादुरासीत् स्वयं हरिः
ब्रह्मणाप्रार्थितः पूर्वं देवक्यां कृपया विभुः।।
रोहिण्यर्क्षे शुभतिथौ दैत्यानां नाशहेतवे।
महोत्सवं प्रकुर्वीत यत्नतस्तद्दिने शुभे।।[२]

अर्थात - भाद्रपदमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को पूर्वकाल में स्वयं श्रीहरि-ब्रह्मादि देवों की प्रार्थना पर दैत्यों के विनाश हेतु रोहिणी नक्षत्र युक्त शुभ तिथि में माता देवकी के उदर से अनुग्रहपूर्वक प्रकट हुए।

मथुरा की सीमा के निकट ही बुन्देलखण्ड की सीमा है। अतः मथुरा में होने वाली क्रियाकलापों का सीधा प्रभाव बुन्देलखण्ड पर भी पड़ता है। मथुरा में श्रीविष्णु स्वयं श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुये तो इस महान घटना से बुन्देलखण्ड कैसे अनभिज्ञ रहता। यहां का लोक मानस भी श्रीकृष्ण जन्म के विषय में कहने लगा-

रात अँधिरिया, चमकै बिजुरिया, पानी घन घन होत।
भादौं बदी अष्टमी खों दिन, हवा सन्न-सन्न सन्नात
नक्षत्र रोहिनी जैसेई आयो, कंस जेल उजियार होत।
प्रगटे विस्नु चतुर्भुज धारी, बसुदेवकी हर्स होत।
रूपधरो बालक की नांई, ऊंऊं करके रोत।।
आये किसन कनइया देखौ, सब सखियाँ बलैयां लेत।।[३]

इधर मथुरा में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया उधर ब्रज में महामाया ने जन्म लिया। वसुदेव जी ने एक सूप में श्रीकृष्ण जी को लेकर कारागार से जब ब्रज में जाने का मन बनाया तो कारागार के सभी प्रहरी नींद में सो गये। फाटकों के ताले अपने आप खुल गये। वसुदेव की बेड़ियां स्वतः टूट गयीं और वसुदेव जी सूप में श्रीकृष्ण को लिटाकर बगैर बाधा के ब्रज की ओर चल दिये। रास्ते में यमुना नदी थी। यमुनाभी अपने स्वामी के पद प्रच्छालन हेतु हिलोरें लेने लगी और जब श्रीकृष्ण ने अपने अंगूठे से यमुना का स्पर्श किया तो यमुना भी शान्त हो गयीं। वसुदेव जी नन्दबाबा के घर गये। वहां भी सभी योगमाया की माया के वशीभूत प्रगाढ़ निद्रा में थे। वसुदेव जी ने यशोदा के यहां श्रीकृष्ण को लिटा दिया और उनके यहां जन्मी योगमाया कन्या को उठाकर वापिस मथुरा आ गये। उनकी बेड़ियां लग गयी जेल के फाटक बन्द हो गये। ताले लग गये और प्रहरी गण पुनः पूरी सतर्कता के साथ पहरा देने लगे। इधर गोकुल में शोर हो गया कि जसोदा रानी के पुत्र पैदा हुआ है। बुन्देली जनमानस को कन्या बदलने की जानकारी थी। अतः पुत्र के बदले कन्या ले जाने की उल्टी रीत के विषय में यहां गाया गया है -

उल्टी रीत भई गोकुल में कन्या दे गोपाल लये।
कौना जाये कौना खिलाये, कौना के लाल कहाये।
देवकी ने जाये, जसोदा खिलाये, नन्द के लाल कहाये।
काहे के छुरा नरा छीनियो, काहे खपर असनान।
सुन्ने छुरा नरा छीनियो, रूपे खपर असनान।
काहे के सूप संजोइयो, काहे के आखत डार दये।
उरहई के सूप संजोइयो, मुतियन आखत डार दये।।[४]

परमप्रभू परमेश्वर श्रीहरि विष्णु की योगमाया के कारण बच्चों की अदला बदली हो गयी और किसी को कुछ भी पता नहीं चला। यहां तक कि माता यशोदा को भी ज्ञात नहीं हुआ कि उनके यहां कन्या जन्मी थी और अब ये पुत्र कहां से आ गया। उन्हें तो बस लगा कि नन्दलाल आ गये हैं और वे कहने लगीं -

मोरे डरे, डरे कहरांय, गोविन्दलाल भौं में डरे।
मोरे डरे डरे कहरांय, गोपाल लाल भौं में डरे।
जाय जो कैयो उन राजा ससुर से, थैली देंय लुटाय।
गोविन्दलाल भौं में डरे।
जाय जो कैयो रानी सास से, चरुवा देंय चढ़ाय।
गोविन्दलाल भौं में डरे।।[५]

प्रातःकाल पूरे गोकुल में शोर हो गया कि यशोदा रानी ने पुत्र को जन्म दिया है। बस फिर क्या था। बधाईयां बजने लगीं। लेकिन धीरे धीरे सुनगुन भी हो रही थी कि ये कैसा चमत्कार हुआ

कि यशोदा ने पुत्री को जन्म दिया और फिर वह पुत्र कैसे हो गया? यशोदारानी ने खुद ही नन्दबाबा से कह दिया कि मैंने तो नन्दलाल को जन्म दिया, पुत्री के विषय में आप स्वयं जाने -

भोर भये भुनसारे, ललन प्यारे हो गये महाराज।
धीरे धीरे बाजें बधैयां, धीरे सखी सोहरे महाराज।
जै सुन पैहै ननदिया, हार मोरे लै लैहे महाराज।
भोर भये भुनसारे, ननदबाई आ गई महाराज।
कैसे बाजें धीरी बधैयां, कैसे धीरे सोहरे महाराज।
भौजी के जनमे नन्दलाल, कै घियारी महाराज।
बैया हम जनमे नन्दलाल, घिया तुम जानो महाराज।।[६]

यशोदा रानी ने पुत्र को जन्म दिया है। यह समाचार पूरे गोकुल में फैल गया। पूरे ब्रज मण्डल में सभी घरों की सफाई लिपाई हो गयी। उनमें सुन्दर जल का छिड़काव हो गया। वन्दनवारों से द्वार सजा दिये गये। पूरे ब्रज में उत्सव का सा वातावरण हो गया।

ब्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः।
चित्र ध्वज पताका स्त्रकचैल पल्लवतोरणैः।।[७]

भावार्थ - ब्रज मण्डल के सभी घरों के द्वार, आँगन और भीतरी भाग झाड़ बुहार दिये गये, उनमें सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया उन्हें चित्र विचित्र ध्वजा पताका, पुष्पों की मालाओं, रंग बिरंगे वस्त्र और पल्लवों की वन्दनवारों से सजाया गया।

पूरे ब्रज में आनन्द का वातारण है। एक गोपी को न जाने कैसे पता चल गया कि श्रीकृष्ण कन्हाई का जन्म तो मथुरा के कारागार में हुआ था। उस समय सभी पहरेदार निद्रा में थे। तब वसुदेव जी श्रीकृष्ण जी को लेकर यमुना पार करने के लिये यमुना में उतरे तो यमुना ने श्रीकृष्ण जी के पैर छू लिये। वह गोपिका इन सब तथ्यों को अपने पेट में पचा नहीं पाई और गाने लगी-

आली ब्रज में महाराज भये
सखी ब्रज में गोपाल भये।
जब हरि जनम लये मथुरा में
जगत पहरुवा सोय रहे।
लै वसुदेव चले गोकल खों
झपट के जमना मैया चरण गहे।।[८]

उस गोपी का यह गायन किसी तरह से यशोदा रानी के कान में भी पड़ा। परन्तु उन्होंने उसकी परवाह नहीं की। उनका अपना विश्वास था कि उन्होंने तो नन्द के पुत्र को जन्म दिया है। इसलिये वे तो पुत्र प्राप्त कर मगन थी। मन प्रफुल्लित था। वे कह रहीं थीं -

मोरे नन्द भये अनंद बंधाओरी।
मोरे नन्द भये अनंद बंधाओ री। मोरे नन्द भये
गउवा के गोबर मंगाओ जसोदारानी
ढिग घर अंगना लिपाओ, मोरे नन्द भये
मुतियन चौक पुराओ जयोदारानी
चंदन पटली धराओ, मोरे नन्द भये
रानी जसोदा रानी चौके आई
हीरा लाल लुटाओ री मोरे नन्द भये
लोपन फेर धराओ जसोदा रानी
सखियन मंगल गाओ री।।[९]

हर्ष और आनन्द के सागर में पूरा ब्रज गोते लगा रहा है। जच्चा और बच्चा दोनों स्वस्थ हैं। माँ ने भी अब घर के और दूसरे काम काज करना प्रारम्भ कर दिया है। अब गोपाल को कनियां में न लेकर उन्होंने झूले में लिटा दिया है। यशोदा रानी किसी काम में ऐसी व्यस्त हो गयीं कि उन्हें कृष्ण कन्हाई की सुध ही नहीं रही। तभी कन्हाई रोने लगे। कोई गोपी वहां से जा रही थी। उसने कन्हाई का रुदन सुना तो कहने लगी -

झुला दे मैया श्याम परे पलना।
काहू गुजरिया की नजर लगी है,
सो रोउत है ललना।
झुला दे मैया श्याम परे पलना
राई नोन उतारो जसोदा, खुसी भये ललना
जो मोरे ललना को पलना झुलै हैं,
ताहे देहौं जड़ाऊ ककना
झुला दे मैया श्याम परे पलना।।[१०]

गोपी की बात पर यशोदा रानी का कोई ध्यान नहीं गया। तो वह गोपी स्वयं पालने में पड़े श्रीकृष्ण कन्हाई को झुलाने लगी। इधर यशोदा माता को पुत्र की याद आई तो दौड़ती-दौड़ती पालने के पास आई। देखा कि सखी पालने में पड़े गोपाल को झुला रही है और बड़े ध्यान से मनमोहन की मोहनी सूरत देख रही है। उसका ध्यान भंग करते हुये यशोदा रानी कहती हैं -

मनमोहन उदक नें जांय री।
पनमोहन उदक नें जांय री हमारे, धीरे झुलाव सखि पालने।
काहे को पलना बनो है, काहे के बुने हैं बुनाव, हमारे
चंदन के पलना बने, रेसम के बुने हैं बुनाव, हमारे...
सबरे बिरज की सखियां जुर आई, घाल लयरी पलने, हमारे...
जो मोरे ललना खों पलना झुलैहे, देहों जड़ाऊ ककना, हमारे...।।[११]

सायं बेला थी। मनमोहन झूला झूलते हुये सो गये। रात बीत गई। सवेरा हो गया। यशोदा रानी गोपाल के पास जाती हैं। उन्हें नींद से जगाते हुये कहती हैं कि उठो लाल सवेरा हो गया है। कुल्ला कर लो। उस पूरे दृश्य का सुन्दर चित्रण निम्नवत करते हुये बुन्देलखण्ड में गाया जाता है -

उठो मोरे हरजू भये भुनसारे, गइअन के बंद खोलो सबारे।
उठो मेरे हरजू दातुन कर लो, दातुन करो मोरे कुंजबिहारी।
काये के दातुन, काये को गड्डुवा, काये को जल भर ल्याई जसोदा।
झारे की दातुन, सोने को गड्डुवा, जमना को जल भर ल्याई जसोदा।।[१२]

इधर कन्हैया उठकर दातुन आदि करके निवृत्त हो रहे हैं, उधर यशोदा मैया अपने नन्दलाल के लिये कचरी, पापड़, सेव आदि भांति भांति के व्यन्जन बना रही है। उसका लाल आयेगा। सुन्दर-सुन्दर पकवान खायेगा और यशोदा मैया अपने हाथों से

अपने लला को भोजन कराती है -

धर्म सिला पर बैठी जसोदा, अपने कनइया खौं रचती कलेवा।
कच्चर, पापर, सेव, सिंगारे, मालपुवा मन मोहन प्यारे।
इंजन विंजन सरस निगौना, वेसन के दस बीसक दौना।
जैवें 'कृष्ण जुआवै' जसोदा, बाव-ढुरैं प्यारी रुक्मिन राधा।।[१३]

भगवान श्रीकृष्ण का जन्म इस प्रकार से ब्रज में हुआ। पूरा बृज धाम उत्सव के रंग में रंगा है। सब ओर आनन्द ही आनन्द है। सभी पुरवासी हर्ष और उल्लास से भरे हुये हैं। चारों ओर बधाई हो बधाई हो का शोर गूंज रहा है। मन को मोहने वाली बधाइयों का तांता लगा है -

मनहरन बधाई बाजै
मनहरन बधाई बाजै, भूप भवन सुख साजें
सरस राग बजे सहनाई, नौवद घन मन लाजे
सुवरन सींक सवार सांतिया, नृप दरवाजे म्राजे
तोरन धुजा बंधे चहुं ओरन, रतन लुटत जनु लाजें
मांगध बन्दीजन बहुनिधि, मन भावत छवि छाजे
बरसगांठ मनहरन लालकी, भक्ति जनन सुखकाजे
मनहरन बधाई बाजै।।[१४]

आज श्रीकृष्ण जन्मोत्सव की यह आनन्द रस बरसाने वाली परम्परा समूचे देश में ही नहीं वरन् विदेशों में बसे भारतीयों के मन में भी हर्ष और प्रेम की पवित्र गंगा बहा रही है। सब ओर केवल एक ही धुन सुनाई पड़ रही है -

नन्द के आनन्द भयो, जै कन्हैया लाल की,
हाथी दीनी, घोड़ा दीनी और दीनी पालकी
नन्द के आनन्द भयो, जै कन्हैया लाल की।।[१५]

सन्दर्भ -

१. श्रीमद् भागवत् दशम स्कन्ध तृतीय अध्याय, शलेक संख्या ८
२. कल्याण वृत पर्वोत्सव अंक वर्ष २००४, गीतमीतन्त्र, पृ. २३०
३. लोकगीत संग्रह भाग ४, बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई
४. बुन्देली लोकगीत - शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. ६५
५. बुन्देली लोकगीत - शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. ६२
६. बुन्देली लोकगीत - शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. ४७
७. श्रीमद् भागवत् दशम स्कन्ध पंचम अध्याय, श्लोक संख्या ६
८. बुन्देली लोकगीत, शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. ६४
९. बुन्देली लोक काव्य-१, डॉ. बलभद्र तिवारी, पृ. २६
१०. बुन्देली लोकगीत - शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. ७२
११. बुन्देली लोक काव्य-१, डॉ. बलभद्र तिवारी, पृ. ३१
१२. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य - रामचरण हयारण मित्र, पृ. सं. ३२७
१३. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य - रामचरण हयारण मित्र, पृ. सं. ३२७
१४. बुन्देली लोककाव्य-१, डॉ. बलभद्र तिवारी, पृ. २४
१५. टी.वी. आस्था चैनल, दिनांक ४-६-२००७, प्रसारण

- भरत चौक, उरई
जिला जालौन (उ.प्र.)

बिरहा कौ बसकारौ

- चौ. शीलचन्द्र जैन 'शील'

पिया गये परदेश येइ सें, परो अकेलौ रानें।
कब की कसर काड़ रये जे, बैरी बदरा बरयानें।।

तेवरस प्यार करो तो घर की, चटकीं सब अतराँड़ी।
कुरवा खाड़ी टूटे खपरा, भुसा भये छै गाड़ी।।
मियाँ मियारी के भय तिरपट, झुक गये माल बड़े री।
जब सें वे परदेश गये, फिर दईना लौट कें फेरी।।
पल भर दे रस चाव न, वादरवा येसे गर्राने।।...

वँदरा, विलू, बुकरियों कौ, उतपात जात न देखो।
गई चुखरवन सें जो हरजा, ऊकौ कौन सरेको।।
परबे की का कयें बैठवे, कौ नइँ ठौर ठिकानों।
चूनन की उरियन खों धरिये, अब वासन काँ काँ नों।
मड़ा अटाई भरे धरे, जैसें पुरषान खदानें।।

रई उलीचत लयें कठौता, सें बखरी कौ पानी।
ऊँगी भोर तरइया हिन्नी हो गई 'नई' पुरानी।।
साँसी कहूँ मैं मोय भयो है, कोरी रात भियानों।
गलियारे कौ पूरौ पौरा, सामूँ पौर बहानों।।
लेन हमाये प्रान ओइ पै, दे दादुर दुदयानें।।

वैरन विजुरी चौंक करेजे, के कर रइ नौटूँका।
मोय सतावे मोरन के हूँका में परै न चूका।।
सैंयाँ की सुधि पिउ-पिउ कै कें, खंजन आग लगा रव।
पवन पुरविया सन-सन चलकें, सोवत काम जगा रव।।
घेरा डरे घनन के वचवें, काँ है ठौर ठिकानें।।

हो रइ हरइ बिना उनके, मैं रूठे सब घरवारे।
सास जिठानी नन्दी, उर जे पुरा परौसी न्यारे।
झूठे अनुवाँ मुलक लगावें, लरबे पूँछ उठायें।
मैं छोड़ों हिल्लौ तौ सवरे, फिरन लगें मौं वायें।।
भर गव जी लगतइ ऐसें कें चली जाँव वरसानें।।

करनें परतइ मोय गौशली, और मठा सोइ भानें।
गोवर, पानी, कुटना, पिसना, रोटी परत बनानें।।
ज्वार बाजरा के खेतन में भुन्टा परत रखानें।
हाड़ा हरिया सुबा लपक गय, उनखों सोइ उड़ानें।।
सोस अकेले मोय सबइ पै, सबरे घर खों खानें।।

पानी बिन सूनी नदिया, औ दन्त बिना ज्यों हाथी।
बिन बाती के दिया न सोहै, दूला बिना बराती।।
सैंयाँ बिन तैसई गत मोरी, ना कोउ धीर बदैया।
कैहौं सबई घरै आ जेहैं, जब ननदी के भैया।।
जेंहों लिपड़ 'शील' सें तब जौ, तातो जिया जुड़ानें।।

- बस स्टैण्ड, घुवारा, जिला छतरपुर

का कोऊ जानतौ

- डॉ. शंकर लाल शुक्ल

करौंटा ऐसौ लै जै समय,
का कोऊ जानत्तौ;
पइसा के लाने, नंगे हो जैं सबईं,
का कोऊ जानत्तौ।

वेपर्दा हो जैहै ज्वानी,
मूड़ सें ऊपर कड़ जै पानी
नंगी टांगे आदी छाती-
खोलें फिरहैं बिन्नू स्यानी,
लाज-सरम के उन्ना फट जैं, का कोऊ जानत्तौ।

कल तक जिनने बूंट उखारे,
और भैंसिया टरवाईं,
रायजनी कर, ओंड़े दैदये,
और डकैती डरवाईं।
दादागीरी पेली जमकें -
और मचाई तबाही;
बेई सब नेता बन गये,
चैरे पर सुरखी आई।
लूट डकैती औ हत्या में-
जिनके दोई हांत सने;
करम ठोक कै रै गये हमतौ-
गिरह मंत्री हैं बेई बनें,
ऐसिन के रखवारे, मुखमंत्री हूहैं।
का कोऊ जानत्तौ।
करौंटा ऐसौ लैजै समय - का कोऊ जानत्तौ।

देखी तुमने राजनीति?
इसको कहते हैं,
गुंडागर्दी मारपीट, जिसको सब सहते हैं।
लट्ठ और बंदूक संभारे रहो हांत में -
तौ चुनाव के महासमर सब हैं बोट तुम्हारे।
या फिर फेंको जमकें पइसा-
और पाउच पिलवाओ;
निर्वाचन के सब अधिकारी -
जेव में डारो, और विजयी हो जाओ।
देशभक्ति औ जनसेवा की, हवा हो गई बातें
एक बार घल गई अगर -
तो सोनें दिन चांदी की रातें।
ऊपर फक्का फक्क बगुला से -
अन्दर सब होजें हैं कारे - का कोऊ जानत्तौ।

जिन भइयन संग छोटे में हुदरात फिरे,
हिलमिल खेले खेल, बनाये घरमूला।
तालतलैयन संपरे, खेतन में लोरे,
दिन दिन भर साउन में झूलत्ते झूला।
ज्वानी अपऔं बिरानों लैकें चड़ आहै,
आंत हिलोरे भइया वे बैरी हो जैं -
का कोऊ जानत्तौ।
करौंटा ऐसौ लै जै समय - का कोऊ जानत्तौ।

अपयें देश के मौंड़न की -
अब ऐसी चाल बिगर गई।
गुटका पाउच, ब्राउन सुगर नें -
कैसी हालत कर दई।
हड़रा घुन हो गये हैं इनके-
सबरौ रकत बिला गऔ।
बाप मताई की कमाई कौ,
इनने खूब सिला दऔ।
इनकौ पेट पीठ सें मिल गऔ
चल रये झुके झुके से -
आँखें धँस गईं, गाल पिचक गये -
लग रये चुखें चुखे से।
ज्वानी में बूढ़े हो जै -
का कोऊ जानत्तौ।
करौंटा ऐसौ लै जै समय - का कोऊ जानत्तौ।

विश्व सुन्दरी बनकें आ गई,
अपयें देश की मौड़ी,
नारी मरजादा कौ हीरा-
बिक गओ दो कौड़ी।
गोरो शरीर अधनंगौ-आँखें बड़ी-बड़ी
नंगी टाँगें, केरा सी जाँगें
सबके बीच खड़ी।
फेंके उतार उन्ना सबरे
विश्व सुन्दरी के काजें,
खूँटा पै टाँगी मरजादा,
शर्म और लाजें।
ऐसी बिन्नू विश्व सुन्दरी -
बन जैं विदेश में जाकें,
बाप मताई धन्न हुयें -
ऐसी मौड़ी कौ पाकें -
का कोऊ जानत्तौ।
करौंटा ऐसौ लै जै समय - का कोऊ जानत्तौ।

- भाण्डेर, जिला दतिया (म.प्र.)

"बैरू भौजी"

- सुरेन्द्र तिवारी

(आकाशवाणी छतरपुर से १९८३ में बुन्देली का पहला हास्य धारावाहिक बैरू भौजी प्रसारित हुआ था, जिसनें लोकप्रियता के नये मानदण्ड स्थापित किये थे। इस धारावाहिक के दस अंक प्रसारित हुए थे। किन्तु उसके बाद इसका समापन कर दिया गया था। प्रारंभ के कुछ अंक रमाशंकर मिश्र, और गुणसागर शर्मा 'सत्यार्थी' ने लिखे थे और बाद के अंक आकाशवाणी के कार्यक्रम अधिकारी सुरेन्द्र तिवारी ने लिखे थे। यहाँ प्रकाशित किया जा रहा यह अंक २७ वर्ष बाद छप रहा है। जो आकाशवाणी से प्रसारित नहीं हो सका था। -संपादक)

पात्र -

भौजी - ४०-४२ वर्ष आयु

मोहन लाला - ३०-३२ वर्ष आयु

(भौजी पूरी तरह बहरी नहीं है, सुन बहरी है। मोहन उनका सगा देवर नहीं है, परन्तु भइया व भौजी को बहुत सम्मान देता है साथ ही मज़ाक का बहुत सहज स्वाभाविक रिश्ता है।)

मोहन - (घबराते हुये घर में प्रवेश करता है)
भौजी लगत आज पानी बरसैयाँ है

भौजी - नौनें रऔ नौनें लाला। आउतनई ठलुअई करन लगे।

मोहन - भौजी, अबे मेंने काय कै दओ ऐसी।
जेई तौ पूंछी कै आज पानी बरसैयां है

भौज़ी - औ जा ठलुआई न होय, अबै गर्मियन में ब्याव भओ रानी कौ अबई बच्चा हुबइयाँ हो गओ।

लाला - हुबइयाँ नोई कई भौजी। मैंने तौ जौ आय कई कि पानी बरसैयाँ है। (जोर से) पानी बरसैयाँ आय कई।

भौजी - तौ इत्ती जोर से काये आय चिचयात, सबरे कान झनझना जात तुमाये चिल्याबे सें।

लाला - और सुनों इनकी, मजे से बोलो सो सुनात नइया, जोर से बोलौ सो इनके कान फटत। औ मोरौ नइँ मूँड़ पिरान लगत तुमसे बतकाव करें में।

भौजी - काय जौ मोंई मों में बोल लेत। के तौ गरौ फार चिल्याहौ, के फिर कुठिया में गुर फोर लेत।

लाला - तुमाये लाने तौ मंगरे-पै गुर फोरौ तौ नई सुनानें।

भौजी - लाला देखौ हरदम की मसकरी मोय साजी नई लगत। जौ काय मंगली पै फावरौ धरानें। फावरौ कोनऊ गानों गुरिया आय का जौन गिरवी धर दो।

लाला - हे भगवान, भइया कैसे इनसे बतकाव कर पाउत हूँ है। बड़ी जबर करेजौ है उनकौ।

भौजी - मोय गरयाउत आव हौ का।

लाला - तुमें नोंई अपनी किस्मत खां आय कोस रओ, के कां सें तुम से भेरौ पर गओ।

भौजी - लाला जौ हमें साजौ नईं लगत, ठिकाने से कओ ओ काने होय। बरबरात से न बोले करे मो सें। पानी के छींटा परे तुमाये उन्नन पै, कां से आय जा फाग खिल आई।

लाला - कऊँ नई फाग खिली। बदरन के छीटे आँय।

भौजी - बंदरन के पीटे आँय। कां पीट ठोक दओ बंदरन ने तुमें। मोय तौ ऐन साजे दिखात।

लाला - हे भगवान मैं का करौं इनकौ, अंड कौ बंड सुन लेती फिर मूंड़ कोल खाती। (बनावटी क्रोध से तेज आवाज में चिल्लाकर) बंदरन के पीटे नोई, बदरन के छीटे आय कई। बाहर देखौ बादर है, बादर।

भौजी - ऐसें काये चिल्या रये, कोऊ सुने तौ का सोचहै के भौजी साँचऊ बैरी हो गई। बदरा तौ मोय सोई दिखा रये दुफर से बखरी में सिमइयाँ डारी ती सूखबे सो बे समेट कें धर आई। गिरस्ती में चारऊ कोद की खबर कन्ने परत। जौ नई तुमारे घाईं के सूद बांदी सो तांगा के घुरवा जैसे सामनेई सामनेई दिखा परत।

लाला - फिर शुरू हो गई नेतन घाईं भाषण देबे। भौजी, जेई तुमाई बुरई आदत है कैबे पै आउती सो फिर कोऊ की नई सुनती। शुरू हो जाती भाषन दैबे।

भौजी - राशन लैबे, की कौ रासन लेबे जानें अपनों के काऊ और कौ। सुनों लाला, मोय सोई रासन की दुकान से शक्कर मंगवाने ती।

लाला - कां करों मैं भौजी तुमाव जोर सें बोलो सो गुस्सा हो जाती, मजे से बोलौ तो सुनात नंइया। कछू कौ कछू सुनके सुरू हो जातीं। (जोर से थोड़ा) तुमे तौ बोलबे की बीमारी है भौजी।

भौजी - का कई, शक्कर कारी है। शक्कर कारी नई सफेद होत।

लाला - मैं शक्कर कारी नोई के रओ तौ जौ आय कै रओ तो।

भौजी - को नई दै रओ तो। रासनकारड न लै गये हू हौ। लाला जा बात तों गलत आय, राशन कारड कौने १०-१५ किलो कौ आय होत के उठाबे में हाँत पाँव पिराँय। जेब में डारौ मजे में औ चले जाव, जौ बात साजी न होय के बिना कारड के धौंस धपट के सामान लै आव।

लाला - कै लो भौजी कै लो जब लौ तुम पूरी बात न कै लैहो तुमें मोरी कोन सुनने।

भौजी - का नई गुनने।

लाला - जौ आय कई के राशन की दुकाने न होय गओ तो, दुकानदार तौ परों से बाहर गओ अंत गांव।

भौजी - जाने का मोंई मों में बता लेत। जौ बताव तुम शक्कर कां देख आये।

लाला - (जोर से) नां कऊँ।

भौजी - अबै तौ कातते के शक्कर कारी है।

लाला - हे भगवान - हे राम, मै का करों (बेचैनी भरे स्वर में) तुम जाने का कौ का सुन लेती। मैने जौ आय कई ती के तुमें बोलबे की बीमारी है। (जोर से)

भौजी - मोय नइंया कोनऊ बीमारी ईमारी, मैं तौ ऐन डट कें खात, ऐन डट के काम करत और ऐन डट कें सोउत। हाँ (मासूमियत से) पेट कौ अफरा निकारबे के लाने तनक मनक बोल बता लेत बस।

लाला - और दूसरे की खुपड़िया कोल खाती (धीमे से), अच्छा भौजी (जोर से) जौ बताऔ काय तौ ठीक है दंद सोई करती।

भौजी - को बंद करती।

लाला - बंद अंद नई दंद सोई करती का तुम

भौजी - (हंस के) लाला तुम साचँऊ सिर्री भये।

लाला - काये?

भौजी - छन्द में का जानों, जौ तौ बे जानत जौन कवित्त लिखत।

लाला - छन्द न होय कई। दंद आय कई, दंद लड़ाई झगड़ा। (जोर से)

भौजी - लड़ाई करें मोरे दुश्मन।

लाला - दुश्मन सें तौ होतई है।

भौजी - देखौ लाला मोय बातन में उल्टो सूदौ न उरझाव। सांची सांची बताऔ का काम है। काये खां आये।

लाला - धन्न है भौजी। घंटा भर में अबै आय पूंछ पाई के काये के लाने आओ। गैल में बूंदा बांदी हो रई ती सो इतै आ गओ।

भौजी - ठीक करो इतै आ गये। अकेले उये का भओ।

लाला - किये।

भौजी - बांदाबारी खां।

लाला - कौन बांदाबारी?

भौजी - अबै तुमई तौ कात जात के बांदा बारी गई।

लाला - जा आय कईती कि गैल में बूंदाबांदी भई। तुमसे बतकाओ का मुड़चड़याव आय होत राम धई। बूंदा बांदी खां बाँदा बारी सुन लई।

भौजी - हओ ओई तौ पूंछी बांदाबारी कौ का भओ।

लाला - बांदा बारी नोई कई बूंदा बांदी आय कई (जोर से)

भौजी - लाला अपने लच्छन सुदार लो, बांदावारी गई सो अब बूंदाबारी आ गई। व्याव हो गओ, अब तौ सूदे रऔ।

लाला - भौजी मोहाँ मुफत में बदनाम ना करौ बूंदाबारी नोई कई बूंदाबांदी, पानी के छींटा पर रयेते।

भौजी - ज्ञानी के ईंटा पर रयेते। ऐसे बरसत पानी में ईंटा काय खां परवारओ ज्ञानी पागल है का सबरे ईटा खराब होजैहे।

लाला - (जोर से) पानी छींटा कई भौजी, पानी के छीटा छींटा।

भौजी - तौ चिचयात काये हौ मोय का दिखात नइया, भीजे ठांड़े। उनकौ अल्फा ल्याउत सो बदल लो। अपनो उतार के मोय दै दो नईतर जड़या जैहौ।

लाला - अब आदौ सूक गओ तब आई तुमे ख्याल अब का है, अब जात हों घरै।

भौजी - आहाँ काय के लाने बरै। चूल्हे में दूर सें सेंक के सुका देहों।

लाला - आ हाँ अब जात हों घरै। जै राधे की।

भौजी - ना मानहौ, ऐसई जा रये, कछू हो न जाये अरे लाला. .. संजा के जोर देवरानी खां पठै दइयो... सुनी...।

- कार्यक्रम अधिकारी, आकाशवाणी भोपाल

अन्तर-कहन

- मायूस सागरी

सुद-जीब का कैबै अन्तर-कहन
सोसों के अधरों पै बैठी थकन...

बोध-आंखें फूटीं, सु-जस-बल थके
परहित के दरपन हैं स्वारथ ढके
दम्भी-करम, पाप-सीमा नके
मन-ताव सें, ज्ञान-गौरव जके
ओपै बी प्यारौ है सबखों पतन
सोसों के अधरों पै बैठी थकन...

भावों की काया लगत है मुची
भासा-चिरैया डरी पर-नुची
नीतों की हर गैल है अनकुची
बिस्बास की नांक लग रइ बुची
खीबइ महक देत रयं सत्-सुमन
सोसों के अधरों पै बैठी थकन...

मन-डारै, सत्-फूल अब नइं खिलत
ग्रन्थों खों स्रदूदा के कर नइं मिलत
नीतों सें आचार-तन नइं छिलत
पर-पीर पै कोउ मन-नइं हिलत
बन्दी हैं सब ज्ञान, गुन, आचरन
सोसों के अधरों पै बैठी थकन...

बल होत किते भलां लांच के
बगरे न रव मीत तुम सांच के
छलियों के घर होत हैं कांच के
कां ताव सै पात सत्-आंच के
बिरथां नें जैहैं करौ तौ जतन
सोसों के अधरों पै बैठी थकन...

एंसौ करौ जग न भयभीत रय
अधरों पै एका कौ जस-गीत रय
अन्तर में पुरखों की हर नीत रय
पोथी की सत्-बरनीं मन-प्रीत रय
पै देत को पैरियै जे चलन
सोसों के अधरों पै बैठी थकन...

- अजन्ता प्रेस, बण्डा
जिला सागर (म.प्र.)

घर के घरइ नें समांय, और लठेंगुर पांवने

- राघवेन्द्र कुमार उदैनिया 'सनेही'

साउन तीज हाँ गांव भरे में घरन-घरन खीर बन रइ ती, रामासरे ने सोसी के काए न हमऊं अपने घरे खीर बनवांए, पै अपनी गरीबी हां देखत भव घरबारी सें डरात डरात बोलो - "काए जू आज गांव भरे में खीर बन रइ काए न अपनऊं खीर बनाकें खाँयँ।"

"जा तो ठीक है पै अपनी सोसौं के अपनो तो जौ हाल है कै खुद खांय के बायनौ बांटे। कउँ खीर बनतनई कोनउं पावनों आ गव ता अपनी तो लगुन लिख गई" - घरबारी बोली।

"अरी देख री मैं तो किबार अटका कें ऐसें संट होकें भीतरे बैठ जैव जैसें कोउ इते रातई न होय और कऊं धोके से कोनउँ मित्र, कै रिस्तेदार आइ जैहै तो उए मँइंके मँइ दुआरे सें चलतौ कर देंव और तुरतंई कै देंव -

"आव लछू जाव लछू, न इते कछू न उते कछू
राम आसरे ने राँगौ सौ ढरकाओ" बस
"तुमाएई न कोनऊँ नाते-पनाते के रिस्तेदारी निकारत चले आंए"

"मोरे रिस्तेदार" - घरबारी बड़े अचम्भे से बोली "अरे अपुन के काव अपुन के" "सारे के सारे बिचारे कौ को, मम्मा के मम्मा हमारे कौ को"

"तुमाएई सेंकरन अड़ा के पड़ा नातेदारी निकारत चले आउत - "इत्ती सुनतन रामासरे के नकुआ फूल गये "अड़ा के पड़ा कैसे?"

"ऐसे कै तुमाइ गइया और गांव के लम्बरदार की गइया एकइ सांड सें हैं सो लम्बरदार तुमाये रिस्तेदार कहाये न"? - घरवारी बोली।

हव हव सो तो ठीक है और कछू रिस्तेदारीं चौका चूले और हैं हैं कीं तुमाइ बजे सें है" - कैसी? घरवारी बोली।

अरे चौका चूले और हैं हैं की रिस्तेदारी तो मैंने आज लो नइ सुनी भलां जे कैसीं आंय

जे ऐसी आय रामसरे बोलो

"कै सारे जू आंय सो न राम राम न जुहार सूदे चौका लौं घुसत जात और उतई चूले लौ पांजर में बैठ कें घंटन खुसर पुसर करत रात

जौ तौ ऊसई भओ "कै भाई कौ भाई बाहर बैठ जाई, लुगाई कौ भाई चौका लौ जाई" और हैं हैं की" लुगाई बोली

बा सो आय साडू की

तुमाइ बैन कौ खसम जब मिल जात सो कान लगत" हैं हैं भइया हमाइ सारी सायबा तो ठीक हैं" मैं सोऊ तपाक सें जुआब दे देत हैं हैं भइया सब ठीक है हमाइ जिठ सास तो ठीक हैं

"मोरो एक तो भइया" घरवारी बोली

ओई तुमाव सारो

जबईं तो सब कात

"सारो जग एक तरपे, जोरू को भाई एक तरपें"

"सारो है सो दायजे में आहे का?"

साउन और भइयादूज तो ठीक है आउत कौ आय पै जब देखो तब कोनऊँ न कोनऊं बहाने इतइं धरो रात कोनउँ मुकद्दमा की पेसी लगी न के दो चार दिना हां मेल गए।

"और अपने झमटुली बारे कक्का जू की नईं कात के आन पाए तो मइनन के पेलां नइ जात।"

"सो जबकी बार मैई ने तौ उनकी लुगाई के मरे की झूंटी चिठिया डर कें भगाव तो"

तो और का करते जब आये ते तो मै तो कप गइ ती काय सें उनके गये पै पन्दरा दिना लो एक ज्वार रोटी खानें परी ती।

इत्ते बेसरम है के कछू कइ नइ जात जब मैंने कई
- "चूलो है बैठकदार, छै मइना लौ चुरहै दार"
- नकरियां इत्ती मसौंदी के पानी चुचात
- घर में एकइ डेग्ची है ओइ की तरी फूटी
- और दार सो निराट बटरा
- ऊपर से खरउआ पानी

तउ बोले -"पावनों है गम्म खोर, बैठो राय बरस दोर"

कोनउ बात नइया बहू मैं तो अब रिटार हो चुको इसें सरतोरोइ सरतारो हों दार चड़ा दे खाइकें जैंव।

तौ लौ खीर बन गइ दोइ जने ई बात की सोंसन में हते के पावनन के मारें अच्छो खाइ पी नइ पाउत।

रामासरे ने लुगाइ हां समझाव - "देख री जो कऊं खीर खातन में कोनउ पावनो आइ जाय तो झट्टई खीर लुकाके धर दइये और फिन अपन दोइ जने झूटमाट की लराइ करन लगवी ते तुनक्के मायके जांबे के बहाने बगल के घर में जा बैठिये और मैं तोय मनाबे के बहाने घर से कड़ जैवं।

भाग की बात उनकी जे सब बातें दुआरे में ठाड़े कक्का जू सुन रए ते उन्ने जैसइ किवारे भड़के तेंसइ लुगाइ ने खीर लुका दई और रामासरे ने किवारे खोलके बड़े आव भगत से उनें बिठाव और अपनी योजनानुसार दोइ जने लर परे। लुगाई ने धुतिया दबाई और मायके के बहाने बायरें कड़ गई। रामआसरे उये मनावे के बहानें चल दओ। कक्का जू ने घर सूनो पाके थरिया में खीर परसी और सबरी की सबरी चट्ट कर गए और प्रेम से मचेरा पै चड़कें सो गए। अब तनक झेल में जब दोउ जने लौटे तो घर सूनो पाकें फूले न समाने।

लुगाइ ने मायके जावे को नाटक दिखाउत कव "कओ हम कैसे बगल में धुतिया चपा के गए ऐसे"

घरवारे ने मनावे को नाटक दिखाके कव "कओ हम कैसे तुमे मनावे निकरे ते ऐसे"

मचेरा पै चड़े कक्का जू बोले - "कओ हम कैसे खाइ खीर और सोए ऐसे"

तबइ तो कइ कै - "घर के घरइ ने समाय और लठेंगुर पावने।"

- शारदा विद्या मंदिर, गल्ला मंडी, छतरपुर

हिन्दी काव्य परम्परा और गंगालहरी

- डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया'

'कीर्तियस्य स जीवति' के अनुसार कीर्तिवान व्यक्ति ही जीवित रहता है। रीतिकालीन कवियों में श्रेष्ठ स्थान रखने वाले कवि पद्माकर भी ऐसे कीर्तिवान रचनाकार हैं जो काल के प्रवाह को चीरकर आज भी साहित्यजगत में प्रतिष्ठा के साथ जीवित हैं और आगे भी जीवित रहेंगे। उनके जीवन परिचय के विस्तार में न जाकर इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि पद्माकर का जन्म तैलंग परिवार में सं. १८१० (सन् १७५३ ई.) में सागर अथवा बाँदा में हुआ था और मृत्यु सं. १८९० वि. (सन् १८३३ ई.) में कानपुर में गंगा के तट पर हुई। पद्माकर भी अपने पिता मोहनलाल भट्ट की भाँति कवि, वक्ता, पंडित और मंत्र-शास्त्री थे। काव्य-प्रतिभा और पांडित्य के कारण उनकी दूर-दूर तक ख्याति थी और वे अनेक राजों-महाराजों के यहाँ दरबारों में सम्मानित तथा पुरस्कृत हुए। कहा तो यहाँ तक जाता है कि वे अपने समय में सर्वाधिक समर्थ और सम्पन्न कवि थे। अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर उन्होंने ५६ लाख रुपये, ५६ गाँव और ५६ हाथी पुरस्कार में प्राप्त किये। इसमें सच्चाई जो भी हो, पर उनकी हवेलियाँ अभी भी बाँदा, सागर, दतिया आदि में बताई जाती हैं। दतिया की हवेली तो आज भी 'कवि जू की हबेली' के नाम से जानी जाती है। महाराज जगत सिंह को पद्माकर ने अपना परिचय जिस प्रकार दिया उससे भी यह संकेत मिलता है। छन्द इस प्रकार है -

भट्ट तिलंगाने को, बुन्देलखंड वासी कवि,
सुजस प्रकासी 'पद्माकर' सुनामा हौं।
जोरत कवित्त छन्द छप्पय अनेक भाँति,
संस्कृत प्राकृत पढ़े जु गुनग्रामा हौं।
हय रथ पालकी गयन्द गृह ग्राम चारु,
आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगत सिंह,
तेरे जान तेरो वह बिप्र हौं सुदामा हौं।

पद्माकर किसी एक स्थान पर बँधकर नहीं रहे। अलग-अलग समयों में अलग-अलग आश्रय-दाताओं का सानिध्य उन्हें प्राप्त हुआ। यह उनकी व्यापक लोकप्रियता का भी परिचायक है और समय, परिस्थिति तथा स्वाभिमान के कारण निरन्तर बदलते रहने का भी। उसके पीछे कारण कुछ भी रहे हों। सागर नरेश रघुनाथ राव अप्पा, महाराज जैतपुर, सुगरा निवारी नोने अर्जुन सिंह, दतिया नरेश महाराज पारीक्षत, शुजाउद्दौला के जागीरदार गोसाईं अनूपगिरि (उपनाम हिम्मत ठाकुर) सितारा नरेश रघुनाथ राव, जयपुर नरेश प्रताप सिंह और उनके पुत्र जगत सिंह, उदयपुर नरेश महाराजा भीमसिंह तथा ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया उनके आश्रयदाताओं में थे। आश्रय-दाताओं से संबंधित कृतियों में जहाँ प्रशस्तियाँ हैं, वहीं तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं के प्रसंग तथा समय-समय पर प्रदर्शित किये गए स्वाभिमान आदि उल्लेखनीय हैं। यहाँ उनके विस्तार में जाने का अवसर नहीं है, फिर भी एक छन्द देना अनुचित न होगा। यह छंद ग्वालियर नरेश महाराज दौलतराव से संबंधित है, जिन्हें विवश होकर अंग्रेजों से संधि करनी पड़ी थी, पर यह अपमानजनक संधि उन्हें बराबर कचोटती रही और वे बदला लेने की ताक में थे। इसी तथ्य को पद्माकर ने अंकित किया है -

मीनागढ़ मुम्बई समंद करि मंदराज,
बंदर को बंद करि, बंदर बसावैगो।।
कहैं पद्माकर कटा कै कश्मीर हू कौ,
पिंजर से घेरि कै कलिंजर छुड़ावैगो।
बाँका नृप दौलत अलीजा महाराज कबौ,
साजिदल दपटि फिरंगिन दबावैगो।
दिल्ली दहपट्टि, पटना हूको झपहि करि,
कबहुँक लत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो।

पद्माकर की रचनाएँ मुख्यतः श्रृंगार, भक्ति, दर्शन, प्रकृति और प्रशस्तियों से संबंधित है। हिम्मत बहादुर विरुदावली, पद्माभरण, जगद्विनोद, प्रबोध पचासा, गंगालहरी, प्रतापसिंह विरुदावली, कलिपचीसी काव्य-कृतियाँ इसकी साक्षी हैं। इनके अलावा उनके अनेक स्फुट छन्द श्रेष्ठ काव्य के उदाहरण हैं। पद्माकरण और जगद्विनोद रीति ग्रंथ हैं जो उनके आचार्यत्व के परिचायक हैं। वहीं गंगालहरी में गहरी भक्ति भावना है। प्रशस्तिपरक छंदों में उनकी काव्य-प्रतिभा बढ़-चढ़कर बोलती है। उनकी कल्पनाएँ तथा काव्य-कौशल समकालीन कवियों से बहुत कुछ अलग हैं। रीतिकाव्य के मर्मज्ञ डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में "इनकी सबसे बड़ी विशेषता बिम्ब योजना है, जिसमें रेखायें और रंग ही अत्यन्त स्पष्ट होकर नहीं आये, उनमें यथावश्यकता भावात्मकता गति और स्थैर्य का सन्निवेश भी कुछ ऐसे कौशल के साथ हुआ है कि वे सहृदय के मनु पर भाव विभोर कर देने वाला आल्हादक प्रभाव छोड़ जाते हैं। भाषा की बिम्बों और उनकी रेखाओं के अनुरूप इतनी सधी हुई एवं सौष्ठव-सम्पन्न है कि प्रत्येक शब्द की योजना देखते ही बनती है।"

यहाँ मुझे मुख्य रूप से काव्य-परम्परा और गंगालहरी की चर्चा करनी है। गंगा अनादिकाल से भारतीय जन-जीवन को पोषित, आनन्दित, आल्हादित और संतुष्टि प्रदान करते हुए निरन्तर प्रवहमान है। वह लोकजीवन से लेकर धार्मिक और आध यात्मिक जगत में सर्वत्र व्याप्त है। हर लोक-कंठ सोने का गँडुवा और गंगाजल की आकांक्षा का करता है। उसकी दो बूँदें व्यक्ति को मुक्ति प्रदान करने में सक्षम हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति गंगाजल का सानिध्य चाहता है। ऐसी पतितपावनी मुक्तिदायिनी गंगा का बखान एवं महिमागान प्रारंभ से ही होता रहा है। ऋग्वेद

से लेकर आधुनिक काव्य तक उसकी चर्चा है। आज जब वैज्ञानिक युग में व्यक्ति की करतूतों के कारण गंगा प्रदूषित हो रही है, तब भी उसके प्रति श्रद्धा और मान्यता में कोई कमी नहीं आई।

पंडितराज जगन्नाथ द्वारा गंगालहरी ग्रंथ की रचना के पीछे एक लोकश्रुति प्रचलित है। वह यह है कि मुगलदरबार में रहते समय पंडित जी लवंगी नामक एक मुगलबाला पर मोहित हो गए और बादशाह से लवंगी को अपने लिए माँग लिया। शाहजहाँ ने प्रसन्न होकर पंडित जी को लवंगी भेंट कर दी। पंडितजी उसके साथ रहने लगे। इससे काशी का ब्राह्मण समाज इनसे नाराज हो गया। सामाजिक अपमान से पंडित को आत्मग्लानि हुई और वे गंगातट पर जाकर गंगा की आराधना में लगकर गंगालहरी की रचना की। कहा जाता है कि अपने रोग-निवारण हेतु मयूर कवि नें भी मयूर शतक (सूर्यशतक) की रचना की थी।

कुछ ऐसी ही किंवदन्ती पद्माकर कवि के साथ भी जुड़ी हुई है। कहा जाता है कि पद्माकर का एक सुनारिन से प्रेम हो गया। वे उसके सौंदर्य पर मोहित हो गए। फलतः उन्हें भी समाज में नीचा देखना पड़ा। इसी के साथ वे कुष्ठ रोग से ग्रसित हो गए। उन्हीं दिनों वे चरखारी नरेश के पास गए किन्तु उन्होंने मिलने से मनाकर दिया क्योंकि वे सुनारिन के प्रेम के कारण आचरणच्युत थे और कुष्ठ रोगी थे। फलतः सामाजिक तिरस्कार तथा राजा द्वारा अपमानित होकर ग्लानिवश वे सारा वैभव त्यागकर गंगाजी की शरण में चले गए। इसी समय उन्होंने कुष्ठ-रोग-निवारण हेतु गंगालहरी की रचना की। यह भी कहा जाता है कि उसके बाद वे माँ गंगा की कृपा से कुष्ठ रोग से मुक्त भी हो गए। चरखारी नरेश द्वारा अपमानित होने पर उन्होंने यह छन्द लिखा था -

तुम गढ़ किल्ला सदा जोर करि जीतत हौ,
पिंगल अमरकोष जीतत जहाज हैं।
तुम सदा साम दाम दंड भेद न्याव करौ,
चारो वेद हमहूँ सुनावत समाज हैं।
हाथी घोड़े रथ ऊँट पैदल तुमारे साथ,
राखत सदा ही हम छप्पै छंद साज हैं।
तुम सों औ हम सों बराबरि को दावा सुनो,
तुम महाराज हौ तो हम कविराज हैं।

कुष्ठ रोग से ग्रस्त होने पर पद्माकर ने अपनी दुखद स्थिति और रोग-मुक्ति का संकेत इस छंद में इस प्रकार दिया है। छंद की प्रथम दो पंक्तियों में भयावह स्थिति का चित्रण है -

परो एक पतित पराउ तीर गंगा जू के,
कुटिल कृतघ्नी कोढ़ी कुढंगी अंध।
कहैं पद्माकर कहौं मैं कौन बाकी दसा,
कीर परि गये तन आवै महा दुरगंध।
पाप हाल छूटिगे सु लूटिगे विपत्ति लाज,
टूटिगे तड़ाक दे सुनाम लेत भवबंध।
गं कहें गनेस बेस, दौरि गही बाँह अरु,
गा के गहे गरुड़ चढ़ाइ लीन्हो निज कंध।।

गंगा लहरी में कुल मिलाकर ६७ छंद हैं जिनमें तीन दोहे और ६४ कवित्त हैं। प्रथम दोहा मंगलाचरण का है, जिसमें विष्णु शंकर और ब्रह्मा का स्मरण किया गया है। ग्रंथ के अंतिम दो दोहों में से एक में कवि ने पुनः शंकर, पार्वती और गणेश को याद किया है, तथा इसके छंद में ग्रंथ की 'फलश्रुति' का कथन है जिससे ग्रंथ की पूर्णता का बोध होता है। 'फलश्रुति' परिभाषिक शब्द है जिसमें ग्रंथ के पठन-पाठन से क्या लाभ होता है, इसका निर्देश रहता है कवि पद्माकर का भी यही लक्ष्य है -

गंगा लहरी जो सुजन, कहैं सुनै श्रुतिसार।
ताको गंगा देति है, सदा सुभग फल-चार।

शेष ६४ छंदों में कवि ने गंगा की महिमा, अपनी आस्था तथा मुक्तिदायिनी, पतितपावनी, पापमोचनी, सुखदायिनी, कष्ट निवारिणी आदि विशेषताओं के साथ गंगा का यशोगान कर उसे सर्वश्रेष्ठ बताया है। गंगा लहरी के छंदों के लालित्य, प्रवाह भाषा माधुर्य, अनुप्रासादि अलंकारों के अनूठे प्रयोग से उसके लोकप्रियता और ख्याति दूर-दूर तक फैली। एक ओर पद्माकर के इन छन्दों को अनेक संग्रहों में शामिल किया गया, वहीं इससे प्रभावित होकर बाद के अनेक कवियों ने गंगा संबंधी रचनाएँ लिखीं जो आधुनिक युग में भी भारतेन्दु हरिश्चन्द, सत्यनारायण कविरत्न, जगन्नाथ 'भानु', जगन्नाथ दास रत्नाकर, लाला भगवान दीन 'दीन', मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, गोपाल शरण सिंह आदि के साथ जुड़कर निरन्तर प्रवहमान है।

गंगालहरी पद्माकर के जीवन के अंतिम दिनों की भक्तिपरक श्रेष्ठ रचना है। भाषा का माधुर्य, कहावतों-मुहावरों का प्रयोग, उत्तम रचना कौशल तथा छन्द-विधान के कारण उसे लोकप्रियता मिली। पद्माकर ने कई बार अत्यन्त भावुक होकर अपने अन्तरंग निर्मल मार्मिक भावों को व्यक्त किया है, जैसे कोई बालक अपनी माँ के समक्ष अपने मन की बात कहता हो। वहाँ विनय, अनुराध, क्षोभ, विश्वास, आसक्ति, आस्था, समर्पण, भक्ति आदि के विविध भाव व्यंजित हुए हैं। पद्माकर सुपठित विद्वान कवि थे। इसलिए गंगालहरी के छन्दों में तमाम पौराणिक प्रसंगों का सटीक संयोजन है। गंगा को सभी देवी-देवताओं में श्रेष्ठ बताना तथा सम्पूर्ण सृष्टि में सर्वोच्च कहना अतिश्योक्ति नहीं अपितु अन्तर्भावों की सहज अभिव्यक्ति है। ब्याज स्तुति में कहीं व्यंग की झलक मिलती है कहीं सुन्दर हास्य की। यहाँ मैं कतिपय छन्दों के उदाहरण देकर के भाव-सौन्दर्य और काव्य-सौन्दर्य का आस्वादन करना चाहूँगा। गंगा की छटा-चित्रण में कवि का कौशल देखिए-

कूरम पै कोल, कोलहू पै सेष कुण्डली है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।
कहैं पद्माकर त्योंफन पै कबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की।
रजत पहार पर शंभु सुरनायक है,
संभु पर जोति जटाजूट सु अपार की।

संभु जटाजूट पर चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंगधार की।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि तरुणाई के मौजमस्ती के आल्हादी दिनों में जो व्यक्ति बाहरी संसार में विचरण करते हुए अपने में भुला रहता है, वहीं कष्ट के दिनों में तथा वृद्धावस्था में अन्तर्मुखी होकर आत्मचिन्तन और मनन करता है। अपनी दुर्बलताओं, दोषों का स्मरण कर पश्चाताप करता है। अपनी दुर्बलताओं, दोषों का स्मरण कर पश्चाताप करता है। संतों के साहित्य में इस मनोदशा के चित्रण बार-बार होते हैं। पद्माकर भी अपने अंतिम दिनों में इसी मनःस्थिति से गुजरते हुए दुखी होते हैं। मनुष्य के मन में जहाँ यह भाव उमड़ता है, 'जो मैं ऐसी जानतो कि जैहै तू विषे के संग, ऐरे मन मेरे तेरे हाथ पाँव जोरतो' वहीं गंगा जैसी दैवी शक्ति का सानिध्य और आश्रय पाकर वह पापों की चुनौती देने से भी नहीं चूकता और ताल ठोंककर कहता है – 'ऐरे दगादार मेरे पातक हजार, तोहिं गंगा की कछार में पछार छार करि हौं।' क्योंकि गंगा में वह ताकत है जो दुर्मति, दुर्गति और कष्टों को दूर कर सबको भवसागर पार कराती है –

पूर होत पुन्यन को, धूर होत अधरम,
चूर होत चिन्ता, दूर होत दुरमति है।

क्योंकि पतितों का उद्धार गंगा का विशेष गुण है। उसने अनगिनत लोगों का उद्धार किया है –

काहू ने न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे,
और जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं।

व्यंग्य – हास्य के छीटे भी भावाभिव्यक्ति की अभिवृद्धि और आनंदानुभूति में सहायक हुए हैं। वहाँ कवि ने सार्थक, सटीक, भावगर्भित शब्दों का ही प्रयोग किया है – यथा –

तेरी रीझ जानी हम एरी देवि गंगा तोहिं,
नंगा धरयो सीस याते नंगा तू करति हैं'

इसी प्रकार – मोहि करि नंगा, अंग अंगनि भुजंगा बाँधे,
ऐसी मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है।

पद्माकर के काव्य में शब्दों के प्रयोग में भाषा को लेकर कोई दुराग्रह प्रतीत नहीं होता। संस्कृत, उर्दू, फारसी आदि के जो भी शब्द उन्हें उपयुक्त लगे, उन्होंने उनका प्रयोग बेहिचक किया है। किन्तु विशेषता यह है कि वे प्रयोग नहीं खटकते नहीं। जैसे –

बेपरद बेदरद गजब गुनाहिन के,
गंगा की गरद कीन्हे गरद गुनाह सब।''

इसी तरह – देवहु दरह सब गरद मिलाय करि,
फरद रही है फैल आनंद बहाली की।

पद्माकर अनुप्रास के तो बादशाह ही हैं। इसके अलावा उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, संदेह आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है। गंगालहरी में गंगा के प्रति गहन आस्था और प्रयोग किया है। गंगालहरी में गंगा के प्रति गहन आस्था और भावनाओं-कल्पनाओं का सुन्दर सटीक अनुप्रासिक चित्रण उनकी पहचान है। इस प्रकार के छन्द उनके उन्हीं भावनाओं का बोध कराते हैं –

जोगहू में भोग में वियोग में संजोगहू में,
रोगहू में रस में न नेको बिसराइये।
कहैं पद्माकर पुरी में पुन्य सैलन में,
फैलन में फैल फैल गैलन में गाइये।
बैरिन में बंधु में बिथा में बेस बेलन में
वन में बिषै में रनहूँ में जहाँ जाइये।
सोचहूँ में सुख में सुरी में सहिबी में कहूँ,
गंगा गंगा गंगा कहि जनम बिताइये।

कहने का आशय यही कि भावाभिव्यक्ति तथा कलात्मक काव्य-सौन्दर्य की कसौटी पर गंगालहरी पद्माकर की श्रेष्ठ रचना है जिसकी समाज में पर्याप्त लोकप्रियता तथा हिन्दी साहित्य में अच्छी प्रतिष्ठा है। उसने अपने प्रभाव से उस परम्परा को बराबर पल्लवित किया है। यहाँ तक कि कतिपय मुस्लिम रचनाकारों ने भी गंगा की महिमा का गायन किया है। पद्माकर के काव्य-कौशल से प्रभावित होकर शीर्ष विद्वान पं. रामचन्द्र शुक्ल में सही लिखा है कि ''भाषा की सब प्रकार की शक्तियों पर इन कवि का अधिकार दिखाई पड़ता है। कहीं तो इनकी भाषा स्निग्ध मधुर पदावली द्वारा एक सजीव भाव भरी प्रेममूर्ति खड़ी करती है, कहीं भाव या रस की धारा बहती है। कहीं अनुप्रासों की ललित झंकार उत्पन्न करती है, कहीं वीर दर्प से क्षुब्ध वाहिनी के समान अकड़ती और कड़कती हुई चलती है और कहीं प्रशान्त सरोवर के समान स्थिर और गंभीर होकर मनुष्य जीवन की विश्रान्ति की छाया दिखाती है। सारांश यह कि इनकी भाषा में वह अनेक रूपता है जो एक बड़े कवि में होनी चाहिए। इस प्रकार पद्माकर की गंगालहरी में अवगाहन करके आज भी लोग आनंदित और आल्हादित अनुभव करते हैं।''

– १२, एम.आई.जी., चौबे कॉलोनी, छतरपुर

गारी

– बाबूलाल विश्वकर्मा

टेक – तिरंगा मोरौ तीन रंग कौ, सेत हरो केसरिया।
अपनी भारत माता पहिरें तीन रंग की फरिया।।
ऊपर है जो लाल निसान, युद्ध वीरता की पैचान।
सीमा पै होबे कुरवान,
जीने इसपै नजर उठाई, ऊकी फटै खपरिया।।...
सेत स्वच्छता की पैचान, साफ-सपाई पर दो ध्यान।
सदाचार सच बोल महान,
साफ-सपाई रखौ हमेसा, होबे न कोऊ बिमरिया।।...
हरो रंग हरियारी लावै, हरो-भरो वन सदा दिखावै।
खेतन हरी फसल लैराबे,
प्रदूषन खौं दूर भगाबै, लम्बी होय उमरिया।।...
बीच में सोहे चक्र महान, चौबिस तिल्ली की पैचान।
ऐई एकता की जान,
'बाबू' सब जन मिलकें चलियौ, बजे चैन की बाँसुरिया।।...

– पुछी, जिला छतरपुर (म.प्र.)

अजनमी बिटिया की चिठिया

- आशाराम त्रिपाठी

मताई बिनय करी कर जोर
ध्यान सें चिठिया पढ़िये मोर,
हराँ कें चलत साँस की डोर,
पै देखन पाई न संसार।
पतौ चलो कै पेट से मैया दैहै अबईं निकार।

का बाबुल कौ नेव मरो का माई की ममता मर गई।
लग रओ हीर पीर बारे हिरदे की होरी जर गई।
सुनौ तेने करवाई जाँच
खरच करकें हजार दस पाँच
अजनमी पै अब आहै आँच
मोह कौ मिट गओ नाम निशान
जान-जान अनजान की जा रई, जनम के पैला जान।

अबै दौनिया दूद की कच्ची दुनियां में न आई।
दूद दौनियां कौ पिण्डा न फोरौ भली मताई।।
अजन्मी हां न विरथा कोस,
मोय नईयाँ रत्ती भर दोस
पेट में पलरई हौं बेहोस
लगत कै धरम भओ निरमूल
किये सुनावै मसल रओ माली बगिया कौ फूल

भई दक्ष कें सोरा बिटियाँ, उनने बुरओ न मानो।
तुमें भई एकई भारूं सो ठान पाप कौ ठानौ।
अकरम करत मताई बाप,
पछारें लगत पाप की छाप
अगारें बिगर जात कुलपाप
एई सें मइया सोच विचार
बिटिया ऐसौ दिया जरत दोई कुल में उजयार

ई सें भलै तौ भईया होते माई बलैयां लेती।
भर अकवार लगाती आंचर प्यार मुलक कौ देती।
अरी अंकुवानो बीज न खोद,
अबै मैं आ नईं पाई गोद,
भलीसी भीतर करले बोद
माई मोरी करिये न चूक।
कईयक बारा मड़ियां पूजत तऊँ चलत न कूंख।।

जो होती मैं पेट के बाहर लिपट पांव से जाती।
हा हा दैया कर मैया से बेर-बेर गिगयाती।।
कोंरें जौआ हां न खोंट
लगत तोरें ममता की छोट,
बोल तो बोल अरी दो होठ,
दया करुना के खोल किवार।
ममता की मूरत मों सें पैलां ममतै न मार।।

पूरी करदे मोरी एक ललक तौ गांहों साकौ।
ओली में हो एक झलक चंदा मामा की झाँकी।।
जौ जस जनम न रैहै याद
अपनौ अंश न कर बरबाद
होत बिटियन सें कुल आबाद
मानकें ब्याद न पिंड छुड़ाव
आगन्नौ कर करो दादरे और सोहरे गाव।।

मोरी पींठ पै भइया हुइयै लै हों नोन कदईयाँ।
छिटक खेलहो आंगन में गुंइयन संग चईयाँ मईयाँ।
झार हों दोर उसारौ पौर
करहों मात-पिता की गौर,
आगे कभऊं न दैहों कौर
खड़ी हो जैहौं अपने पांव
बाप मताई कौ पढ़ लिख कें सबरें करहों नांव।

जी ललकत कै हमजोली संगै सजाऊँ मामुलिया।
दोई गुडुलियाँ घुँघरूं बाँदों नाचो पैर झंगुलिया।।
भर किलकारी करों किलोर
पकर तोरे आँचर कौ छोर
बात फिर मनबाऊँ दे जोर,
भरें मैं भीतर भौत उमाव।
पुतरा और पुतरियन कौ आंगन करहौ व्याव।।

ब्या दइयौ गरीब घर में न दान दायजौ दइयौ।
करबे पीरे हांथ एक चुटकी भर हरदी लइयौ।।
मानत बिटिया रांदो भात
चिरैया आंगन से उड़जात,
काऊ के पेटै नाई समात,
होन दे अँगनाई में भोर
बिटियै हीन न मानो ले मनकौ चीर निचोर।

मिलहै दु'ख सासरे में तौ कमऊन न तुमे सुनाहों।
एकई बेर साल में राखी पोंचा बाँदन आहों
देख जैहौं ग्योंड़े के रुख
जताहों न दाने की भूख
बात एक कैरई मैं दो टूंक
अपुन सोऊ कोऊ की बिटिया आव।
उंनने पोसो तुमें मोय तुम पोसो कर्ज चुकाव।।

मान के बिटिया चिठिया हाँ मा लगा गरें लइयौ।
भली लगै मोरी विनती तौ फिर बाबुल सें कइयौ।
बिटियै बिरथा मानत भार,
रतन अनमोल गरे को हार,
लाड़ली लक्ष्मी कौ औतार
बिटिया रई भारत की शान
भई इनई में से अनुसुईया सावित्री गुनवान।।

- एफ-१०८/११, शिवाजी नगर, भोपाल

खजुराहो के मंदिरों में गणेश प्रतिमायें

- प्रो. चित्रलेखा अवस्थी

हिन्दू देवमण्डल में गणपति का महत्वपूर्ण स्थान है। विघ्ननाशक और मंगलकारी देव के रूप में इनका अस्तित्व है। गणपति और गणेश नाम से अभिहित इस देवता को शिव और पार्वती के पुत्र के रूप में वर्णित किया गया है, अतएव शिव के परिवार में उन्हें स्थान दिया गया है। गणपति और गणेश का शाब्दिक अर्थ गुणों का अधिपति और गणों का ईश (नायक) है।

धार्मिक ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर गणपति का उल्लेख हुआ है। गणेश के अनेक नामों की भी चर्चा की गई है - जैसे, गजमुख, विघ्नविनाशक, एकदन्त, वक्रतुण्ड, लम्बोदर आदि।

सभी धार्मिक एवं महत्वपूर्ण कार्यों के आरम्भ में गणपति की पूजा की जाती है। एक सिद्धिदाता के रूप में वे सर्वमान्य है। गणपति की प्रतिमाओं का निर्माण ई.पू. द्वितीय शती से होने लगा था, पाँचवी तथा छठी शताब्दी के पश्चात् गणपति की पूजा भारतीय समाज में आरम्भ हुई और पुराणों में वर्णित ध्यान के आधार पर गणेश की प्रतिमा खोदी जाने लगी।

खजुराहो से नृत्त-गणपति की द्विभुजी, चतुर्भुजी, अष्टभुजी, दसभुजी, द्वादसभुजी और षोड़स भुजी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इन प्रतिमाओं में हार, कौस्तुभमणि, कंकण, मेखला, पैजनी, आदि से अलंकृत, गजमुख, शूर्पकर्ण, एकदन्ती, सर्प-यज्ञोपवीतधारी गणपति को नृत्य करते हुए विभिन्न मुद्राओं में प्रदर्शित किया गया है। कुछ प्रतिमाओं में वे वीरभद्र और सप्तमातृकाओं के साथ नृत्य मुद्रा में प्रदर्शित है। खजुराहो में गणेश की चार नृत्यमूर्तियाँ चतुर्भुजी हैं। नृत्यगणेश की पांच मूर्तियाँ अष्टभुजी हैं। खजुराहो में नृत्यगणेश की तीन दशभुजी प्रतिमायें हैं। खजुराहो में चार मूर्तियाँ नृत्य गणेश की द्वादशभुजी हैं। खजुराहो में दो मूर्तियाँ नृत्यगणेश की सोलहभुजी हैं।

खजुराहो में गणेश की चार स्थानक मूर्तियाँ हैं। इनमें एक की द्विभुजा तथा तीन चतुर्भुज है। द्विभुज मूर्ति में वे सर्प, यज्ञोपवीत, करण्ड, मुकुट तथा अन्य अलंकरणों से अलंकृत हैं। इनके मस्तक पर मुक्तालड़ियों का अलंकरण है। वे अपने दायें हाथ में परशु तथा बायें हाथ में मोदक पात्र लिये हैं। चतुर्भुज मूर्तियों में एक मूर्ति में गणेश पद्म परशु तथा मोदक पात्र लिये हैं। इस मूर्ति का हाथ खण्डित हो चुका है। दूसरी प्रतिमा के हाथों में क्रमशः वरदमुद्रा, दो हाथों में पद्म तथा चौथे हाथ में परशु का अंकन हुआ है। तीसरी मूर्ति में परशु, मोदक खाते हुए तीसरे दन्त तथा चौथे हाथ में मोदक- पात्र अंकित हैं। खजुराहो में गणेश की आसन मूर्तियाँ बनायी गयी हैं। आसन मूर्तियों में तीन मूर्तियाँ द्विभुज बनायी गयी है। पहली मूर्ति में उनका एक हाथ अभयमुद्रा में तथा दूसरे हाथ में मोदक-पात्र अंकित हैं। यह मूर्ति ललितासन में है। दूसरी मूर्ति महाराज लीलासन-मुद्रा में अंकित है, यह मूर्ति पहली के ही समान है, तीसरी मूर्ति में भी देवता को महाराज लीलासन-मुद्रा में दिखाया गया है, उनके दाहिने हाथ में दन्त तथा बायें में मोदक पात्र अंकित है।

गणेश की आसन मूर्तियों में नौ मूर्तियाँ चतुर्भुजी हैं। ये सभी मूर्तियाँ महाराज लीलासन मुद्रा में है। इन मूर्तियों के चारों हाथों में समान आयुधों का अंकन हुआ है, जैसे - दन्त, कमल, परशु, मोदक। दो मूर्तियों में उभयमुद्रा का भी अंकन है। इन प्रतिभाओं में सूड़ बायी ओर मुड़ी है किन्तु एक प्रतिमा में सूड़ दाहिनी ओर मुड़ी है। सभी मूर्तियों में जटामुकुट से युक्त, गजानन तथा लम्बोदर दिखाये गये हैं। गणेश की षड़भुजी मूर्ति आसन में मिली है। इस मूर्ति में गणेश महाराज लीलासन-मुद्रा में अंकित है। इनके मस्तक पर मोतियों की लड़ियों का अलंकरण है। गले में हार, हाथों में कंकण, कटिमेखला तथा पैजनी का भी अंकन हुआ है। इनके पहले हाथ में कमल दूसरे में परशु, पाँचवें में अंकुश तथा छठे हाथ में सर्प पकड़े दिखाया गया है। इस मूर्ति में इन्हें सूपकर्ण, एकदन्त तथा लम्बोदर दिखाया गया है। इनकी सूड़ बायी ओर मुड़ी दिखायी गयी है।

शक्ति-गणेश की एक मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय खजुराहो में है। इसमें गणेश को अपनी शक्ति विघ्नेश्वरी के साथ आलिंगन मुद्रा में ललितासन में दिखाया गया है। इस मूर्ति में गणेश को चतुर्भुज तथा विघ्नेश्वरी को द्विभुज बनाया गया है। गणेश के पहले हाथ में मोदक-पात्र दूसरे में परशु तथा तीसरा हाथ खण्डित हो चुका है, चौथा हाथ आलिंगन मुद्रा में है जिसमें वे अपनी शक्ति का आलिंगन किये दिखाये गये हैं। देवी का भी बायां हाथ खण्डित हो चुका है। इस मूर्ति में गणेश की सूड़ दाहिने मुड़ी है। एक अन्य मूर्ति भी गणेश-विघ्नेश्वरी की संग्रहालय में है। इसमें गणेश के दाहिने के दोनों हाथ खण्डित हो गये। इसमें गणेश को चतुर्भुज तथा देवी को द्विभुज दिखाया गया है। गणेश के बायें के एक हाथ में अंकुश तथा दूसरे हाथ से देवी का आलिंगन किये दिखाया गया है। देवी को बायें हाथ से गणेश का सूड़ पकड़े तथा दाहिने हाथ से उनका आलिंगन करते अंकित किया गया है, इस मूर्ति में उनका वाहन मूषक भी अंकित है।

गणेश - विघ्नेश्वरी की एक प्रतिमा जगदम्बी मंदिर के बाहर जंघा भाग पर उत्कीर्ण है। इसमें गणेश-विघ्नेश्वरी को ललितासन में दिखाया गया है। इस मूर्ति में गणेश चतुर्भुज तथा विघ्नेश्वरी द्विभुजी है। इसमें गणेश को एक हाथ में मोदक, दूसरे से आलिंगन किये हुये दिखाया गया है। शेष दो हाथ खण्डित हो चुके हैं। देवी का एक हाथ उभय मुद्रा में दूसरा खण्डित हो चुका है।

इस प्रकार खजुराहो के मंदिरों में गणेश की स्थानक मूर्तियाँ, आसन मूर्तियाँ, नृत्य गणेश मूर्तियाँ तथा शक्ति गणेश की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।

- शास. महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर

ढोला

- रामस्वरूप पटेल 'प्रधान'

एक राजा के एक कुँवर और चार बरेदी पाँचऊ खेलत ते हूड़र सुअर। उते चार बरेदी कान लगे जाओ, राजा गइयाँ लौटा लाऔ। कुँवर फिरवे गईयाँ लोटा के आ गये। बरेदी फिरकें बोले राजा गईयाँ लोटा लाओ तौ राजा बोले कै अपनी-अपनी गईयाँ लोटा लाऔ। चारऊ बरेदी बोले राजा तुम गईयाँ लोटा लाऔ, तुमारौ कौन ब्याव आय भओ। अब दिन डूब गओ राजा के कुँवर नन्ना सें बोले हमें गईयन में नईं जानें। हमाओ कोन ब्याव आय भओ। मताई बोली तुम्हारौ ब्याव हलके में हो गओ। राजकुँवर फिर गईयन में गये तौ चारऊ बरेदी बोले कै राजा तुम गईयाँ लोटा लाओ। राजा कौ कुँवर बोलो हमाई नन्ना जू काततीं के तुम्हारौ ब्याव हल्के में हो गओ। तब राजा को कुँवर रिसा गऔ तौ उनकी नन्ना जू सनाई कक्का खबास लो गई। खबास से बोली के कुँवर को चलाव करवा लाऔ। सनाई कक्का बोलो कै तुम कलेबा बना दो, तो उनने कलेबा बना दओ और नन्ना जू ने कलेबा बांदो, और कुँवर सें कओ कै बीच में केवला की गाँठ है। सो ऊपर मीठे तेल की और तरे गुलियाँ तेल की हैं। सो ऊपर की तुम खा लइयो और तरे की सनाई कक्का हाँ दे दईयौ। तो घोड़ा पै कुँवर साब और सनाई कक्का निगत चले चलत-चलत भोत दूर पौचे। जब दूर पौच गये तो उतै एक कुआँ पे चार पनिहारीं पानी भरती ती तो राजा कौ कुँवर सनाई कक्का सें बोलो, हम कछु इन पनिहारी से कै लइये। तो सनाई कक्का राजा के कुँवर से कात, इतै ना काव, कछु उपदरो बिद जैहै। राजा कौ कुँवर कात हमें तो सनाई कक्का काने हैं। तो सनाई कात राजा जो कछु काने होय सो कै लो। तब कुँवर कैसौ कात -

गैरे कुआँ मुख साँखरे, अलबेली पनिहार।
प्यासन मारे जी मरे, प्या बेर के नीर।।

तौ पनिहारी कान लगी -

प्या है तोरी माई बेनिया, के कुल ब्याही नार।
हम का पानी प्याइये, और पुरुष की नार।।

राजा को कुँवर फिर से कान लगो -

तुमाई हमारे भाई बहिनियाँ, तुमई हमारी कुल नार।
प्यासन के मारे जी जररये ला बेर के नीर।।

राजा को कुँवर और सनाई कक्का दोनों जने उते से चले और तला के पास पौचे उतै एक सखी दूसरी सखी से कान लगी -

बेई घुड़ला कुवला मिले, बेई तला के पार।
में सखी तोसे पूछो, कीके जे रिश्तेदार।।

फिर सनाई कक्का और राजा के कुँवर उतै से चले। तो नन्द भौजाई दोनों गैल में मिलीं, तो राजा को कुँवर कान लगो -

हरे-हरे दो रूखला, शीतल उनकी छाँय।
भूले मुसाफर हम फिरे, हमको गली बताँय।।

तौ बा सखी कान लगी -

हरे-हरे दो रूखला, शीतल उनकी छाँह।
उनई तरे हो चलो जा भौंइ, दूखे मोरी दाहिनी बाँह।।

राजा को कुँवर फिरसें कात -

चाँदी पैरो झकमकी, सोनो सिलमिलदार।
हीरा मौतन माँगे भरौ, तुम चलौ हमारे साथ।।

तो बा सखी का कात -

ना चाँदी पैरो झकमकी, न सोनो झिलमिलदार।
ना हीरा मोतिन माँगन भरो, न चलो तुम्हारे साथ।।

ता उतै से सनाई कक्का और राजा को कुँवर ससुराल पौचे -

हरे-हरे नन्दी लाड़ली, धीरे करौ बतकाये।
मोरे लगें नन्ददेऊ जे, तुम्हारे स्वामी आये।।

सो इतनों जासें उनकी भौजाई नें कओ, तो बे भीतर बिड़ गई नन्द को भव तो ब्याव, भौजी ती सगै। सनाई कक्का दीवान साव जू से कात, दिबान साब कुँवर खाँ तो होती है लागनें, सो मोय तौ भर पेट भोजन चाने और नाउ कक्का दिबान जू से कात कै कुँवर खो दार को पानी चल्ली में हो छान कें दइयों और अंधयारे घर में कुँवर कौ डेरा दइयो। और उल्ली खाट पे पारियौ -

सो बिन्नू राजा का बोली, जो खबास हमाये आदमी खाँ मारें लेत, सो जहाँ सें बारा बजे रात के तो रानी में मोंतन भार सजाओ और जाँ कुँवर कौ डेरा तो उतै पोंची - और कान लगीं-

मोंतन थार परस लये, अँगन जोत उजयार।
उठो स्वामी भोजन करलो, हम धन ठाँड़ी द्वार।।

तो राजा के कुँवर ने कछु ना कओ, तौ रानी बोली -

इकलर भींजै मोरी चोनरी, दूज लर मौरौ हार।
तिजलर भीजे मेरी देहियाँ, उठो भोजन करौ भरतार।।

तनक देर में रानी फिर सें बोली -

काढन पे पथरा परे, भोदू पे परे तुसार।
जरे-बरे बे देशरा, जाँ कन्या उपजे हमार।।

तौ रानी ने इतनो कओ और किवारे से मारी थारी और उतै सें भग गई, फिर अँदयाई हो आई तो राजा कौ कुँवर सनाई कक्का से बोलो कै हमाई विदा कराओ तौ सनाई कक्का राजा दिबान साब जू से कान लगे। कौ कुँवर कैरये के हमाई विदा करौ। तो दिबान साब जू बोले कै कुँवर कलेऊ हो जान दो सो हम आपकी बिदा कर दैबी। तो कुँवर कलेऊ हो गओ और राजा ने विदा कौ बुलऊआ दिबाओ, और सनाई कक्का से कओ कै अपनो घोड़ौ कसौ तौ सनाई कक्का ने घोड़ौ कसो और घोड़े की पींठ पै पथरा धर दओ, पाछूँ सें ऊपर गद्दा धर दओ और फिर सनाई कक्का ने घोड़ा कें एक मुगरा दओ तौ घोड़ो हिनहिनानों, तब कुँवर बोले के सताई कक्का घोड़ौ कैसें कस रए। तौ राजा ने देखो और कओ

कयरि नाऊ घोड़ा ऐसी कसने आऊत, पथरा धरकें फिर राजा ने अपने हाँतन घोड़ी कसो फिर राजा की विदा भई, राजा की सास दमांद सें बोली -

लीले डोरा पाट के, बीच गाँठ न पर जाय।
जोन ईनाम हमने दई, ऐसे कऊँ और हांत न जाय।।

तो कुँवर बोले सास सें कै -

लीले डोरा पाट के, बीच गाँठ पर जाए।
जोंन ईनाम तुमने दई, देव और खाँ जाय।।

फिर राजा दिबान अपनी रानी से कान लगे

लीले डोरा पाठ के, बीच गाँठ पर जाए।
जोन ईनाम तुमने हमे दई, और खाँ करो बकशीस।।

तौ फिर राजा ने चार ठइयाँ कहार और पीनस (ढोला) दिया और विदा की। चलत-चलत कहार बेर के पास पौंचे तब राजा ने कहारन से कओ कै तुम इतईं ढोला उतार दो तो उनने उतई उतार दओ। तब राजा के कुँवर सनाई कक्का से बोले कै रानी हाँ जंगल में छोड़ दो, तब सनाई कक्का कात कै ऐसी गलत होत, तब राजा ने कई तुमने भर पेट भोजन करे और हमें दार को पानी चल्ली में हो छाँन के पिवाओ। अब ऐसौ करौ सनाई कक्का कै तुम भग जाओ नईंतर हम तुमाई खाल टोर दैबी, फिर राजा कहारन से कान लगे कै तुम चारऊ जनें इतै से हट जाओ नईंतर हम तुमाई खाल टोर दैबी। फिर राजा ने रानी से कओ कै तुम अपने घरे भग जाओ नईंतर एई बेर में मर जाओ, हमखाँ तुमें लिवा नीं जानें। तब रानी कैसी कात -

हुमक-हुमक घोड़ा चले, मलक-मलक असवार।
धन उनके जीखा जिनकी तिरियाँ बेहर में डरी मार।
अपने मिंतन खाँ दइयौ बताए
तब राजा रानी से कान लगे -
ठुमक-ठुमक घुड़ली चलै, मलक-मलक असवार।
चाह लोट मायके जाव, चाहे वेहर में मर जाओ।।

और राजा के कुँवर रानी खाँ उतईं छोड़कें चले गये।

फिर उनने अपने मिंतन खाँ बताओ कै हम रानी खाँ भियाँ वितल्ली बेर पै छोड़ आये, तब उनके मिनतन ने कओ चलो राजा हम डुढ़वा लाये, फिर राजा और उनके मित्र डूढ़ने चले। चलत-चलत भियाँ, वितल्ली बेर पै पहुँचे तो उते मित्र बोले की राजा इतै काँ है ढोला, तो बे नाँय-माँय देखन लगे तो उने एक नौ लखा हार कौ एक गुरियाँ मिलो तो मित्र ने कओ काए राजा रानी नोलखा हार पहने ती का। राजा ने कओ पैरेतो हती ती ती, और आँगे चले तौ एक गुरियाँ फिर मिलो। ऐसंई डूँढ़त-डूँढ़त वे एक माली के बाग में पहुंचे। तो उते एक मालिन से बोले बाई हमें पानी पिबा देव तौ मालिन बोली राजा पानी पी लो, तौ उनने सोने के गिलास सें पानी पियो और मालिन कोद फेक दओ। मालिन बोली काये राजा अपनो गिलास ले लो, तौ राजा बोले जोन गिलास सें हम पानी पियत उयै उतईं फेंक देत। तो मालिन बोली कै राजा भीतर भगयाओ घोड़े बांध दो, तो राजा ने मालिन को एक मुहर दई और खाना और दाना लै आओ। मालिन गई खाना और दाना लै आई और बाँकी भन्ना ले आई मालिन बोली राजा अपनी भन्ना लै लो। तब राजा बोले हम जो देत उये लेत नईयाँ। तौ मालिन सें राजा ने कओ कै जोन तुम्हारे राजा काल परो ढोला ले आये ऊ काँहै। तब मालिन बोली - बो तौ पारे लगवाए हैं। उतै पौंचबौ भौत मुश्किल है। तब मालिन ने कओ तुम हमारे वेनौता बन जाओ। तब मालिन ऊ राजा लो पूछवे गई और विनती करी कै मोरे दो बेनौता को काम में लगा लो, तब राजा ने कओ कै मालिन जब इतने आदमी काम में लगे तो दो तुम्हारे लग जैहैं। तब मालिन ने फटे पुराने उन्ना कपड़ा पैराकें राजा को काम पै पौंचा दओ। तब राजा ने अपनी रानी को देखकें कई कै -

सोरा गोड़ की लगी नसैनी, उतरो चड़ो न जाय।
तोरे कारन रानी हम छिटियन ईंट उठांय।।

तब मित्र बोलो -

सोरा गोड़ की लगी नसैनी, उतरीं चड़ीं न जाँय।
रानी तोरे कारन, हम छितरिन ईंट उठाँय।

तौ जौन राजा रानी खाँ हर कें लै गओ तो तब जा रानी ऊ राजा सें कान लगी कै इन दो आदमन सें इतै ईंटें ना दुबवाव इनसे हाजरी, भरवाओ, तब ऊ राजा और उके मंत्री हाजरी भरन लगे। तो जोन राजा ले गओ तो उनके भीतर सें, तो रानी कात जिनसे हम ब्याहें हैं बेई राजा और उनके मित्र आ गये। फिर जाकें उननें मालिन को बुलाओ काए मालिन तुम इनकी बरन छिपा कें काए ले आई और राजा ने कओ कै जैसे राजा लोग आऊत हैं ऊँसई हाथी घोड़े सें आ जाते। तो उनके मित्र और राजा ने अपने-अपने घोड़े कसे और दूसरे राजा लौ पौंचे, तो ऊ राजा के एक बेटी थीं। तो वे अपनें पिता सें बोली -

लाखा मड़ से मूड़ गिरें, कटे लखूरे बाग।
लाखन पै पानी परो, आ गये लुवावनहार।।

फिर राजा और उनके मित्र के ऊपर बेटी नें रंग डारो फिर राजा के मित्र ने राजा की बेटी के ऊपर रंग डार दओ, राजा ने अपनी रानी की बिदा करबाई तौ राजा ने कई कै दद्दा एक विदा होने कै दो विदा होनें। तब दूसरे राजा ने कई कै ऐंसी कौन बात है भैया! तो राजा नें कई कै दद्दा जौ रंग देखौ कीने डारो। तब ऊ राजा ने कई कै दोई विदा करालो। तब रानी और दूसरे राजा की बेटी की विदा एकई संगे भई।

- पर्यटक ग्राम बसारी (छतरपुर)

चौकड़िया

- डॉ. राज गोस्वामी

वे आंखन में आँखें डारें, नजरन काजर पारें।
रस वर्षा कर गइ नजर सें, मच गई कीच द्वारें।
हिय में फूल रई है सरसों, चल रइ प्रेम फुहारें,
बैठे 'राज' खिसक पट्टी पै, ऐंनइ प्रकृति निहारें।

- सिविल लाइन, दतिया

बुन्देलखण्ड की होली

- विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास

बुन्देलखण्ड और ब्रज भूमि का सगा रिश्ता है। इस सम्बन्ध को जोड़ती आई है - जमुना, चम्बल और सिन्ध की धारायें। चम्बल जहां मुरैना को नहलाती, भिण्ड की भूमि को लहराती, क्षेत्र को भुला नहीं पाती, वहीं सिंध की धारायें मालवा से मचलती दतिया के सनक सनन्दन सनतकुमार की तपस्थली सैंवड़ा को अपनी वानगी से सनकुआ के प्रपात को पुण्यस्थली बनाते आगे बढ़ती है। जमुना यथा भ्रमण करती कालपी से होती हमीरपुर और जगम्मनपुर में त्रिवेणी का रूप लेती है। ये सभी क्षेत्र ब्रज की विभुता को समेटे अपनी संस्कृति को बुन्देलखण्ड पर निछावर करते लगते हैं।

जिस प्रकार ब्रज में हर दिन कोई न कोई त्यौहार होता है, मेले होते हैं, वही दशा बुन्देलखण्ड की है, यहां के बालक, युवा-प्रौढ़ और वृद्ध की अपनी मस्ती है, मौज है, आनन्द है, उत्साह है, काम है, कर्मठता है और हैं प्रकृति के परिवर्तनों से जुड़ते अन्न-जल के संग कला-संगीत-साहित्य और सामाजिक सरोकारों के संस्कारजन्य स्वभाव। कभी बालाजी (उन्नाव जिला दतिया) में किसी पर्व पर जख्खी मेला (लाखों की भीड़) तो कभी ओरछा के रामराजा के चरणों में करोड़ों भक्तों के समर्पण, खजुराहो के विश्ववैभव के संग अपने मेला-तमाशों-हाटों के हर्ष, मतंगेश्वर के दर्शनों की लालसा, जटाशंकर-भीमकुण्ड, आदि में स्नानों के लिए उमड़ती उमंगें। नर्मदा के तट पर उनके गुणगायन की तानें बुन्देल वैभव को कहती हैं, इन्हीं संस्कारों में बुन्देली काव्य पला पुसा है, अपनी विविधता सहेजे है।

होली तो बुन्देलखण्ड के उत्साह का, उल्लास का, समता का, सौहार्द्र का, संगीत का, संगति का, विशेष त्यौहार है। यहाँ भेदभाव दिखता नहीं, इस त्यौहार पर छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब सभी एक ही गरिमा में ढले, सहज सुगंधित, फूला से संगुधी माला के एक अंग, एक घटक, एक पूरक से लगते हैं।

होली का यह जीवन बुन्देलखण्ड में बसन्त पंचमी से आरंभ होता है। रजवाड़ी के समय में बसंत पंचमी से गुलाल का तिलक लगाते, मन्दिरों में बसंती त्यौहार मन उठते हैं। दरगाहों पर बसंत बाँधने के समागम होते-बसंत बंधने का आशय गुलाबों से सजा शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय सुगम संगीत, लेद, टप्पा, ठुमरी, दादरे, धमार, राग बसंत, होली-फाग, रावला गायन, ठुमरी की ठमक, ख्याल गायकी के बालों के, उठते-चरम पर पहुंचते सारंगी के सतरंग तबले की थाप, पखावज की परख, ढोलक की गमक और मृदंग की मदिरता। सभी गजलों-भजनों में समाहित होती कब रात बीती पता ही नहीं चलता। इन संगतियों में किन्हीं-किन्हीं अवसरों पर नृत्यांगनाओं के नूपुरों की झनक वातावरण को झंकृत करती देखी जाती रही है। उपस्थिति भक्ति के इन प्रतीकों के परिसर में अपनी अस्मिता को आनन्दित करती सभी प्रकार के अभावों, असंतोषों, गरीबी को भूलती गहरे ईश्वरी सरोकार में सराबोर सी लगती दिखी है। कहना न होगा, फागुन से बैसाख तक उल्लास के गीतों के फागों के कविता के संगीत और नृत्यों के नित नये प्रदर्शन किसी पवित्रता के हमारे सोचों के साथ धरती पर थिरकते से लगते आये हैं।

ऐसा ही वातावरण ग्रामीण, कस्बाई, नागरी क्षेत्रों में देखने को मिलता रहा है। टेसू के फूल की झांकी वांकी है तो अन्य सामयिक फूलों की फुलवारियां भी कम नहीं, महुआ की टपकन-रिसन, रावला के शब्दों में 'रस चुई-चुई जाय' 'महुआ मदन रस भरे' के भाव जवानी में उभरते से लगते, इनके स्वरों पर लोग झूम उठते-नाचते, मौज मनाते, हर गांव में दिखते-अपनी फसलों के वरदानों में फूले सभी दुख भूले से लगते हैं।

बुन्देलखण्ड के अधिकांश क्षेत्रों में फाग-राग के ये मेले बैसाख तक जुड़ते और अपनी मस्ती को संजोते आगे पूरे वर्ष के लिए यथार्थ से लड़ने की तैयारी करते लगते रहे हैं। यह मंत्र आज भी कारगर है, हो सकता है कि इन पर्वों की पवित्रता, सच्चरित्रता संजोजन स्वभाव और इनके संदेशों को ग्राम्य, फूहड़, अपढ़ गवांरू आयोजन न मान के, उनकी कला से संगतिकरण हो। संभ्रान्त-सहज से, विद्वान-अपढ़ से पढ़े और अपनी विद्या को पुराणों की प्रथा की भांति समग्रता दे पूर्णता दे, अधकचरापन जो मान्यता पा चुका है, पुस्तकी विधा सभी कुछ नहीं है, है तो अनुभव, अवस्थाजन्य आघातों के संदेशों का ज्ञान। ये हमें पूर्णता देते हैं तो यही सब पाने को होली पर ग्रामीण संस्कारों में समा जाते हैं, भूल जाते हैं कल को, जीते हैं आज को। संगीत के सारे अंग इन अनुभूतियों से पनपते आये हैं। यही कारण है कि वे आज भी आनन्द देते हैं। लोक संगीत की समग्रता जीवन के हर अंग की हर कार्यकलापों की सहज रूप से प्रदर्शित करती लोक लुभावन बनी है, आज संगीत के नाम पर शोर-भौड़ापन, फिल्मी जिसका अर्थ ही झिलमिलाहट है, का कोई स्थायित्व नहीं, प्रकाश नहीं। अंधेरे से पनपती ये विद्या, हमारी जीवन बालक से वृद्ध तक बेटी से बूढ़ी तक ऐसी समा गई है कि परम्परागत विशेषतायें विलख उठी हैं। किसी भी पर्व-त्यौहार, विवाह संस्कारों में वह सौष्ठव वह अनुभूति है ही नही। गायन के नाम पर जोड़-तोड़, हल्ला-गुल्ला, साज नहीं-आवाज नहीं, केवल शोर, नाच के नाम पर पैर पटक। नृत्य की भाव प्रधानता, नृत्य का शारीरिक संचारण, समर्पण, आत्मिक स्वभाव, थिरकन, पदक्रम, मन्द और द्रुत गति का पग संचालन, मुद्राओं की अभिव्यक्ति, शालीन वेशभूषा कला की पूर्णता जताती है।, अब केवल आर्केस्ट्रा की कर्कशता हमारी कला को सांसें भरने को लाचार किये है। हमारी इस विधा को, संस्कृति को, पूजा को, राग विराग को, अभी तक माहिलायें रखते चली आई हैं। आज बालक-बालिकाओं के जो हाव-भाव इन अवसरों

पर देखने को मिलते हैं, उनमें न भावना है, न समवेदना है, न सात्विकता, न सामाजिकता न समरसता है, ना ही किसी सत्य की साधना का, संगीत की आराधना का, रूप हमें मिलता है। हमें होली के नागर और ग्रामीण-उत्सववों में घुलके फिर से अपने अस्तित्व को खोजना है, सहेजना है और भारतीयता को पुनः स्थापित करना है।

विवेकानन्द जी कहा करते थे कि हम भूखे हैं, नंगे हैं, गरीब हैं, पिछड़े हैं - ठीक, पर हम आज भी अपनी कला, संस्कृति-नृत्य, नाटक, के निर्देशन के आनन्दभाव के इतने धनी हैं कि इसे सहेजे रहने पर सदा सदा को विश्व का मार्गदर्शन कहते रह सकते हैं।

ग्रामीण और कस्बाई क्षेत्रों में भी नगड़िया में जवानी के स्वर झूम उठते हैं - पग थिरक उठते हैं , होलिका दहन के बाद फागों का यह सामूहिक क्रम वैसाख तक चलता है, गाँव में फसलें आ जाने पर, होली-फाग के, भरे-पूरे दृश्य हर जगह, हर गाँव में देखने को मिलते हैं, दिन में खेती-किसानी और रातों में गायन-वादन में नृत्यों में ठुमके में जनमानस नित नई ऊर्जा प्राप्त करता देखा जाता है।

नगरों में आज यहां कल दूसरे स्थानों पर फड़बाजी होती है। फाग गायकों की स्पर्धा टोलियां एकत्रित होती हैं और चौकड़याऊ तथा छन्दयाऊ फागों की गायकी प्रतियोगिता रातों रात चलती है। जहां नृत्यांगनायें उपलब्ध हैं, वे इस फड़ गायकी में रात भर नृत्य की संगत करती हैं। कहीं उस नृत्यकला के पारंगत युवा नारी वेष में (इसे लांगी कहते हैं, कदाचित् लहंगा-लुगड़ा पहनने से लांगी शब्द बना हो) लांगी बनके पूरे जोश से नृत्यांगना की पूर्ति करते। कहा जाय उससे भी अधिक जीवट से नृत्य का मंद तथा दौड़ का प्रदर्शन करते हजारों-लाखों की उपस्थिति का लुभाते आये हैं।

पहले निश्चय होकर, एक फड़ का नेता, गायक, फाग का गाना आरंभ करता है। (फाग में साखी अर्थात् दोहे को लम्बा खींचकर साखी बना है) दोहा कहता है - उदाहरण -

"चित्रकूट में रम रहे रहिमन अवध नरेऽ...ऽ...श।।
सो जा पै विपदा परत है सो आवत इह देऽ...ऽ...श।।"

साखी के बाद नगड़िया की टंकार और मृदंग की झंकार-सारंगी के स्वर रूप के आगे की भूमि तैयार करते हैं - गायक फिर स्थायी कहता है, ये स्थायी चौकड़िया फाग की तरह की होती है। उदाहरण - बखरी रहियत है भारे की, दई पिया प्यारे की, इसमें वाद्य मंदगति से संगत करते हैं। गाँवों में लम्बी गायकी की प्रतियोगिता है सो छन्दयाऊ फाग का प्रचलन बहुत होता है। अब छन्द शुरू होता है (जैसे सैरे-ख्यालों में) छन्दों में बुन्देली काव्य की छटा सुनते बनती है, जो विषय उठाया जाता है, वह अन्त तक मिलता है, ये सफलता है, छन्द कहने में वाद्य धीमी गति से बजते हैं, नगड़िया की टिपटिप, ढोलक की धुन, मंजीरा झांझ, झींका, बेला, चिमटा, चंग, रमतूला, तुरही, मदनभेर, ऐसी संगत देते हैं कि छन्द के बोल श्रोताओं को पूरे सुनाई देकर साज संगति का भी सुख मिलता है, इसके चलते लांगी भी ठुमका की गति धीमी थिरकन करती चलती है, बोलों पर तैरती सी लगती है, और ज्योंही एक विषय का प्रतिपादन करके छन्द पूरा होता है, तो एक तरफ से टोली के गायक, नायक के संग द्रुत के स्वर भरते हैं - उदाहरण -

सो-सो (सो महत्व का है) कहते ही अन्तरा के वे ही स्वर - 'बखरी रै यह है भारे की दई पियारे की' द्रुत में गाते हैं, इसे दौड़ कहते हैं। इसकी संगति पूरे साज और लांगी के पगों के संचरण उसी गति से दौड़ते हैं। आज सभी दौड़ में बचाते हैं, और लांगी इस छोर से उस छोर तक... चक्करदार थिरकती, दौड़ती, संग में दौड़ते मशालची, रास्ता दिखाने को, अलावों की रोशनी और मशालों की ज्योति में ये फड़ जमते हैं। धीरे-धीरे दौड़ फिर क्रमिक मंथर होती, और मूल गायक धीरे-धीरे फिर साज को धीमा होने का समय देकर आगे विषय का छन्द कहते अपनी बात पूरी करता। तब दूसरा प्रतियोगी फड़ उसी विषय को उठाके स्थायी छन्द और अन्तरा कहके साजों के संग अपनी श्रेष्ठता जताने का क्रम करता। नर्तकी इसका भी उसी प्रकार थिरकनों से साथ देती और ये फड़ रातों दिन चलकर अन्त में समाधान के बाद समारोपण होता। सैरों की भांति उन छन्दों में लोककाव्य हमें सुनने को मिलता है। इनके विषय होली-फाग दिवाली, प्रकृति, बसंत, श्रृंगार-भक्ति, वैराग्य और मैया कबीर (कवीर की फाग की एक गायकी है) सुनने को मिलती है। आवश्यकता इस बात की है कि पुराने फाग गायकों से उन छन्दयाऊ फागों को एकत्र किया जाए कि होली की विशेष धरोहर हमारे लोककाव्य को समर्थ करने में सहायक हैं। ये गायक पेशेवर की भांति विशेषज्ञ के रूप में पहिले अपनी टोली सहित महीनों से जन मानस को मोहित करते आ रहे हैं। फड़ की तैयारी, गांव के प्रमुख व्यक्ति पंच-सरपंच, पटैल, मुखिया और समृद्ध किसानों द्वारा संयोजित होती रही है। आज भी हो सकता है कि इस फड़ बाजी के दृश्य कहीं कहीं देखने-सुनने को मिलें।

ग्रामीण अंचलों में होली के उत्सवों की एक कड़ी आकर्षक, कलात्मक और उत्साहवर्द्धक देखने को मिलती है - वह है 'गुड़बधना' जैसा लिखा जा चुका है रात्रि में फड़बाजी से पूर्व दिन से कहीं कहीं गावों में गुड़ बांधा जाकर, इस आयोजन में पौरुष के, कसरत के मलखंब के विशेषज्ञों की कला का आनंद देखने को मिलता है।

ग्राम के मैदानी क्षेत्र में एक लम्बा खंभ गाड़ दिया जाता है, इस खंभे को अलसी के घोल से चिकना किया जाता है और महीनों पहिले तिल के तेल से चिकना किया जाकर फिसलने की स्थिति बनाके गाड़ा जाता है, गाँवों के दो-पाँच युवा जो मलखंभ पर चढ़ने के अभ्यस्त होते हैं, इस खंभे पर चढ़ने की साहस भरी कला दिखाकर आनंदित करते हैं, खंभे के ऊपर परियां-दो परियां और अधिक गुड़ बांधा जाता है। साथ ही सैकड़ों हजारों की राशि पुरस्कार हेतु बांधी जाती है। इस खंभ पर चढ़ने से रोकने के लिये

गांव की वधूटियां हर जाति वर्ग के घर की अनुमति से लम्बे डंडे लेकर खंभ के चारों ओर घूमती हैं। हलके स्वरों से फागें गाती, धीमें साज बजते कि मुख्य आकर्षण खंभ से गुड़ तोड़ना देखने की ललक पूरी हो दो-पांच मलखंभ पर चढ़ने के आतुर युवा एकत्रित होकर घुटनों तक पंचा, अंगरखा, और सिर को चोट से बचाने के लिए बांस की ढालें ओढ़े हल्ला बोलके रक्षक बालाओं को हटाते, खंभ तक पहुँचने का प्रयास करते तब महिलाओं की मार से चोटें खाकर-भागते। अंत में एक व्यूह रचना करके सर्वाधिक चतुर को खंभे तक पहुँचाने को स्वयं लाठी खाते रहते, इस बीच एक युवक पहले सीधी कैंची काटके खंभे पर चढ़ता और अपनी पकड़ मजबूत करके दूसरी उल्टी कैंची, पावों की लगा के आधे खंभ तक पहुंचकर वही की मार से ऊपर होता गुड़ तोड़ता, सारा वातावरण दर्शक गांव-गांव से आये लोग वाह-वाह करते गुड़ टूटता, सभी पक्षों को तोड़ने और रोकने वाली बहुओं की टोलियों को गुड़ और पुरस्कार राशि बांटी जाती, आयोजक अलग से पुरस्कृत करते, प्रशंसा करते, होली की इस भावना में निहित योगक्रिया की परिपक्वता को बनाये रखने के संदेश देते, विदा होते। ये कार्यक्रम झुलपुटे (अंधेरा होने से पहिले) तक पूरा होकर रात्रि में फाग का फड़ जमता। गायकी चलती, इस उत्साह का फल- ग्रामीणों को अपने कठिन काम के जीवन को जीवट से चलाने का मिलता, गांव की होलियों में क्रम आज भी आयोजित हैं। इसे प्रोत्साहन की आवश्यकता है। होली की हरी-भरी इस जिजीविषा से हमारे ग्राम, नगर, जिला, प्रदेश और देश की राष्ट्रीय एकता बनी रह सकती है।

ग्रामों-नगरों में घर-घर, हुरियारे छैला राधा-कृष्ण और गोपियों के भाव भरे होली खेलते दिखते हैं। देवर-भाभी की होली, रंग, गुलाल से सराबोर करने की हुलक देखते बनती है। इस सब आंगिक प्रक्रिया में आत्मपरक आनंद का आशय होता है, श्रृंगार रस की सरसता, रसज्ञता के दर्शन होते हैं, प्रेम प्रदर्शित होता है, पर वासना से कोसों दूर होली की ये कलात्मकता, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीयता की साधना से सधी देखी जा सकती है।

गाँव के छैला-मोहन बने भटकते-मचलते-रिश्तों से रीझतीं भाभियों से होली खेलते तो भावना भरी भाभियां भी गा उठती -

'आओ-आओ तुम नैक अब डारौ तौ गुलाल
मार-मार गुलचा हम करै लाल-लाल।।...
बड़े बनै बापके तौ हम नइयां छोट,
दुकियो नई आज नैक मैया को ओटा...।।

जहाँ छैला अपनी लम्बी पिचकारियों के रंग से भौजी की साड़ी को सराबोर करते भागते, वहीं, गोपी के भाव भरी भौजी, उन्हें चुनौती देती -

"मार दैंय कुमकुम तौ मीड़ है अबीर
तार-तार करहैं तोय जात के अहीर।"...

देवर जहाँ भौजाई के नाते केवल पर सदा छेड़त-परेशान करते रहते तो उनकी ये भौजाई उनकी करतूतों का बदला होली के अवसर पर उनमें कन्हैया आरोपित लेने लगती -

असली हौ बाप के तौ मीड़ौ अब गुलाल
सांवरौ सौ रूप तेरो करै लाल-लाल।। होरी खेलबो...
होरी खेलबौ हो बांके सरताज।।...

आध्यात्मिक रीति से परखें तो होली असत्य पर सत्य की विजय का पर्व है, होलिका के अहम् पर प्रहलाद की सरलता, सात्विकता की जीत है। इसी भावना से प्रेरित, माघ की पूर्णिमा पर होली का डांड़ गाड़ के फागुन के पूरे महीने, मुहल्ला, पुराओं की टोलियां, अपनी टोली को औरों से बड़ी होने की होड़ में बालक, युवा दिन-रात, झाड़-झंकार, लकड़ी, टूटे-फूटे फैले कबाड़, एकत्रित करते, कभी कभी तो शैतानी में नये तखत-पटिया भी होली में डाल देते। इनके मालिक आते देखते-गाली देते, रोते और हां हंसते चले जाते। होली में डली वस्तु उठाते नहीं, कहा जाता है कि 'होरी कौ कुटौ और दिवारी कौ लुटौ कोऊ नईं पूंछत' तो मालिक होली के लिए अपनी भी ये आहुति मानकर संतोष करके घर बैठ जाते। खेतों की सूखी विरवारी, होली वाले खींचते। उठाते-दूर दूर से लाकर होली में डालते। खेत वाला डंडा लेकर दौड़ता और वापस हो जाता। ये क्रम पूरे महीने चलता, अपनी-अपनी होली बढ़ाने एवं ऊँची करने की होड़ में ये शैतानियां, भक्तियां नित नये रूप लेती, झगड़े भी हो जाते, पर अंत में सब शान्त।

सायंकाल ये टोलियां घर-घर जाकर कण्डा (उपले) इकट्ठे करती-फिरती-गाती - 'देओ माई ऊतरा तेरे जिये पूतरा।' और माइयां पहिले से ही पांच-पांच कण्डे होली के इन हुरियारों को दान करने के पुण्य के लिये खड़ी दिखती। लड़के कण्डे लेकर गाते 'देओ माई कण्डा-तेरे जिये सण्डा'। यहाँ सण्डा कोई गाली नहीं, बलिष्ठ और सफल युवा बनके जीने का वरदान सा होता।

फागुन मास की पूर्णिमा को नगर की मुहल्ला की होलिकायें पूरे अनुष्ठानों से जलाई जाती। बाल, युवा, प्रौढ़, बूढ़े सभी एकत्रित होते - महिलायें परिक्रमा करती और होली के पूरे जल जाने पर उसकी आग सभी जन अपने घरों की होली उस आग से जलाकर नई अग्नि का आवाहन करते, नई बालों को (नवान्ह) को भूनते-प्रसाद ग्रहण करते और पूरे वर्ष को नई ऊर्जा प्राप्त कर आश्वस्त दिखाई देते हैं। सामुदायिकता का ये बेजोड़ उदाहरण हमारी संस्कृति की सहज कृति होलिका की देन है।

होली जली कि बस दूसरे दिन से फाग के हुड़दंग और संतुलित प्रदर्शन, जनमानस को आनंदित करते देखे जाते हैं।

तिलमुखरा (अपने को समूहों से अलग, अपनी रीति-नीति और चला कर ऐंठे फिरते होली की इस मस्ती को नापसंद करते, कहां क्या मूर्खता है आदि) गुलाल का शिष्टाचार करते आदि उनका सोच है। इस प्रकार से समाज से अलग करे और अपने अहम् में डूबे लोगों को तिलमुखरा कहते हैं। ऐसे लोगों को सबक सिखाने का अवसर होली पर मिल जाता है। होली के इस उल्लास

की एक पुण्य और आत्मिक हुलास का पर्व मानने वाले प्रौढ़-बुजुर्ग एक ओर दूर बैठ जाते और किशोरों, युवाओं को संकेत से थपथपाते ऐसे लोगों पर खूब रंग डालने को प्रोत्साहित करते। तिलमुखरा ज्यों ही गाली देकर इन बच्चों को मारने लगते तो बुजुर्ग भाग के बालकों को ऊपरी डॉंट बता के चांटा मारके भगाते और उन सम्भ्रान्त को उनकी कही बात का पालन करके उनको रंग में भीगने वाला या मुंहसर वालों को गुलाल से इतना मलते कि वे सज्जन हारे सा मुंह लेकर चले जाते। वातावरण हास्य रस से सज जाता। ऐसे खेल अनेकों बार होते। तात्पर्य, होली होली के रंग गुलाल की लीला को नकारने वालों को अनुरूप सजा असामाजिक विचार के लोगों को मिलती जाती और फाग की अपनी अपनी उमंग कुलाचें भरती सबको आनंदित कर देती।

सामाजिक त्यौहारों-रीतियों के अनुसार होली के बाद दूसरे दिन पड़वा को, बहनोईयों को उनकी बहिनों (ननदों) को निमंत्रण देकर बुलाया जाता, जमके होली होती, फिर तिलक करके भेंट आदि देकर विदा की जाती, इसके बाद दूसरा दिन बीतने अपने भाइयों और भाभियों को बुलाती बदले में दुगुनी गति से होली होती। भाई को दूसरा टीका करके आशीर्वाद दिया जाकर सभी को फल फूल मेवा-मिठाई और वस्त्रों की भेंट देकर ससम्मान विदा किया जाता। ये रिवाज हर जातिवर्ग में अपने स्तर पर स्थापित है, अविस्मरणीय बना है।

इधर घर-घर में होली के ये मिलन दृश्य देखे जाते तो मन्दिरों में भक्ति और सामाजिक संगीतज्ञों की फागें होती। विग्रहों के सामने-पूजा के बाद रंग गुलाल लगाया जाता, प्रसाद बंटता, तथा रात रात भर होली के राग बसंत ध्रुपद-धमार तथा ठुमरी, दादरे विशेषज्ञों द्वारा भगवान के समक्ष गाये जाते। सारंगी, पखावज, मृदंग तानपूरा की संगत होती। शास्त्रीय संगीत के शाश्वत स्वरूप की प्रतिष्ठा होती, शिक्षा इस माध्यम से दी जाती कि भावी-पीढ़ी नाद ब्रह्म की साधना में लीन हो इस प्रकार होली का यह उद्देश्य भी पूरा होता।

राजों महाराजों के किलों-महलों कोठियों पर दरबार लगते। लाल केशरिया और गुलाबी रंगों से हौज भरे जाते। धवल वस्त्रधारी दरबारी ज्यों ही आते उन्हें कुण्डों में डुबो कर लाल पीला कर दिया जाता। तब महाराजा के दरबार में बैठने की पात्रता मानी जाती, यहां नृत्यांगनाये, नृत्य करती, गायकायें होली-फाग गाती। 'मत मारो पिचकारी- मोरी भींजे-चूनरसारी'। इस प्रकार होली के दरबार सम्पन्न होते, नजर निछावरें होती, और होती विदाइयां।

जागीरदारों, जमीदारों, राव साहब, दिमान साहबों के भी अपने दरबार सजते। होलियाँ गाई जाती। शास्त्रीय और सुगम संगीत के सुर सधते, आनंद बरसता, हर वर्ग जाति स्तर के लोग बिना किसी भेदभाव के एकमय होते, रंग गुलाल लगाते और मुंह मीठे किये जाते। होली की समता की भावना की ये देन भारतीयता की पूंजी है। आज इनको गलत आंका जाकर भेद स्थापित किये जाने में देश की प्रगति कहा जाता है।

किन्हीं-किन्हीं रजवाड़ों के राजमन्दिरों में दूज के दिन विग्रह के पूजन और होली मिलन की भावना लेकर मन्दिर से जुड़े हजारों जन तक बड़ा नगाड़ा बजाते, सभी अपनी गलियों में गुलाल अबीर भरके, रंग खेलते गलियों बाजारों से निकलते। भगवान के नाम पर जमके होली होती कि सड़कें गुलाल-अबीर से पट जाती। कहीं कहीं किस मुहल्ले में शोक हो गया हो तो नगाड़ा नाच गाना बन्द होकर पूरी भीड़ शांत से चलके उस घर की देहरी पर चुटकी चुटकी गुलाल डालके उस घर में शीघ्र खुशी आ जाने की मंशा लेकर आगे बढ़ते। नगर के दूसरी छोर बड़े तालाब झील पर स्नान करते और ये नगाड़े की होली का आयोजन अपना प्रभाव छोड़के आगे को जनमानस को आशीष देता। संवेदना और सामूहिकता के ये आचरण होली के नाम से आज के परिवारों और समाज के विघटन की अलगाववादी वृत्तियों को त्याग के आदर्श जीवन जीने के पाठ सिखाते हैं, ऐसी होलियां पड़वा से चतुर्थी तक चलती रहती और फिर फाग पंचमी को देश के अनेकों हिस्सों में बड़ी जबरदस्तपूर्ण खेली जाती है।

बालाजी (उन्नाव जिला दतिया) में रंगपंचमी के रंग ही अलग है। ये रागों के पंचम स्वरों से आगे जाकर सप्तस्वरों तक भी ठहरता नहीं लगता। अपार जनसमूह बुन्देलखण्ड, महाकौशल और देश की उत्तरी भाग मुरैना, भिण्ड, गुना, शिवपुरी, आदि स्थानों से बालाजी के लाखों भक्त यहाँ एकत्रित होकर होली मनाते हैं। बालाजी का मन्दिर फरलांगों फैले लंबे मैदान-चौक के बीच में स्थित है। पूरा मन्दिर घाट-पहूज के पावन जल सा पवित्र विशाल लम्बे घाटों और ऊंचाई पर मन्दिर का प्रांगण चारों तरफ से कमरों-गवाक्षों, छज्जों से घिरा दूर से ही मंदिर के कलश के दर्शन करने की सुविधा देते- ये भवन बनाये गये हैं। पंचमी की होली हजारों पीतल की लम्बी पिचकारियों में पीला, लाल, गुलाबी रंग भरके उड़ता, लाखों मुट्ठियों से झोली भर भर कर गुलाल उड़ा रंग गुलाल की कीच मची है" बोलों की सार्थकता करता, 'उड़त गुलाल लाल भये बादर' होकर प्रत्यक्ष रूप लेते देखे जाते। शाम चार बजे तक जमकर होली बालाजी के नाम पर होती और बाद में पहूज में स्नान होता तो नदी का जल मीलों तक लाल हो जाता ऐसा आनंद आज मिलना दुर्लभ है। लाखों भक्तों की इस भीड़ में न कोई चोरी, न जेबकतरी, न विवाद, न दुर्घटना और न ही किसी प्रकार के लड़ाई-झगड़े, न कुचला जाना, सभी सुरक्षित। आस्थाओं के अनुशासन से जुड़ी इस लाखों की भीड़ के आयोजन को किसी के द्वारा रक्षा की आवश्यकता नहीं। सभी आत्मानुशासन से नियंत्रित-आनंदित होकर सायं आरती लेकर पास-पड़ोस के लोग अपनी बैलगाड़ियों, छकड़ों में वापस होते। बालाजी के भजन गाते तथा नया वातावरण बनाते, घबड़ाते, गांव-गांव गर्वीला करते अपने घर पहुँचता। दूर आंचलिक भक्त आरती-भोजन-विश्राम के बाद प्रातः की मंगला आरती लेकर विदा होते। ये क्रम थोड़ा बहुत आज भी होगा ऐसा विश्वास है। दूसरे-बड़े तीर्थों में भी ऐसे

आयोजन इस क्षेत्र में होते हैं।

बालाजी का ये मन्दिर-हजारों वर्षों से विश्वप्रसिद्ध है। सूर्य का ये चक्र बालाजी (उन्नाव-दतिया) में है तथा ठीक यही दूसरा अमेरिका के इण्डो-अमेरिका क्षेत्र में स्थित है। लाखों की चढ़ौत्री, शासन को देता ये तीर्थ अब अपेक्षा करता है कि इतने विशाल मीलों फैले किले के घाटों के सुधारों, नवीनीकरण के लिए शासन सोचे, विशेष विकास प्राधिकरण स्थापित करे कि क्षेत्र को नया जीवन मिले और ये धार्मिक अनुष्ठान यथावत चलते रहें।

होली के समैया के ये विविध प्रसंग हमारी लोक चेतना की देन है। लोक जीवन के ये उत्कृष्ट रूप, समैयों के संदेश हमारी संस्कृति की कलात्मकता, वैचारिकता की पूर्णता के परिचायक हैं। आवश्यकता है आज का जीवन इनके मर्मों को समझे, माने और इस लोकानन्द को अमरत्व प्रदान करे।

बुँदेली के तीन प्रमुख कवि गायक हमारे गौरव हैं। ईसुरी के साहित्य का अमरत्व, ख्याली की गायकी, ठसक और गंगाधर व्यास की गरिमामयी लोक लालित्य की रचनायें हमें आज भी आत्मिक आनन्द देती हैं। गंगाधर जी के अनुसार -

मनमानी छैल खेलो होरी, लाज सरम सब देव टोरी।
मईना मस्त लगौ फागुन कौ अब ना कोऊ दै है खोरी।
धरै न नाव पुरा पाले के लड़ै न सास ननद मोरी।
गंगाधर ऐसे अवसर पर मन की लगन बुझै तोरी।।

बुन्देली के हास विलास वैभव की बानगी है। विस्तार भय से अब और अधिक न कहके, एक यही याचना है, प्रार्थना है, विनती है कि होली के ये हुलास हमारे राष्ट्रीय विकास के लिए सामुदायिक उल्लास देकर देश के प्रति अपने-अपने दायित्वों के निर्वहन के लिए नई रंग भरी प्रेरणा दें।

- नरसिंहगढ़ पुरवा कॉलोनी, छतरपुर

ससरारै ना जैबी

- नवल किशोर सोनी 'मायूस'

अब कभ्भउँ ससरार न जैबी हमनें मन में ठानी।
ई दइयाँ सारी सारन नें भौत करी शैतानी।।

एक दिनाँ सबरन नें मिलकें हमें करेज लगा दइ।
को जानें ऊ दिनाँ इनन नें कबकी लगी भँजा लइ।
तलफे ऐंन मछरिया जैसे सबरी देय खुजानी।। अब...

बिना बिनी खटिया पै उननें एक दिनाँ बैठारो।
हम धरती पै गिरे धम्म सें बिनाँ मौत को मारो।
चार दिनाँ लौ चिल्लाने हम जब करयाइ पिरानी।।अब...

जबरइँ हमैं लुबा गए सबरे बेर मकुइयाँ ख्वाबे।
सकरा में होकें बे लै गए काँटन में छिदवाबे।
जैसी गत करवाई उतै सो बा ना जाय बखानी।। अब...

बाइसिकल खौं पन्चर करकें रोजउँ हवा निकारें।
नकुवन में दम हो गइती सारी सारन के मारें।
ढूँढ़ें पम्प मिलत्तो कउँ ना भौतइ भई हैरानी।। अब...

काँलौ आज गिनायँ उतै भए कैसे कैसे स्वागत।
जाकें उतै मोल लइ हमनें अपने हाँतन आफत।
मिलत हती सोबे के लानें कथरी फटी पुरानी।। अब...

मिलत हतो संजा कें खैबे दिन भर भूँकन सुट्टे।
साँची कत 'मायूस' उतै हम कुल्ल दिनन लौ कुट्टे।
नइ परदनिया लैकें गए ते बा लौ उतै हिरानी।। अब...

- कोतवाली के पीछे, छतरपुर (म.प्र.)

करौला निवासी कवि गंभीर सिंह का काव्य

- डॉ. बहादुर सिंह परमार

बुन्देलखण्ड भूमि में वह तासीर है कि यहाँ लोककंठ में कविता स्वयं फूटती है। यहाँ गाँव-गाँव में कवि व कलाकार अपनी सर्जना से लोकमानस का रंजन करते हैं। यहाँ मध्यकाल में विभिन्न कवियों ने कविताएँ रचकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। यह परम्परा को आधुनिक काल में भी विद्यमान रही है। यहाँ अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं से लोक को प्रभावित करने के साथ साहित्य समृद्धि में योग किया है किन्तु कुछ ऐसे कवि भी हुए हैं कि उन्होंने अपनी कलम से बेहतर रचनाएं लिखीं, उनको प्रकाशित कराया किन्तु समीक्षकों, विद्वानों ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि वे गुमनामी में चले गए। उनके परिजनों में भी कोई साहित्य का समझदार नहीं हुआ जो उस धरोहर को सहेज सके। मैंने ऐसे कई कवियों को काल कवलित होता देखा है। मुझे जब तक उस कवि की प्रतिभा के किस्से सुनने को मिले, उनके परिजनों से संपर्क कर संबंधित कवि की रचनाओं को प्राप्त करने का प्रयत्न किया। तो जवाब मिला कि सारी पांडुलिपियों या रचनाएं रचनाकार की चिता में ही फूँक दी गई। कवि के परिवार के लोग इतने निष्ठुर हो सकते हैं, इतना मैं सोच भी नहीं सकता था? खैर, ऐसे प्रकरण दर्ज हुए हैं। लेकिन बुन्देलखण्ड में ऐसे कई लोग हैं जो रचनाओं को सहेजते हैं, उन्हें संरक्षित करने में मदद करते हैं। ऐसे ही बिरले सहृदय साहित्य संरक्षक व्यक्ति मुझे मिले, जो हैं करौला जिला टीकमगढ़ निवासी पंडित रामसेवक मिश्रा। श्री मिश्रा ने चर्चा में एक दिन बताया कि हमारे गांव में एक बहुत अच्छे कवि हुआ करते थे जिनकी रची फागें, कातिक तथा लावनियाँ हमारे आसपास के गाँवों की महिलाएँ पुरुष आज भी प्रेम से गाते हैं नाम बताया गंभीर सिंह। उनसे रचनाओं की जानकारी लेने पर कहा कि उनकी कुछ किताबें छपीं थी। उन्हें मैं ढूँढूंगा। उन्होंने अपने वचन को निभाते हुए फोटोकापी की एक ऐसी जीर्ण-शीर्ण प्रति दी जिसे चूहों ने या अन्य किसी कीट ने कई स्थानों से कुतर दिया था किन्तु उसमें कई छंद पढ़े जाने योग्य थे। इसे पाकर, पढ़कर मेरी जिज्ञासा बढ़ी। कवि कुँवर गंभीर सिंह जू देव का सम्बंध करौला के जिस परिवार से है, संयोगवश उस परिवार से मेरी नातेदारी है। मैं वहाँ गया, उनके परिजनों से संपर्क किया। उनके पास तत्काल तो कुछ न मिला उन्होंने मुझे रचनाएँ आलमपुरा के लाला वंशीधर के वंशध रों से उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया। कुछ दिनों बाद कुँ. जितेन्द्र सिंह (मुन्ना) 'श्री रामयश मोदक' की कवर विहीन एक प्रति लाए जिसकी फोटोकॉपी तत्काल कराकर उन्होंने मुझे दी तथा मूल प्रति अपने चाचा श्री भगवत सिंह को तत्काल लौटा दी। इस कवि की रचनाओं के बारे में मैंने टीकमगढ़ के गहन अध्येता व संकलनकर्ता आदरणीय श्री हरि विष्णु अवस्थी जी से चर्चा की। उन्होंने भी इस कवि के बारे में जानकारी न होना बताया। इन तमाम उपर्युक्त बातों का जिक्र मैं आपके सामने इसलिए कर रहा हूँ कि हमारे समाज का दृष्टिकोण कवियों के प्रति क्या है? जिस कवि की पुस्तकें १६२६-३० में छपी हों और ७०-७५ के बाद भी वह प्राप्त न हो सकें? हमारा नजरिया कैसा हो गया है? हमें अपने इतिहास व संस्कृति को संजोने हेतु समाज को जागरूक बनाने की आवश्यकता है।

करौला में जन्मे, रहे-बसे विस्मृत कवि कुँ. गंभीर सिंह जू देव की टुकड़ों-टुकड़ों में प्राप्त रचनाओं को पढ़कर यह लगा कि यह कवि महत्वपूर्ण है। जिन्होंने 'श्रीराम यश मोदक' तीन भागों में लिखी। प्रथम भाग- प्रभाती विलास, द्वितीय भाग - राग रागनी तथा तृतीय भाग कवित्त प्रकाश है। इसके अतिरिक्त श्री दानलीला प्रकाशित है। ये पुस्तकें १६२६ व १६३० में प्रकाशित हैं। जो श्रीराम प्रेस पो. स्यावरी जिला झाँसी से छपीं है। इनके प्रकाशक श्री लाला बंशीधर साहब ग्राम आलमपुर रियासत टीकमगढ़ है। कवि गंभीर सिंह स्वयं 'श्रीराम यश मोदक' में इसके पूर्ण होने पर उसकी तिथि का जिक्र करते हुए अपना व अपने प्रकाशक का परिचय कुछ इस तरह देते हैं -

राग रागनी रामयश समझो सुख को मूल।
सुजन सुमति सुधारियो जो जहं समझो भूल।।
सम्बत् उनैसो अठत्तर जेठ पीछलो पाख।
नौवी तिथि राधा रमण पूरी मन अभिलाष।।
बुन्देलखण्ड जाहिर जगत महेन्द्र ओरछा धीश।
प्रताप सिंह जू नीति निधि प्रजापाल महीश।।
ताहि नृपत के राज में परगना पलेरा जान।
गांव करौला जानिये सुजन सु मोर मकान।।
टीकमगढ़ से जानिये उत्तर दिशि की ओर।
योजन चार प्रमान पै गाँव करौला मोर।।
बुन्देला और धंधेरे तीजो कहौ पुमार।
तिनमें को मैं पुमार हों बरमा बरन हमार।।
बंशीधर शुभ गुण सदन कायथ हरि को दास।
ता सम्मति सत्संग से हरि यश को मैं भास।।
आलमपुर में बसत हैं बंशीधर बुधवान।
बिप्र संत सेवें सदा राधा पति को ध्यान।।

'श्री राम यश मोदक' के प्रथम अंग 'प्रभाती विलास' में कविवर गंभीर सिंह ने प्रारंभ में विघ्नहरण गणेश की वंदना करते हुए कहा कि इस प्रभाती खण्ड को पढ़ने-सुनने से लोगों में सुमति आएगी तथा ईश्वर कृपा से पापों का नाश होगा। प्रथम प्रभाती में गणपति जी की तथा फिर महादेव शिव चार प्रभातियाँ लिखीं हैं। तत्पश्चात् सोलह प्रभातियाँ अयोध्या पति राम से सम्बंधित है। इनको पढ़ने से ज्ञात होता है कि कवि का अध्ययन क्षेत्र गहन था। इन्होंने भारतीय वाड.मय को गहरे से आत्मसात किया था। प्रत्येक

छन्द में उनका ज्ञान, उनका अनुभव तथा उनके काव्य कौशल के दर्शन होते हैं। प्रभाती लोक जागरण का छन्द है। सोते हुए को जगाने वाला छन्द ही प्रभाती है इसलिए लगभग प्रत्येक छन्द में सोते हुए लोगों को जागने का आव्हान कवि करता है। आलस को तज जागकर ईश्वर नाम को लेने की बात कहते हुए मोह से मुक्त होने की अपेक्षा करते हुए कवि गंभीर सिंह लिखते हैं -

भोर भयो कहो राम सोवत कस जागौ।
आलस है बैरी तोर, समझो कही मान मोर,
ताकों मन छोर-छोर हरि पद अनुरागौ।। भोर भयो...
सुस्तौ हुए सोय रहो, वक्त बृथा खोय रहो,
ईश्वर को भूल रहो माया में पागौ।। भोर भयो...
टोर-टोर मोह फंद, भजले दशरथ के नन्द,
दया सिंधु दीन बंधु हरि के मन लागौ।। भोर भयो...
ज्ञान भान उर प्रकाश, मोह तिमिर होत नाश,
गम्भीर सिंह राम कहो ममता मद त्यागौ।। भोर भयो...

बुन्देलखण्ड का लोकमन बहुदेववादी है। वह प्रत्येक अवतार व देवता के साथ अपना संबंध जोड़ता है। इसी परिपाटी में कवि गंभीर सिंह ने कृष्ण के रूपों का यशगान करते हुए प्रभातियाँ लिखीं। इसके बाद लक्ष्मण, राम के विभिन्न अवतारों पर कलम चलाई है। वे नारायण नाम की महिमा का बखान करते हैं। विष्णु स्वरूप के साथ मत्स्य व, कच्छप, कूर्म व नरसिंह अवतारों की प्रशस्ति भी करते हैं। तीर्थों में प्रयागराज, काशी, गंगा, अवधपुरी तथा चित्रकूट के महत्व पर प्रभाती रची है। माँ दुर्गा की यश गाथा भी इन्होंने प्रभाती खंड में गायी है।

'श्री रामयश मोदक' का द्वितीय भाग राग-रागनी शीर्षक से छपा है। इसमें गणपति, शारदा व गुरु वन्दना करते हुए श्रीराम का यश विभिन्न राग-रागनियों में गया है। कजली पावस बहार में आषाढ़ की काली-काली घटाओं के बीच श्रीकृष्ण के ब्रजराज स्वरूप का मनोहारी चित्रण कवि ने किया है। सावन की बरसात हो या भादों की घनघोर काली घटाओं का बरसना, इनमें उन्हें कृष्ण-राधा का संयोग दिखाई देता है। सावन श्रीकृष्ण के साथ झूलने लगता है। कवि गंभीर सिंह इसका वर्णन कुछ इस तरह करते हैं -

सावन लगो चलो अब झूलन सजनी श्यामलिया के साथ।
हरी हरी भूमि लगत अति प्यारी,
हरी हरी ओढ़ लीजिये सारी, हरे द्रुमन के पात।
सावन लगो...
हरे हरे यमुना कूल सुहाये, हरे हरे कदम लता झुक आये।
हरो हरो दरसात।।
सावन लगो...
उमड़ घुमड़ घन चहूँ दिश गरजत,
बीच-बीच में चपला चमकत, देखत मन हरसात।।
सावन लगो...
रिमझिम रिमझिम मेहा बरसत,
मोरा नाच नाच कर कूकत, कारी घटा दिखात।।
सावल लगो...
इतै बिचार करत सब बाला,
पहुँची जहाँ तहाँ नंदलाला, मिले कृष्ण मुस्कयात।।
सावन लगो...
जन गम्भीर सिंह सिर नाई,
राख लीजिए कुँवर कन्हाई, यह याचत दिन रात।
सावन लगो चलो अब झूलन, सजनी श्यामलिया के साथ।

लोक मानस में प्रिय 'कब्वाली' छन्द में भी इन्होंने गणेश, शिव, कृष्ण तथा राम के महात्म्य को अपने अनोखे अन्दाज में व्यक्त किया है। रामभक्त वीर हनुमान की शक्ति का निरूपण भी इसी खण्ड में किया गया है। राधा-कृष्ण की नटखट तथा छेड़छाड़ से युक्त मनमोहक बिम्बों को कवि गंभीर सिंह ने इसी खण्ड में रचा है। राधा कृष्ण के प्रति अनुरक्त है। इसी अनुराग को कब्वाली में प्रस्तुत करते हुए गंभीर सिंह लिखते हैं -

प्यारे तुम सम प्रिय न कोई तुम्हरे दर्शन से सुख पाऊँ।
सुनिये श्याम सनेही सैय्यां, तुम्हरी सूरत बिसरत नैय्याँ,
तुम्हरे ध्यान सदा उर मैय्याँ, तुमको तन मन से मैं चाऊँ।।
प्यारे...
तुम्हरे चन्द्रवदन पै मोरी, प्यारे अँखियाँ भईं चकोरी
टिक्का बांदे बरजोरी, इनको छबि रस अमी पियाऊँ।।
प्यारे...
सुनिये ब्रजनायक गिरिधारी, तुम तज रह न सकत छिन न्यारी,
फिर फिर कहत राधिका प्यारी, निश दिन तुम्हरो ही गुण गाऊँ।।
प्यारे...
कह गम्भीर सिंह कर जोरी, बिनती कृष्ण कृपानिधि मोरी,
मैं तो शरणागत हों तेरी, निशदिन हरिजन को संग पाऊँ।
प्यारे तुम सम प्रिय न कोई तुम्हरे दर्शन से सुख पाऊँ।।

इस भाग में कब्वालियों के उपरान्त ठुमरी राग में रचनाओं का संकलन किया गया है। भाव की दृष्टि से काफी पुनरावृत्ति देखने को मिलती है। वहीं गणेश वंदना से लेकर कृष्ण-राधा व शिव रूपों का वर्णन है। होली का वर्णन करते हुए राग ठुमरी में कवि लिखता है -

होरी तो आज श्याम मो संग में मचाई री।
कर बरजोरी मोरी चुनरी को ताने,
श्याम रंग केसर ले आन भिजाई री।
तक पिचकारी मारी मेरे री यौवन पै,
गाल गुपाल गुलाल लगाई री।
जन गंभीर सिंह हंस हंस के,
मुख चुमन कर लाज तो छुड़ाई री।
होरी तो आज श्याम मो संग में मचाई री।

गजल में भी कवि गंभीर सिंह नें हाथ आजमाये हैं। उन्हें भक्ति, नीति के साथ आम आदमी को जोड़ने का काम किया है। वे अपने मन से चंचलता को त्याग राम भक्ति में लीन होने का अनुरोध गजलों में करते हैं। उन्होंने होरी, रसिया, रेख्ता, दादरा,

सैरों, लेद तथा जंगला रागों में रचनाएँ लिखी हैं। होरी का उदाहरण देखिए -

टेक - आज ब्रज छाय रही धुन होरी
होरी होरी कहत श्यामरो बरसाने की खोरी
उत होरी कह सखी साथ ले राधे जू उठ दौरी
भरै अबीरन झोरी।। आज ब्रज...
भूषण वसन सजे अंग अंग में, नख से सिख लौं गोरी
चन्द्रमुखी छवि खान सुन्दरी, सिमिट भई इकठौरी
कहै सब होरी-होरी।। आज ब्रज...
ये कह कर गोप गोपन को हंसत मलत मुख रोरी
इक भागै इक पकरन दौरे एक करे झकझोरी
लाज उनने सब बोरी।। आज ब्रज...
जन गंभीर सिंह कह कुमकुम घलन लगी चहुँओरी
छज्जन से छूटे पिचकारी, रंग में करी सरबोरी।
बीघन कीच मचोरी। आज ब्रज छय रही धुनहोरी।

कवि गंभीर सिंह द्वारा रचित रसिया का एक उदाहरण देखिए -

हटो छोड़ो डगर घर जाओ प्यारे रसिया।
नाहक रार बड़ाओ प्यारे रसिया।
जौन बात तुम चाहत रसिया,
तौन बात नहीं पाओ प्यारे रसिया।
और गुजरिया जानो ना रसिया,
खांड़ के धोके खरी खाव प्यारे रसिया।।
नन्दलाल तुम नये भये रसिया,
नई-नई बात चलाओ प्यारे रसिया।
जन गम्भीर सिंह मन बसिया,
कृष्ण चन्द्रगुण गाओ प्यारे रसिया।
हटो छोड़ो डगर घर जाओ प्यारे रसिया।

इस तरह 'श्रीराम यश मोदक' के द्वितीय भाग में विभिन्न राग-रागनियों में भावों को पिरोया गया है। 'श्रीराम यश मोदक' का तृतीय भाग 'कवित्त प्रकाश' का है। जो १६३० में प्रकाशित है। जिसमें ५१ कवित्त, ४६, सवैया तथा ३२ कुण्डरिया छन्द हैं। इसमें भी परम्परानुसार दोहा में गणेश वन्दना के बाद कवित्त दिए गए हैं। कवित्तों में अपने आराध्य राम की विरुदावली गायी गई है। कवि को उन्हीं का बल है और उन्हीं का भरोसा है। वे अनेक उद्धरण देकर कहते हैं कि इनके भरोसे से ही संतन के वचन खाली नहीं जाते हैं -

राम के भरोसे ही पर्वत पै वृक्ष खड़े,
निशदिन रहें हरे-हरे कौन तहाँ माली हैं।
राम के भरोसे से कुसेरे बिच चिड़िया रह,
ताही आनंद करत राम ही प्रतिपाली हैं।।
राम के भरोसे से शत योजन सिंधु पार हनुमत गए
कूंद मानों जैसे लघु नाली है।
भाषत गम्भीर सिंह राम ही भरोसे से,
सन्तन के वाक्य कभी परत नहीं खाली हैं।

कवि ने नीति परक कवित्त भी रचे हैं। वे कर्म को जीवन का प्रमुख आधार मानते हैं। मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु आलस है। आलस्य से सभी बने बनाये कार्य असफल हो जाते हैं। इसलिए वे जनसामान्य से आलस्य त्यागने की बात कहते हैं -

आलस के करे से विनाश होत विद्या को,
आलस के करे संग संगी तज जात है।
आलस के करे से न भजन होय राम को,
आलस के करे से पीछू पछतात है।।
आलस के करे से ना नफा होत रुजक माहिं,
आलस के करे काम सर्वहूं नसात है।
भाषत गम्भीर सिंह त्यागो मन आलस को,
आलस से बुरो कुछ और न दिखात है।।

कवि गम्भीर सिंह ने कवित्तों में पावस के सभी महीनों के ऋतुओं का चित्रण किया है। उन्होंने ऋतुराज बसन्त पर भी कलम चलाई है। बसन्त के आने पर चहुँ ओर प्रसन्नता छा जाती है, देखिए -

बसन्त की अवाई अब बागन विच छाई उर
फूली फुलवाई चहुं ओर से सुहाई है।
आंमन नवीन झौर झौरन में भयो मौर,
मौरन पै भौर आय गूंजत सुखदाई है।
भाषत गम्भीर सिंह बोलत है मधुर कीर
पंछिन की जुरी भीर भारी अधिकाई है।
फूलन के आभूषण अंग पहरें बहुरंग,
रंग बागन में बिचरत श्री राधिका कन्हाई है।।

नायक-नायिका के संयोग व वियोग दोनों रूपों का वर्णन कवित्तों में हुआ है। नायिका के सौन्दर्य पर भी इन्होंने लिखा है। वे लिखते हैं -

चंचल मृग नैनी हेरत से अतैनी उर,
गज कैसी गैनी जा धरत कदम झेला को।
कटि की है झीनी नवीनी है जोबन की,
षोडस सिंगार किये धरे गागर घेला को,
चंपक के बरनी हैं सुन्दर सुठि तरुनी,
हेरन मन हरनी समारत सिर सेला को।
भाषत गम्भीर सिंह शोभा की समूह नारि,
चौगिर्द प्रकासे मुख चंद्र अलबेला को।।

सवैया छन्दों के माध्यम से कृष्ण राधिका के प्रसंग के अतिरिक्त फूलवाटिका में धनुष भंग के पहले राम सीता के प्रथम दर्शन का चित्रण आपने किया है। सुवासित पुष्पों से युक्त वाटिका में जानकी गौरी पूजन को जाती है, वहाँ राम-लक्ष्मण भ्रमण को आए हैं। राम के सौन्दर्य को निहारकर सीता व उनकी सखियाँ निढाल हो जाती हैं और राम की सीता के सौंदर्य को अपलक निहारते हैं। इसका वर्णन गंभीर सिंह ने कुछ इस तरह किया है-

घूंघर नूपुर शब्द सुने रघुनाथ चिते तबही तिहि ओरा।
सिय मुख चन्द्र समान लखे श्रीराम के नेत्र जे होंय चकोरा।।

गंभीर हिरदे में सराह महा छबि वाले बैन अभी रसबोरा।
तात यही है विदेह सुता जिमि देख के क्षोभ गयो मन मोरा।।

'मान पच्चीसी' शीर्षक से कुण्डरिया छन्दों में इन्होंने गोपिकाओं द्वारा राधा को कृष्ण की हरकतों के बारे में बताया जाना, राधा का रूठना तथा कृष्ण द्वारा राधा को मनाये जाने का अद्भुत मनोवैज्ञानिक चित्रण कवि ने किया है। कृष्ण जब राधा को मनाते हैं। उसकी एक कुण्डरिया देखिए -

प्यारी प्राण अधार मम तज दीजै अब मान।
मान मान की मान तू कीरत कुंवर सुजान।।
कीरत कुंवर सुजान मान तू करत बिथारी।
कौन चूक मोह परी आज सो बेग बतारी।
भनत कुंवर गम्भीर पकर कर कहत बिहारी।
उठो प्रिया तज मान मान तू मान प्यारी।।

'दानलीला' में गंभीर सिंह ने वृन्दावन में कृष्ण-राधा, गोपियों तथा ग्वालों के मध्य होने वाले वाक्-युद्ध तथा माखन लीला, गोपियों को छेड़ना, गोपियों से शास्त्रार्थ होना चित्रित किया गया है। इसमें विविध छन्द आए हैं। कार्तिक गीतों के साथ दोहा, ललित, सवैया तथा सोरठा छन्द का प्रयोग किया गया है। दान लीला में वाक्चार्तुय के दर्शन होते हैं। कृष्ण गोपियों से दान कुछ इस तरह माँगते हैं -

बोले फिर विहस नंद नंदन सुनौ ब्रज नारी।
रस में दान देओ तुम हमरो मानो कही हमारी।।
योवन रूप रत्न अनमोलो है तुमरे ढिग सोई।
ताकौ दान हमें थोरौ सो दिये जाओ सब कोई।।
जो तुम कहो मात यसुदा से झूठी बे सब मानें।
आओगी पछताय यहां से फिर किम कड़ो बिहानें।।

इस पर गोपियों के जवाब सुनिये -

नैन तरेर कहें सब गोपी भये अनोखे दानी।
चोली फार हार टोरे हैं चूनर हमरी तानी।
लाखन गउयें लगें नंद के कहँ सभी ब्रजबाला।
दही दूध की भूख तुम्हरे परी कहा नन्द लाला।
जान लई हम तुम्हरे मन की प्रगट भई तरुणाई।
योवन रूप देखकर हमरो रहे लाल ललचाई।
छेड़ी नार पराई बन में करी बहुत बरजोरी।
पर है जान लाल अब तुम को कहें सभी ब्रज गोरी।।

तत्पश्चात् सभी गोपिकाएं माता यशोदा से कृष्ण की शिकायत करती है, यशोदा इस पर गोपियों को ही डाँटती है, कृष्ण को निर्दोष मानती हैं। फिर यशोदा व गोपियों के मध्य लम्बा संवाद कवि ने चित्रित किया है। कृष्ण को डाँट पड़ती है, लेकिन कृष्ण फिर भी छेड़छाड़ से बाज नहीं आते। यह दानलीला कार्तिक माह में स्थानीय कतकारियों में बहुत लोकप्रिय है।

इस तरह कुंवर गंभीर सिंह की प्राप्त रचनाओं का संक्षिप्त परिचय आपके सामने है। यदि इनकी पूरी रचनाएं किसी के पास हों तो इनका गहन अध्ययन किया जा सकता है। वैसे प्राप्त रचनाओं से यह सिद्ध होता है कि गंभीर सिंह लोक के महत्वपूर्ण कवि रहे हैं।

- महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर

बुन्देली के समोच्चारित भिन्नार्थी कुछ शब्द

- सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

- अपुनों = हमारा, मेरा
  अपनों = आपका
- अनाँर = ऊधम
  अनार = फल का नाम
- अबके = इस समय के
  अबकें = इस बार
- आँगूँ किनकों = पूर्वजों को
  आँगें किनकों = बाल बच्चों को
- आरौ = दीवाल में सामान रखने का
  आरो = चीरने का औजार
- इस्त्री = कपड़ों पर प्रैस करने का
  स्त्री = महिला, पत्नी
- उक्ति = कथन
  युक्ति = उपाय
- ऐबात = सुहाग
  ये बात = यह बात
- ओरी = माँ, बऊ
  औरी = सूझना
- कौर = ग्रास
  कोर = कोना, छोर
- कोरौ = बिना लिखा, बिना कुछ खाए
  कोरो = बिना धुला
- कौल = शपथ, कसम
  कोल = आदिवासी जाति
- कँदइया = कन्हैया, कृष्ण
  कँदइयाँ = कंधे या कूल्हे पर बच्चे को बिठाना
- कोंन = कोना, छोर
  कौंन = कौन
- काके = किसके
  काकै = क्या कहा
- कोद = ओर
  कौद = चर्म रोग
- केदार = नाम
  कै दार = कितने बार
- कैलो = कह लो
  कैलौ = मिट्टी का तवा
- कइ = काई
  कई = कही, अनेक
- करो = किया
  करौ = कीजिए
- कुदइ = अन्न का एक प्रकार
  कुदइँ = ओर, पक्ष में
- काँख = बगल
  कूँख = गर्भाशय
- खालो = खा लीजिए
  खालौ = निचाई, नीचा स्थान
- खुँदबौ = पैर के नीचे दब जाना
  खूँदबौ = पैरों से कुचलना
- खाती = खाता
  खातै = खातों में दर्ज करना
- खातर = के लिए
  खातिर = आवभगत
- खिजबौ = घिसना, क्षरण होना
  खीजबौ = गुस्सा करना
- खूँत = लकड़ी की नोंक
  खूँतबौ = जली लकड़ी से कोयला अलग करना
- गटकबौ = गले के नीचे करना
  गुट्कबौ = पानी की मदद से गले मे उतारना
- गइ = खपरों की पंक्ति छप्पर में
  गई = जा चुकी
- गाने = गीत
  गाँने = आभूषण
- गट्टक = लिपटे डोरे की पिंडी कागज या गाठ पर
  गिट्टक = लकड़ी का चौकोर टुकड़ा
- गड़ो = गड़ा हुआ
  गड़ौ = गढ़ढा
- गेर = घेरा, गोलाई
  गैर = पराया
- गिलाव = कीचड़, मिट्टी-पानी का मिश्रण
  गलाव = गलाने वाली सर्दी का होना
- गारो = घिस लिया
  गारौ = मिट्टी पानी का मिश्रण, बड़ी बैलगाड़ी, घिसिए
- गुँजी = बर्तन माँजने में प्रयुक्त
  गूँजी = गूँज गई, ठाँस के भरना
- गेरो = चक्कर लगाना
  गैरौ = गहरा
  गेरौ = चक्कर लगाइए
- घेरा = ढोलक का
  घैरा = बनावटी हावभाव का प्रदर्शन
- घौर = केले का फल गुच्छ
  घोर = अत्यंत
- घिसो = घिसा हुआ
  घिसौ = घिसिए
- चाली = शैतान, ऊधमी
  चालू = चालबाज
- चिरो = चिड़िया
  चिरौ = चीरा हुआ
- चखो = स्वाद लिया
  चखौ = चस्का, लत
- चुनू = छोटा
  चुन्नू = ललकार, धूर देना
- चारौ = घास, उपाय
  चारऊ = चारों
- चुटियाँ = बालों की चोटियाँ
  च्योटियाँ = हाथ में नाखूनों से किसी भी त्वचा को जोर से दबाना।
- चींन = पहचानना
  चीन = देश का नाम
- छेंके = खेत की बारी में छोटा छार
  छेंकें = रोके हुए, घेरे हुए
- छालो = छाया कर लो, छप्पर कर लो
  छालौ = फफोला या छाले
- जोरो = एकत्र किया
  जोरौ = अधोवस्त्र नारियों का
- जाय = इसको
  जाँय = जाँव
- जैवौ = जाना
  जेंवौ = भोजन करना
- जगो = जग गया, जागा हुआ
  जगौ = जागिए, जागौ
- जे-जे = ये ये
  जै-जै = जय जय
- जरवा = काँटेदार छोटी डालें/तने
  जरुआ = जलने वाला, ईर्ष्यालू
- जइ = यही
  जईं = जहाँ
- जहां = जहान, संसार
  जहाँ = जिस जगह
- जिये = जीवित रहे
  जियै = जिसको

- झारो = झाडू लगाई, टोटका दूर किया
  झारौ = झाडू लगाओ, कड़ाही के साथ का उपकरण
- झरिया = कड़ाही से तली वस्तु निकालने का
  झरइया = जादू-टोना टोटका को दूर करने वाला
- टहनी = डाल, शाखा
  टिहुनी = हाथ के मध्य का भाग जिससे टेकते हैं।
- टुनइ = पेड़ या शाखा का सबसे ऊँचा भाग
  टुनई = टोना-टोटका करने वाली स्त्री
- टोंका = छेद
  टौका = छोटा कार्य
- टाँगो = लटकाए गये, लटकाया गया
  टाँगौ = लटकाओ (आदेश)
- टेंट = आँख का विकार
  टैंट = तम्बू
- ठसकी = हल्की खाँसी
  ठसकौ = अभिमान
- ठनकबौ = बुराई हो जाना
  ठुनकबौ = ठनगन करना
- ठोलें = पैर के अग्र भाग का प्रहार
  ठौलें = वस्तु की इकाइयाँ
- ठिकाने = पता-ठिकाना
  ठिकानें = ठीक ढंग से, समाप्त करना
- उट = चुभना
  उट्ट = भीड़
- ठूँसा ठाँसी = जोर लगाकर भरना
  ठाँस-ठूँस = डाँटना, डाँटकर समझाना
- ठण्डाई = शीतल पेय
  ठण्डयाई = ठंडी पड़ गयी
- ठप्पो = छापने का ठप्पा
  ठप्पौ = शान शौकत
- डूयोढ़ी = डेढ़ गुनी
  डूयोड़ी = बैठक, बैठने का कक्ष
- डरावन = भयानक
  डराबनें = डलवाना, डरवाना
- ढंड़काबौ = आगे बढ़ाना
  ढुँड़काबौ = लुढ़का देना
- ढको = ढक दो, ठका हुआ
  ढकौ = धक्का, ढक्का
- तानौ = ताना बाना का ताना
  तानों = खींचो, खींचिए
- तारो = उद्धार किया
  तारौ = ताला, उद्धार कीजिये
- तकादौ = कर्ज की वसूली
  तका दो = निगरानी में रखना
- तइ = तह कर दी
  तइँ = तहाँ
- ताड़बौ = देखे रहना
  ताड़ना = कष्ट
- ताड़ = डाँट, देखरेख
  ताड़ = वृक्ष
- ताको = उसका
  ताकौ = देखो, तको
- दिनारू = बड़ी उम्र का
  दिनार = देने वाला
- दानों = दाना
  दानौं = दानव
- देहौ = दोगे
  देहों = दूँगा
- दोर = द्वार
  दौर = दौड़, आवृत्ति, युग
- दोरो = दरवाजा
  दौरौ = दौड़ो, दौड़िए
- धरौ = वजन करना
  धरो = धरा हुआ
- धन्नो = स्त्री, पत्नी
  धन्नों = धरना/आन्दोलन
- ना दैवी = नहीं दूँगा/दूँगी
  नाँ दैवी = कुयें में उतार दूँगा
- नाँको = उछाल मारी
  नाँकौ = अवरोध, नाका
- नाँव धराई = नामकरण संस्कार
  नाँव धरवाई = बदनामी
- नजरवौ = देखना
  निजरवौ = उजाड़ना, फल-फूल टूट जाना
- नन्नें = नन्हे को
  निन्नें = बिना कुछ खाए पिए
- पारो = लिटाया
  पारौ = लिटाओ, पारा धातु, घड़े का ढक्कन
- पसारो = फैलाया
  पसारौ = फैलाव/विस्तार
- परे = लेटे
  परै = कुछ दूर, हटकर
- पुरबौ = भर जाना, बनाया जाना
  पूरवौ = बनाना (चौक), भर देना
- पाँवने = मेहमान
  पाँवनें = प्राप्त करना, लेना
- पातर = पत्तल, पतला
  पातुर = वेश्या, नर्तकी
- पूरो = सम्पूर्ण, भर दिया
  पूरौ = भर दो, पूर्ण
- पेरो = परेशान किया
  पैरौ = पहिनो, तैरो
- पेरवौ = परेशान करना
  पैरवौ = तैरना, पहिनना
- पेरा = पेड़ा (मिष्ठान्न)
  पैरा = पहिरा, लेख का अंश
- फंदा = रस्सी की फाँद/बंधन
  फँदा = गले में फँसना
- फेर = अन्तर
  फैर = गोली दागना
- फेरे = भाँवर
  फेरें = वापिस करें, मातमपुरसी हेतु जाना आना, बदले में
- फेरो = वापिस किया, बदले में
  फेरौ = वापिस करो, किसी के यहाँ मरने पर जाना
- फैलाव = विस्तार
  फैलाओ = फलाया, चलाया
- बेर = बदरी फल
  बैर = दुश्मनी
- बारे = जलाए, स्थान के
  वारे = कम उम्र के
- बारौ = जलाओ, स्थान का, नादान
  वारौ = सुभीता, कम उम्र का, नन्हा
- बाढ़ = पानी की बाढ़, वृद्धि बढ़ाव
  बाड़ = खेत की बारी
- बरौनी = मातेन
  बिरौनी = पलक के बाल
- बिंग = व्यंग्य
  बींग = अभाव, कमी, दोष
- बोरी = चालीस किलो अनाज भरने का बोरा
  बौरी = पागल, गूँगी
- बोरा = एक कुण्टल अनाज भरने का
  बौरा = जो बोल न सके
  बौरू = न बोल सकने वाली स्त्री
- बरेजो = पान की खेती हेतु छायादार खेत
  बरै जौ = गाली, ये जले-मरे
- भगो = भगा हुआ
  भगौ = भागिए, दूर जाओ, दौड़ो

(शेष अगले अंक में)

– आदर्श मार्ग, शुक्लाना, छतरपुर

गागर में सागर का आभास कराती है - 'सृजन विमर्श'

- कुं. शिवभूषण सिंह गौतम

डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया' हिन्दी साहित्य के गंभीर अध्येता, सुधी शोधकर्ता, सजग समीक्षक, एवं पाठानुसंधानिस्तु हैं। विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर उनकी लगभग पच्चीस रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। तीन सौ छत्तीस पृष्ठों में बावन आलेखों को समाहित किये तीन भागों में विभाजित 'सृजन विमर्श' उनकी सद्यः प्रकाशित कृति है।

संग्रह के प्रथम भाग में सर्वाधिक इकतीस आलेख हैं, जो हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालखण्डों के कतिपय ज्ञात, अज्ञात अथवा अल्पज्ञात साहित्यकारों के कृतित्व व्यक्तित्व के साथ ही उनकी सम्पूर्ण रचना प्रक्रिया का भी बोध कराते हैं। जब कि द्वितीय भाग में साहित्य, कला और जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों पर विचारोत्तेजक पन्द्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण आलेखों को संग्रहीत किया गया है। सबसे कम कुल छः व्यंग्य आलेख तृतीय भाग में है। जिनके माध्यम से जीवन और साहित्य के क्षेत्र की अनेकों विसंगतियों को लक्ष्य बनाया गया है।

हिन्दी साहित्य का क्षेत्र इतना विशाल, व्यापक और बहुआयामी है कि उसका सम्पूर्ण रूप से अवगाहन किसी सामान्य पाठक की सामर्थ्य के बाहर की बात है। ऐसे में तमाम जिज्ञासु पाठकों के लिये गागर में सागर भरने के उपक्रम जैसा सफल प्रयास लेखक की यह नवीन कृति 'सृजन-विमर्श' है।

इस एक ही कृति के माध्यम से जहाँ गुरु अफजल साहब, बुन्देलखण्डी कवि ठाकुर, चैनराय, रेवाराम, अमान सिंह गोटिया, दीवान प्रतिपाल सिंह, तथा घनश्याम दास नौगरैया (कक्का जबलपुरी) जैसे अज्ञात साहित्यकारों पर प्रचुर सामग्री है तो वहीं स्वामी प्राणनाथ, भूषण व महाराजा छत्रसाल जैसे साहित्यकारों की सम्पूर्ण रचना प्रक्रिया का गहन परिचय करानें वाले आलेख भी हैं। रहीम तथा ईसुरी की रचनाओं के माध्यम से जहाँ इन कवियों के जीवन के सूत्रों को जोड़ने का प्रयास किया गया है, तो वहीं दीवान प्रतिपाल सिंह द्वारा लिखित बुन्देलखण्ड का इतिहास (बारह भाग) तथा गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर' द्वारा लिखित 'बुन्देल वैभव' (दस भाग) के अधिकांशतः प्रकाशित न हो पानें की जानकारी पढ़कर कृतिकार की चिंता में पाठक को भी सहभागी होने को विवश होना पड़ता है। यथा - असाधारण प्रतिभा के धनी इस लेखक (दीवान प्रतिपाल सिंह) की अप्रकाशित कृतियों का प्रकाशन तथा प्रकाशित एवं अप्राप्त कृतियों का अनुसंधान एवं संकलन अत्यन्त आवश्यक है।" (पृ. १६७) तथा "वर्षों के परिश्रम से द्विवेदी जी ने जो कार्य किया वह किसी एक के बूते की बात नहीं थी। वे वृद्धावस्था तक इस कार्य में लगे रहे। बुन्देलखण्ड के अज्ञात एवं ज्ञात साहित्यिक अध्यायों को संयोजित कर जिस प्रकार उन्होंने प्रस्तुत किया वह किसी की भी आँख खोलने के लिये काफी है। आज उससे अनेक शोधार्थियों का मार्गदर्शन हो रहा है। उन्होंने लगभग १५ पुस्तकें साहित्य संसार को दीं और उनकी सूचनानुसार लगभग ३० पुस्तकें अप्रकाशित स्थिति में पड़ी हुई हैं।" (पृ. १२७)

ऐसी महत्वपूर्ण रचनायें जो बुन्देलखण्ड के इतिहास व साहित्य की दशा व दिशा बदलने में समर्थ हैं के प्रकाशन के अभाव में क्या हम अपनी इस अमूल्य धरोहर से आनें वाली पीढ़ियों को वंचित रखने के पाप से बच पायेंगे" जब कि आज प्रतिदिन ऐसा तमाम साहित्य लिखा जाकर प्रकाशित हो रहा है जिसकी समाज के लिये कोई उपादेयता नहीं है।

भक्त कवियत्री मीराबाई की रचनाओं के माध्यम से बरसैंया जी नें उनके जिस विद्रोही स्वरूप की रूपरेखा प्रस्तुत की है और उसके सूत्र तुलसी, सूर व कुम्भन से जोड़ने का उपक्रम किया है उससे हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल को देखने का एक नया दृष्टिकोण मिलता है। रहीम के संदर्भ में तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि - रहीम के शौर्य, औदार्य, विद्वता, सदाशयता, दानशीलता, बहुज्ञता तथा सृजनशीलता की चर्चा उस समय पूरे देश में थी। वे कलाकारों, साहित्यकारों, कवियों, विद्वानों का बड़ा आदर करने वाले थे। परदुखकातरता उनका विशिष्ट गुण था। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर तत्कालीन कई कवियों ने उनके बारे में तमाम छंदों की रचना की थी।" (पृ. ४२) आलेख में केशवदास, कवि गंग, मंडन कवि, कवि अलाकुली, के कतिपय छंदों के साथ कवि मुकुन्द, तारा, हरिनाथ, संतजाड़ा आदि का भी उल्लेख किया गया है, जिससे लेख की उपादेयता बढ़ गई है। अच्छा होता यदि ऐसे तमाम कवियों की रचनाओं का संकलन कर एक साथ प्रकाशित करने का उपक्रम हो। पृ. ४६, ४७ पर वाल्मीकि रामायण, तथा पृ. ४८, ४६ व ५० पर रामचंद्रिका के रहीम द्वारा कराये गये फारसी अनुदान के हस्तलिखित प्रतियों के पृष्ठों की छाया प्रतियों के प्रकाशन से पुस्तक की उपादेयता निश्चित तौर पर बढ़ गई है। किन्तु इस आलेख में रहीम की संस्कृत रचना "गंगाष्टकम्" का उल्लेख न होना अधूरेपन का अहसास भी कराता है।

कृति की प्रत्येक रचना पर कुछ कहना यद्यपि विस्तार भय के कारण सम्भव नहीं है, फिर भी यह बता देना आवश्यक है कि उक्त प्राचीन रचनाकारों के साथ ही अति आधुनिक साहित्यकारों पर भी उतनी ही गम्भीरता से विचार किया गया है, जिनमें पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, उदयशंकर भट्ट, पं. माखनलाल चतुर्वेदी रामानुज लाल श्रीवास्तव, अम्बिका प्रसाद दिव्य, घासीराम व्यास, बाबू गुलाबराय, केदारनाथ अग्रवाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, डॉ. भगीरथ मिश्र, प्रमोद वर्मा, रामस्वरूप सिन्दूर, तथा स्व. संतोष सिंह बुन्देला जैसे कवि साहित्यकारों पर भी उतनी ही संजीदगी से कलम चलाई गई है, जिसका अहसास बिना पढ़े नहीं

किया जा सकता है।

दूसरे भाग के आलेखों से वर्तमान में साहित्य के क्षेत्र में बढ़ता दुरागृह और प्रदूषण, हिन्दी के प्रति भेदभाव से उत्पन्न स्थितियों और मानसिकता के प्रति लेखक की चिंता और चिंतन का भाव स्पष्ट होता है। मानवाधिकार वादियों का एकांगी दृष्टिकोण, पाठक, पुस्तक और प्रकाशक के बीच असंतुलन की पीड़ा, गीत और नवगीत के बीच के अन्तर्द्वन्द्व की चिंता का चिंतन आलेखों में बड़ी ही सिद्दत के साथ उभरता देखा जा सकता है। बुन्देली की अभिव्यंजना शक्ति पर आधारित आलेख सामान्य से कुछ अधिक लम्बा हो गया है, साथ ही इस लेख में पूर्व के कुछ लेखों के कतिपय अंशों की पुनरावृत्ति भी हुई है।

पुस्तक के तीसरे भाग में ऐसी ही कुछ विसंगतियों को व्यंग के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है जिनमें सर्विस सेंटर, कनवर टाइगो, ऊधौ मन न भये दस बीस, पर उपदेश कुशल बहुतेरे, देख पराई चूपड़ी, तथा कविन के मामले में करै जौन खामी, जैसे व्यंग लेख पढ़ कर पाठक को व्यंग विधा का भी आनंद अनयास मिल जाता है। परिणाम स्वरूप सम्प्रेशणीयता इतनी सहज बन गई है कि पुस्तक अंत तक पाठक को बांधे रखने में सफल रहती है। पृ. २६७ पर लेखक ने पुस्तकों के प्रति पाठकों की उदासीनता का एक कारण स्पष्ट करते हुये लिखा है कि पुस्तकों की कीमत इतनी अधिक है कि लोग चाह कर भी उन्हें खरीद नहीं पाते।'' यह कारण सृजन विमर्श पर भी तरह लागू होता है। मेरा ऐसा मानना है कि अपनी इतनी तमाम खूबियों के बावजूद बरसैंया जी की यह कृति भारी मूल्य के कारण पाठकों के सहज सानिध्य के प्रति आश्वस्त नहीं करती।

पुस्तक :- सृजन-विमर्श
लेखक - डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया'
प्रकाशक - सार्थक प्रकाशन, दिल्ली-४६
पृ. ३३६, मूल्य ५००/- रुपये

- ३३/१६५, अन्तर्वेद, कमला कॉलोनी, छतरपुर

नई-नई पोथीं अपुन के लाने

⊙ **बुन्देलखण्ड की वीरांगनाएँ** - डॉ. रामनारायण शर्मा, प्रका. : संदर्भ प्रकाशन, ११०, अलोपी बाग, इलाहाबाद

⊙ **बुन्देली कथाकार** - डॉ. रामनरायण शर्मा, प्रका. : बुन्देली साहित्य समिति, झांसी

⊙ **क्षिप्रा के तट पर** - श्रवण कुमार त्रिपाठी, ऋतम्बरा, तालबेहट (ललितपुर)

⊙ **काव्य शतक** - डॉ. गौरी शंकर उपाध्याय, प्रका. : सरल साहित्य संगम, झांसी

⊙ **संस्कृति के दूत** - डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही' शिवपुरी, प्रका. : यूनिवर्सल कम्प्यूटर्स, ललिता चौक, रायपुर

⊙ **महानायक (उपन्यास)** - डॉ. परमलाल गुप्त, सतना

⊙ **मामुलिया : बुन्देलखण्ड का लोक रंग** - रोहित विनायक, राजकीय संग्रहालय, झांसी

⊙ **ईसुरी की चौकड़ियाँ** - बाबूलाल पाठक, मेढ़की (झांसी), प्रका. : महेन्द्र पाठक, मेंढ़की (झांसी)

⊙ **छतरपुर त्रिशताब्दी स्मारिका** - सुरेन्द्र शर्मा शिरीष एवं सहयोगी, प्रका. : छतरपुर त्रिशताब्दी स्मारिका समिति, छतरपुर

⊙ **सर्जना के स्वर** - सुरेन्द्र शर्मा शिरीष, श्रीप्रकाश पटैरिया, प्रका. : सरस्वती सदन पुस्तकालय, छतरपुर

⊙ **धरती के लाल : पं. लालाराम बाजपेयी (अभिनंदन ग्रंथ)** - दशरथ जैन, सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष',

⊙ **पं. भैयालाल व्यास अभिनन्दन ग्रंथ** - सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष', श्रीप्रकाश पटैरिया आदि, प्रका. : सरस्वती सदन पुस्तकालय, छतरपुर

⊙ **प्रेरणापुंज : श्री राजाराम जुआरिया (अभिनन्दन ग्रंथ)** - सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष', डॉ. के.एल. पटेल

⊙ **तपस्विनी (खण्डकाव्य)** - श्रीप्रकाश पटैरिया 'हृदयेश', प्रका. : सरस्वती सदन प्रकाशन, छतरपुर

⊙ **किनारों के लिए बेचैन** - बृजेन्द्र सिंह चौहान, संपा. : प्रकाश पटैरिया, प्रका. : सरस्वती सदन पुस्तकालय, छतरपुर

⊙ **संगीत-मंजरी** - काशीप्रसाद महतों, गढ़ीमलहरा

⊙ **चौकड़िया सागर** - प्रेमनारायण पाठक 'अरुण', सटई, जिला छतरपुर

⊙ **सृजन-विमर्श** - डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त बरसैंया, प्रका. : सार्थक प्रका. नई दिल्ली

⊙ **साहित्य-अनुशीलन** - डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त बरसैंया, प्रका. : सार्थक प्रका. नई दिल्ली

⊙ **रस-विलास** - संपा. डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त बरसैंया, प्रका. : सार्थक प्रका. नई दिल्ली

⊙ **नदिया तीर कछारे मोरा गाँव रे** - अवध बिहारी रावत, मऊदरबाजा, छतरपुर

⊙ **ओंछें बार ककई से** - डॉ. राज गोस्वामी, प्रका. : म.प्र. लेखक संघ, दतिया

⊙ **घुंघरू बिन ककरन के बोले** - गोविन्द यदुवंशी, प्रका. : अ.भा.बु.साहित्य एवं संस्कृति परिषद, भोपाल

⊙ **मीठे बोल बुन्देली के** - सं. कैलाश मड़वैया, प्रका. : अ.भा.बु.साहित्य एवं संस्कृति परिषद, भोपाल

⊙ **कच्छप (कविता संग्रह)** - श्रीराम अग्रवाल, टीकमगढ़, प्रका. : श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़

⊙ **श्रृंखला (लघु कथाएँ)** - सं. मणि मुकुल, प्रका. : गुँजन कला सदन परिवार, जबलपुर

⊙ **बुन्देली दर्शन** - सं. डॉ. एम.एल. पाण्डेय, हटा प्रका. : नगर पालिका परिषद, हटा

बुन्देली उत्सव 2008 का प्रतिवेदन

- योगेन्द्र प्रताप सिंह बुन्देला 'गुड्डू राजा'

बुन्देली लोक कला और संस्कृति केन्द्रित सात दिवसीय "बुन्देली-उत्सव २००८" का भव्य शुभारंभ बसारी के महाराजा छत्रसाल स्टेडियम में मानव संसाधन विकास राज्यमंत्री मो. अली अहमद फ़ातमी ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता राज्यसभा सांसद व प्रवक्ता अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी सत्यव्रत चतुर्वेदी ने की। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि राज्यमंत्री मो. फ़ातमी जी ने महाराजा छत्रसाल के चित्र पर माल्यार्पण किया तथा दीप प्रज्जवलित किया। संस्थान के संरक्षक मुन्नाराजा ने स्वागत व्यक्तव्य देते हुए मुख्य अतिथि तथा अन्य अतिथियों का बुन्देली उत्सव २००८ में पधारने पर आभार व्यक्त किया तथा बुन्देली उत्सव के बाहवें वर्ष में प्रवेश करने पर क्षेत्रीय जनता और सहयोग प्रदान करने वालों का आभार व्यक्त किया।

मुख्य अतिथि मो. फ़ातमी ने कहा कि मैंने सोचा भी न था कि बसारी गांव में इतना खूबसूरत उत्सव होता है, इस बुन्देली-उत्सव से ग्रामों में छुपी प्रतिभाओं को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का एक नया मंच मिला। बुन्देली उत्सव के माध्यम से बुन्देलखण्ड की कला और संस्कृति की विरासत को सहेजा और संवारा जा रहा है।

उद्घाटन समारोह में डिलाइट इंग्लिस स्कूल के छात्र-छात्राओं ने नृत्य प्रस्तुत कर दर्शकों का मन मोह लिया। सम्मति विद्या मंदिर के बच्चों ने बुन्देली लोकनृत्य प्रस्तुत किया। ग्राम बसारी के सपना रंग मंडल के कलाकारों की रणप्पा नृत्य की प्रस्तुति दर्शकों को तालियां बजाने को मजबूर कर गई। उद्घाटन समारोह के उपरांत दंगल प्रतियोगिता प्रारंभ हुई जिसमें म.प्र., राजस्थान, उ.प्र., बिहार, पंजाब, हरियाणा के प्रसिद्ध पहलवानों नें दाव आजमाये।

बुन्देली उत्सव के दूसरे दिन बसारी स्टेडियम में कबड्डी और बॉलीबॉल मुकाबलों की धूम रही, हजारों खेल प्रेमियों की हर्ष ध्वनियों व तालियों की गड़गड़ाहट के बीच खिलाड़ियों ने भी जबरदस्त प्रदर्शन कर सबके मन जीत लिये। आज के मुकाबले बिजावर विधायक श्री जीतेन्द्र सिंह के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुए। मुख्य अतिथि जीतेन्द्र सिंह ने अपना उद्बोधन भाषण देते हुए कहा कि बुन्देली उत्सव के माध्यम से अंचल की कला और संस्कृति को संवारा जा रहा है इस बुन्देली-उत्सव से ग्रामों में छुपी प्रतिभाओं को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का एक नया मंच मिला है। इसके लिये बुन्देली विकास संस्थान तथा बुन्देली उत्सव आयोजन समिति बधाई के पात्र हैं और सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह मुन्नाराजा एवं आयोजन समिति का ऋणी रहेगा।

उत्सव की दूसरी शाम पर्यटक ग्राम बसारी के कलामंच पर बुन्देलखण्ड लोक कला केन्द्र, पैगम्बरपुर बाँदा उ.प्र. के कलाकारों ने "हरदौल चरित्र" नौटंकी का प्रदर्शन किया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया उपस्थित थे।

कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ शायर सईद बख्श खय्याम ने की। इस अवसर पर संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि डॉ. बरसैया ने कहा कि बुन्देली उत्सव के माध्यम से लोक कलाओं को नया जीवन प्राप्त हुआ है, हम जिन खान-पान को भूल रहे हैं, उन्हें इसके माध्यम से परिचित कराया जा रहा है, भूल रही गायन परम्पराओं, नृत्य कलाओं को नई पीढ़ी जान रही है।

नौटंकी में सबसे पहले पारम्परिक वन्दना कलाकारों ने प्रस्तुत की तत्पश्चात् लोक देवता हरदौल के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने वाली नौटंकी को प्रस्तुत किया गया जिसमें कथा को नये ढंग से प्रस्तुत किया गया। इस नौटंकी में हरदौल का अभिनय संतोष निशाद ने जुझार सिंह का प्रभावी किरदार कल्लू यादव ने निभाया। चम्पा रानी किरण देवी भारती तथा कुंजा बाई पन्ना देवी बनीं जिन्होंने अपनी कला से दर्शकों को तालियां बजाने पर मजबूर कर दिया। पहाड़ सिंह की भूमिका इन्द्रराज खंगार ने रंगा की भूमिका, बाबू निषाद ने तथा वीर सिंह की भूमिका प्रेम श्रीवास ने निभाई।

बुन्देली-उत्सव के तीसरे दिन कबड्डी, बॉलीवाल के मुकाबले बहुत ही रोचक रहे। आज ही बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। आज के कार्यक्रम के मुख्य अतिथि पुलिस अधीक्षक श्री डी. श्रीनिवास राव रहे। मुख्यअतिथि श्री राव ने कबड्डी तथा बॉलीवाल के मुकाबले का खूब लुफ्त उठाया।

बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता में कई प्रतियोगियों ने हिस्सा लिया प्रतियोगिता में सैंकड़ों प्रकार के बुन्देली व्यंजन परोसे गये। इस प्रतियोगिता के निर्णायकों अजयपाल सिंह, श्रीमती गीता शर्मा तथा डॉ. शकुन्तला सिंह प्राचार्य राजनगर, श्रीमती कविता सिंह पन्ना ने विजेता का चयन व्यंजन के स्वाद, सजावट, साफ-सफाई तथा प्रस्तुतीकरण के आधार पर किया। जिसमें सोनिया गुप्ता को प्रथम तथा ज्योति अग्रवाल वर्षा अग्रवाल को द्वितीय तथा उषा अग्रवाल एवं संध्या अग्रवाल को तृतीय स्थान प्राप्त हुआ। अजयपाल सिंह राव साहब ने विजेताओं को पुरस्कृत किया प्रथम स्थान प्राप्त करने वाली सोनिया गुप्ता को ११००/- नकद तथा पुरस्कार द्वितीय तथा तृतीय स्थान प्राप्त करने वाली प्रतियोगियों को ५००/-, ५००/- रुपये नकद व पुरस्कार प्रदान किये गये गीता को सांत्वना पुरस्कार प्रदान किया गया। आधारित मनमोहक प्रस्तुतियों से उपस्थित हजारों दर्शकों का दिल जीत लिया। इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री मोहन प्रकाश उपस्थित थे।

तीसरे दिन के कार्यक्रम के मुख्य अतिथि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रवक्ता मोहन प्रकाश जी ने कार्यक्रम की सराहना करते हुए कहा कि लोक संस्कृतियों में ही भारत की

आत्मा बसती है बुन्देली संस्कृति हिन्दुस्तान की ह्रदय स्थल की विरासत को सहेजे हुए है, यह शौर्य भूमि राजस्थान के बाद राष्ट्रीय बलिदान में किसी अंचल का सर्वाधिक योगदान है तो वह बुन्देलखण्ड की शौर्य भूमि है। उन्होंने आगे कहा कि बुन्देली उत्सव के माध्यम से अंचल की परम्पराओं, लोक कलाओं, खान-पान, तीज त्योहारों को पुर्नजीवित किया जो न केवल प्रशंसनीय है बल्कि अनुकरणीय है। विपरीत परिस्थितियों के बावजूद बुन्देली-उत्सव के बारहवें वर्ष में प्रवेश करने के लिए क्षेत्र की जनता के सहयोग को धन्यवाद देते हुए कहा कि यह बुन्देली संस्कृति की भूमि का सम्मान है, इस क्षेत्र की बुन्देली संस्कृति की रक्षा एवं सवर्धन के क्षेत्र में यहां के सबके प्रिय मुन्नाराजा को श्रेय जाता है।

बुन्देलखण्ड विकास प्राधिकरण के अध्यक्ष सुरेन्द्र प्रताप सिंह बेबी राजा ने अपने उद्बोधन में कहा कि यह उत्सव सभी वर्गों का मिला जुला कार्यक्रम है इसे दलगत राजनीति से ऊपर उठकर देखना चाहिए खुले मन और खुली आँख से देखकर सभी को सहयोग करना चाहिए श्री सिंह ने आगे कहा कि बुन्देलखण्ड राज्य का निर्माण होगा तो इस पुनीत कार्य के लिये शंकर प्रताप सिंह मुन्नाराजा को बुन्देलखण्ड रत्न की उपाधि से सम्मानित किया जायेगा और मैं पहला व्यक्ति रहूँगा जो मुन्नाराजा को सम्मानित करूंगा।

बुन्देलखण्ड के लोक साहित्य व रचनात्मकता के क्षेत्र में कार्य करने पर डॉ. दुर्गेश दीक्षित, कुण्डेश्वर जिला टीकमगढ़ म.प्र. को राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २००८, प्रदत्त किया, जिसमें ग्यारह सौ रुपये की नकद राशि, सम्मान प., शॉल व श्रीफल भेंट किया गया। इस अवसर पर डॉ. दुर्गेश दीक्षित ने बुन्देली उत्सव बुन्देलखण्ड अंचल का सबसे बड़ा आयोजन है जिसके लिये मुन्नाराजा एवं आयोजन समिति बधाई के पात्र हैं और मैं जब तक जिन्दा हूँ इस मंच, बुन्देली विकास संस्थान और बुन्देली उत्सव का सदैव ऋणी रहूंगा।

आज ही बुन्देली उत्सव में पहली बार शाफा बंधन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया उक्त प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये उत्सुकता देखते ही बनती थी साफा बंधन प्रतियोगिता में प्रतियोगियों ने अपने सिर पर साफा बांधा उक्त प्रतियोगिता में प्रथम स्थान श्री विदुर सिंह, छतरपुर को प्राप्त हुआ तथा दूसरे स्थान पर धरमदास सेन रहे तीसरा स्थान नौगांव के बंटी जैन को प्राप्त हुआ।

बुन्देली पर आधारित कार्यक्रम में समूह नृत्य में सपना रंग मण्डल, बसारी ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया तथा अपनी प्रस्तुति के सभी दर्शकों का मन मोह लिया। इसी प्रकार द्वितीय पुरस्कार सेन्ट्रल पब्लिक स्कूल, गंज के कलाकारों ने प्राप्त किया। एकल गायन की प्रस्तुति में ब्रजवासी अनुरागी, छतरपुर ने प्रथम स्थान अर्जित किया तथा रामकुंवर पटेल, गुलैंदयापुरवा ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया समूह गायन में अर्चना यादव व सखियां, बमीठा को प्रथम तथा छत्रसाल बाल संस्कार केन्द्र को द्वितीय पुरस्कार से नवाजा गया, वहीं बुन्देली पोशाक प्रतियोगिता में गौरव राय को प्रथम तथा द्वितीय पुरस्कार बैजनाथ नामदेव को प्रदान किया गया। एकल नृत्य में इन्द्रा चतुर्वेदी ने अपनी प्रस्तुति से दर्शकों का दिल जीत लिया इसके लिये उन्हें प्रथम स्थान प्राप्त हुआ तथा सद्वितीय स्थान राजीव गांधी विद्या मंदिर को प्राप्त हुआ। नाटकों की प्रस्तुति में शा. उच्चरतर माध्यमिक विद्यालय, बसारी को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ तथा शा. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, गंज को द्वितीय पुरस्कार प्रदान किया गया। उक्त बाल कलाकारों की मनमोहक प्रस्तुतियों ने उपस्थित दर्शकों को मंत्र मुग्ध कर दिया। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध वाद्ययंत्र पखावज का वादन भगुवा जिला बांदा उ.प्र. की १० वर्षीय बालिका कुमारी अम्रता सिंह ने विशेष प्रस्तुति देकर उपस्थित दर्शकों का मन मोहा उपस्थित अतिथियों ने उक्त प्रस्तुति पर कुमारी अमृता सिंह का पुरस्कार प्रदान किया। कार्यक्रम के उपरान्त मुख्य अतिथि ने विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए।

बॉलीबॉल का फायनल मैच वर्मा डांग और गोयरा मुरली के बीच हुआ जिसमें संघर्षपूर्ण मुकाबले में गोयरा मुगली की टीम २५-२१ और २५-२२ अंकों से विजयी रही। कबड्डी, बॉलीबॉल, चौपड़, रस्साकसी, गिल्ली डण्डा आदि खेलों का आज हजारों दर्शकों से खचा-खच भरें स्टेडियम में समापन समारोह विधिवत सम्पन्न हुआ।

उत्सव की चौथी शाम को प्रथम प्रस्तुति में बुन्देली नाटक प्रतियोगिताओं का मंचन किया गया जिसमें प्रथम पुरस्कार सपना रंग मण्डल, बसारी को ''इनैं कऊं देखो है'' नाटक के मंचन के लिये दिया गया तथा द्वितीय पुरस्कार प्रहलाद सिंह एवं साथी सागर म.प्र. को ''साफ रैहो तौ निरोगी रैहो'' नाटक के मंचन के लिये दिया गया जिसका दर्शकों तथा अतिथियों ने खूब आनंद उठाया। इसी तरह कछयाई गायन में महोबा के राजारंक कुशवाहा एवं साथियों को प्रथम तथा जय माँ दुर्गा रंग मण्डल, भवानीपुर के कलाकारों को द्वितीय पुरस्कार दिया गया। चमरयाई बैठक में लक्ष्मन अहिरवार एवं साथी श्यामरीपुरवा को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ तथा गनपत अहिरवार व साथी, गुंदारा को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। विजेताओं को अतिथियों तथा आयोजन समिति द्वारा पुरस्कार वितरित किये गये।

इस प्रतियोगिता में कुल ६ चक्र हुए जिसमें २८ प्रतियोगियों ने भाग लिया। इसके बाद सेमीफायनल की दौड़ सम्पन्न हुई सेमीफायनल में केवलदीन डबरी, राम सिंह लुगासी, रमेश यादव बंधियन, छविलाल कुशवाहा, बद्री यादव लुगासी, राजा नरवरिया लुगासी, छंगा पटेल विक्रमपुर, राजाराम यादव खुड़न तथा घनश्याम पटेल लुगासी ने लगह बनाई। तत्पश्चात् फायनल दौड़ सम्पन्न हुई। बारहवें बुन्देली उत्सव का मुख्य आकर्षण बैलगाड़ी दौड़ के बेहद रोमांचक मुकाबले में लुगासी के राजा नरवरिया ने प्रथम स्थान प्राप्त किया जबकि दूसरे स्थान पर बंधियन के रमेश यादव रहे तीसरा स्थान राजा राम यादव खुड़न ने पाया।

बुन्देली-उत्सव की पांचवी संध्या पर बुन्देलखण्ड की

विभिन्न लोक परम्पराओं एवं लोक संस्कृति पर आधारित गायन एवं नृत्य आदि की प्रतियोगिताएं हुई। कार्यक्रम का शुभारम्भ मुख्य अतिथि पूर्वमंत्री कुं. अजय सिंह 'राहुल भैया' ने किया। मुख्य अतिथि ने आरंभ में महाराजा छत्रसाल के चित्र पर माल्यार्पण किया तथा दीप प्रज्जवलित किया। मुख्य अतिथि कु. अजय सिंह 'राहुल भैया' ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि मैं इस उत्सव से निरंतर जुड़ा हुआ हूँ मैंने लगभग हर वर्ष इस उत्सव में अपनी किसी न किसी दिन उपस्थिति दी है, यह आयोजन भारतीय संस्कृति को प्रदर्शित करते हैं हमारी भारतीय संस्कृति समृद्ध है यह कहा जाये तो भारतीय संस्कृति हमारे समाज के मध्यम और निम्न वर्ग के माध्यम से जीवित है।

शाम के कार्यक्रम की शुरुआत बुन्देलखण्ड की भूली बिसरी गायन एवं नृत्य की उन्नीस लोक-कलाओं ने 'बुन्देली-उत्सव' के मंच पर पूरी रात अपना जलवा दिखाया। गांव-देहात के तमाम कलाकारों ने अपनी प्रतिभा के बलबूते दिवारी, रावला, दलदल घोड़ी, फागें, ख्याल, कहरवा, लमटेरा, गारी, बनरे, सैर आदि को पुनर्जीवित किया। छतरपुर के भगवान दास कुशवाहा की बुन्देलखण्ड की पारम्परिक एवं विलुप्त हो रही सैर की प्रस्तुति से उपस्थित जनसमुदाय हृदय से भाव विभोर हुआ, ख्याल की प्रस्तुति तो इतनी मनमोहक रही कि निर्णायक भी समय का ख्याल नहीं रख पाये ग्वालियर के दिनेष सोनी व साथियों ने देर रात तक समां बांधने का सफल प्रयास किया जिसके लिये उसे प्रथम स्थान प्राप्त हुआ तथा ग्राम पचपहरा की लल्लन भास्कर ख्याल पार्टी को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। बुन्देलखण्ड अंचल के गांव-गांव में घर-घर में शादी विवाह के मौके पर गायी जाने वाली गारी को सुनकर दर्शक भी मंच के नीचे थिरक उठे, ऐसे लगा मानो कोई विवाह का मंडप हो गारी गायन में बजरंग मण्डल, बसारी को प्रथम तथा राधे मण्डल बरखेरा, दमोह को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। वन्दना लोक कला मण्डल, कनैरादेव सागर को बानरा गायन में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। लमटेरा में जय दुर्गा मण्डल, भवानीपुरा ने प्रथम स्थान प्राप्त कर ऐसा भावपूर्ण माहौल बनाया कि उपस्थित जनसमुदाय भी मानो बाबा के दरबार की ओर प्रस्थान कर रहा हो तथा दूसरे स्थान पर राधे मण्उल बरखेरा, दमोह रहा। दलदल घोड़ी नृत्य ने बुन्देली के साथ भारतीय संस्कृति के पुराने सार्थक तथ्यों की प्रस्तुति के साथ मनोरंजन भी है। दलदल घोड़ी नृत्य में बजरंग मण्डल, बसारी ने प्रथम स्थान तथा गाम कर्री के गढू अहिरवार एवं साथियों को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। कहरवा गायन में संध्या सरगम उरई जिला जालौन उ.प्र. को प्रथम तथा घनश्याम दास व साथियों को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। इसी तरह दिवारी नृत्य में श्री मतंगेश्वर लोक कला मण्डल, खजुराहो को प्रथम तथा श्री जुगल किशोर लोक कला मण्डल, पन्ना म.प्र. द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। तथा विलुप्त होती कला सैरों की प्रस्तुति सुनहरा सैरो पार्टी, सुनहरा पन्ना म.प्र. ने देकर दर्शकों में अपनी कला का लोहा मनवाया।

छठे दिन अश्वनृत्य प्रतियोगिता में प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले अर्जुन पाल, द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले, धूप सिंह सुरा, तथा तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले बिहारी लाल पाल, गंज को सम्मानित किया गया। उत्सव की छठी शाम को ढिमरयाई कातिक गीत, बहुरूपिया, गोटें, दादरे, बिलवारी, तथा आल्हा गायन की प्रस्तुतियां हुयीं। इन प्रतियोगिताओं में कपूरचन्द्र घुवारा अध्यक्ष, म.प्र. राज्य हस्त शिल्प निगम तथा निवाड़ी क्षेत्र के विधायक बृजेन्द्र सिंह राठौर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे।

बुन्देली उत्सव का समापन पूर्व मंत्री एवं विधायक डॉ. गोविन्द सिंह, पूर्व विधायक अशोक वीर विक्रम सिंह तथा पुष्पेन्द्र हजारी के मुख्य आतिथ्य में हुआ। इस दिन राई और बध ाई नृत्य की प्रतियोगिताएं प्रारंभ हुयीं। जिसमें राई में प्रथम स्थान चित्रकोटि यादव को तथा द्वितीय स्थान हरिचरण अहिरवार पन्ना को प्राप्त हुआ। फाग गायन में पन्ना की लोककवि धीरवीर मोती कलामंडल प्रथम, तथा श्रीकृष्ण मण्डल घूरा दूसरे स्थान पर रहा। सोहरे गायन में बजरंग मण्डल बसारी प्रथम तथा भक्ति शक्ति महिला मण्डल दूसरे स्थान पर रहें। काड़रा में रामकिशन रजक, सागर पहले स्थान पर रहे। आसमान में रंग-बिरंगी आतिशबाजी के साथ बारहवें बुन्देली उत्सव का भव्य समापन समारोह सम्पन्न हुआ।

– महलों के पीछे, छतरपुर (म.प्र.)

गीत

– डॉ. हरिसिंह घोष

कौरे सें लग बिटिया सुन रई, दद्दा बाई बता रये ।
सोरईं में लग जाने मौड़ी, लड़का ढूड़ न पा रये ।।
जमींदार कौ लरका ऊसें करत-धरत कछु नइयाँ ।
पढ़वे-लिखवे की कैलो पै ओइ ठिकानों नइयाँ ।।
देखे-सुनवे में मौड़ी सें आठाना भर नइयाँ,
घर-द्वारौ कछु ठीक हतो पै बेई उभाँड़ौ गा रये ।।
कौरे सें लग बिटिया....।।

ऐसी नोनी मौड़ी अपनी ऐंसइ काँ दइये ।
घर में भलैं कछू न होवै, लरका नौनो चइये ।।
लरका वाले आज-काल के सूधें बात न बोलें,
रैबे चाय टपरिया नइयाँ सुरसा सौ मों बा रये ।।
कौरे सें लग बिटिया....।।

बिटिया के अनुरूप सुभग वर मिलै व्याव तब कन्ने ।
गाने खेत धरौ, घर बैंचौ अपनो काय बिगन्ने ।।
इतनी कात चिबक दद्‌दा सें बाई सुबक धर रोई,
बिटिया ठाड़ी कीसें का कय तरतर अँसुआ जा रये ।।
कौरे सें लग बिटिया....।।

– घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर

बुन्देली उत्सव २००९ हेतु समितियाँ

कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति

१. श्री दिवान त्रिलोक सिंह बुन्देला
२. श्री भारत कृष्ण देव सिंह बुन्देला
३. श्री शारदा प्रसाद शुक्ला
४. श्री पर्वत सिंह बुन्देला

स्वागत व्यवस्था समिति

१. श्री संतोष अग्रवाल
२. श्री केदारनाथ अग्रवाल
३. श्री राकेश अग्रवाल
४. श्री वृन्दावन रैकवार
५. श्री सिब्बा रैकवार
६. श्री जगदीश रैकवार
७. श्री रामस्वरूप रैकवार (दसुवा)
८. श्री सोनू रैकवार
९. श्री लखन रैकवार (रामाधीन)

भोजन व्यवस्था एवं कूपन वित० समिति

१. श्री महेश प्रसाद अग्रवाल (पंगू) प्रभारी
२. श्री अखिलेश्वर चौबे
३. श्री धर्मेन्द्र खरे

मंच सज्जा समिति

१. श्री शोभालाल गुप्ता
२. श्री अच्छेलाल यादव
३. श्री बारे लाल पाल
४. श्री मुल्ली यादव
५. श्री लली पाल
६. श्री हीरा पाल
७. श्री मन्नू पाल
८. श्री पंचम लाल विश्वकर्मा
९. श्री सुनील वर्मा

चाय नाश्ता समिति एवं जल व्यवस्था

१. श्री सुरेश अग्रवाल 'पप्पू', प्रभारी
२. श्री सुधीर अग्रवाल
३. श्री मिलन रैकवार (खिलइयां)
४. श्री मइयादीन रैकवार (हरि)
५. श्री झल्लन रैकवार
६. श्री रमेश रैकवार
७. श्री कल्लू रैकवार (खिलैयां)

स्टेडियम कार्यालय प्रभारी

१. श्री शारदा प्रसाद शुक्ला, प्रभारी
२. श्री नवल किशोर अग्रवाल, प्रभारी
३. श्री जगदीश यादव, सहायक
४. श्री प्रभु यादव, सहायक

अश्वनृत्य व्यवस्था समिति

१. श्री पर्वत सिंह बुन्देला
२. श्री संजय सिंह
३. श्री मन्नू यादव
४. श्री भज्जू पाल
५. श्री मुकेश साहू
६. श्री खुमान रजक

अखाड़ा व्यवस्था समिति

१. श्री मातादीन पहलवान
२. श्री रामस्वरूप पटेल
३. श्री सिराज खान
४. श्री अजय बाल्मीक
५. श्री फुली कौंदर
६. श्री महादेव कोंदर
७. श्री हरी कौंदर (छतारे)

स्टेडियम सुरक्षा व्यवस्था समिति

१. श्री हीरालाल पाल
२. श्री रामू अहिरवार 'चौकीदार'
३. श्री मातादीन अहिरवार
४. श्री द्वारका अहिरवार
५. श्री टुड़ी कोंदर
६. श्री अमरा अहिरवार

मेला व्यवस्था एवं प्रदर्शनी समिति

१. श्री बाबूलाल खरे, प्रभारी
२. श्री सरजू यादव
३. श्री अनारी राजपूत
४. श्री पुन्ना अहिरवार
५. श्री छोटा अहिरवार
६. श्री रमेश अहिरवार (हरजुआ)

आवास व्यवस्था समिति (स्कूल के चार कमरों में)

१. श्री लखन यादव, प्रभारी
२. श्री वृन्द्रावन राजपूत
३. श्री राजू रैकवार
४. श्री राजेश रैकवार
५. श्री मन्टू अहिरवार
६. श्री रतन साहू

आवास व्यवस्था समिति

१. श्री युनिस खान, प्रभारी
२. श्री राममिलन श्रीवास
३. श्री कलन रैकवार
४. श्री कल्लू यादव (किशन यादव)
५. श्री जगदीश/पंचू रैकवार
६. श्री राकेश बाल्मीक
७. श्री कैलाशा पटेल (रामस्वरूप)

आवास व्यवस्था समिति
(नया कार्यालय भवन गेट–२ के सामने)

१. श्री राजू कुशवाहा, प्रभारी
२. श्री राजू पटेल
३. श्री विजय रैकवार
४. श्री भगवानदास अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति (आर.आई. क्वार्टर में)

१. श्री बाबू लाल यादव, प्रभारी
२. श्री कल्ला रैकवार
३. श्री रमेश अहिरवार हरजुआ

पंजीयन समिति

१. श्री महाराज सिंह
२. श्री राममूर्ति नामदेव, प्रभारी
३. श्री कृपाराम पटेल, प्रभारी
४. श्री महेन्द्र शुक्ला
५. श्री ग्यादीन अहिरवार

गेट व्यवस्था एवं झंडा बैनर समिति

१. श्री महादेव यादव, प्रभारी
२. श्री रामस्वरूप रावत
३. श्री मुल्ली अहिरवार
४. श्री शिवदीना अहिरवार
५. श्री आशाराम अहिरवार
६. श्री पप्पू अहिरवार
७. श्री रघ्घू पाल
८. श्री सरमन राजपूत
९. श्री देशराज अहिरवार
१०. श्री दीपेन्द्र अहिवार
११. श्री राजू काछी

विद्युत व्यवस्था समिति

१. श्री रामचरण रैकवार
२. श्री लक्ष्मी रैकवार
३. श्री अजय रजक
४. श्री जयसिंह यादव
५. श्री नन्दू जोशी 'पहरा'
६. श्री परमलाल कौंदर
७. श्री सुशील सोनी
८. श्री बराती रजक
९. श्री पंचू कोंदर

चित्रकार एवं लेखन कार्य समिति

१. श्री प्रेमकिशोर खरे
२. श्री धीरज सिंह परमार
३. श्री रमेश अहिरवार
४. श्री गज्जू अहिरवार
५. श्री सुनील बाल्मीक
६. श्री अनिल बाल्मीक

खेलकूंद व्यवस्था समिति (बालीबॉल)

१. श्री पर्वत सिंह बुंदेला, प्रभारी
२. श्री संजय सिंह,
३. श्रीमती स्नेहलता रैकवार
४. श्री हेमंत यादव
५. श्री महेन्द्र विश्वकर्मा
६. श्री भागवत पटेल, कर्री
७. श्री दुर्गा अहिरवार
८. श्री अशोक यादव
९. श्री दिनेश रैकवार, कुटू
१०. श्री फूलचन्द्र यादव
११. श्री बबलू रैकवार (तुलसी)

खेलकूंद व्यवस्था समिति (कबड्डी)

१. श्री पुष्पेन्द्र सिंह बघेल, प्रभारी
२. श्री आदित्य दुबे, प्रभारी
३. श्री अमित सिंह, प्रभारी
४. श्री बबलू यादव
५. श्री धर्मेन्द्र राजपूत
६. श्री कल्लू यादव (बाबूलाल)
७. श्री कमलेश यादव (परमानन्द)
८. श्री मुकेश रैकवार (सर्री)
९. श्री रामकिशोर रैकवार (रामदास)
१०. श्री पिक्का रैकवार (हरदास)

बैठक व्यवस्था

१. श्री परशुराम अवस्थी (प्रभारी)
२. श्री जब्बार खाँ (प्रभारी)
३. श्री मथुरा यादव
४. श्री भागीरथ यादव
५. श्री रतन यादव
६. श्री स्वामीदीन कुशवाहा
७. श्री छुट्टन अहिरवार
८. श्री श्यामलिया कोरी
९. श्री रामअवतार अहिरवार
१०. श्री हरिश्चन्द्र कोरी
११. श्री प्रभू अहिरवार (हरिया)
१२. श्री छन्नू हरिजन
१३. श्री प्यारेलाल अहिरवार (गोला)
१४. श्री मन्नू यादव
१५. श्री महेश यादव (हक्कू)
१६. श्री बन्दू यादव (गुटियां)
१७. श्री गुबन्दी कुशवाहा
१८. श्री परमानन्द यादव

मोटरसाइकिल/साइकिल स्टैण्ड व्यवस्था समिति

१. श्री ग्या प्रसाद साहू (कल्लू)
२. श्री राकेश पटेल (कल्लू)
३. श्री सहीद खाँ
४. श्री रामकृपाल यादव

卐

BUNDELI VIKAS SANSTHAN BASARI, CHHATARPUR (M.P.)
INCOME & EXPENDITURE FOR THE YEAR 2007-2008

EXPENDITURE	Rs.	Rs. (R)	INCOME	Rs. (R)
Bundeli Utsav Expenses		1,262,665.00	**Grant Received From Govt. of India**	
Medical Camp. Exp.	6,000.00		Human Resource Development	87,500.00
Hasya Kabi Sameelan	25,000.00			
Plantation Expenses	12.640.00		**Grant Received**	
Agriculture Training & Seed Di	11,678.00	55,318.00	From Jan Sahyog	9,70,500.00
Other Expenses			**Membership Fee**	4,680.00
Salary	84,000.00			
Honararium	68,000.00		**Smarika Advertisement**	1,42,000.00
Audit Fees & Income Tax	3,500.00			
Misc Exp.	10,576.00		**Interest From Bank**	587.00
Stationary & Printing	15,423.00			
Teaching learning Exp.	22,658.00		**Add Excess of Exp Over Income**	416,764.00
Ismarika Printing Exp.	80,000.00			
Postage	1,200.00			
Bank Commission	230.00			
Sangosthi (Meeting)	18,461.00	304,048.00		
TOTAL Rs. :		**1,622,031.00**	**TOTAL Rs.**	**1,622,031.00**

RECEIPTS & PAYMENTS A/C FOR THE YEAR 2007-2008

RECEIPTS	Rs.	Rs. (R)	PAYMENTS	Rs.	Rs. (R)
OPENING BALANCE			**BUNDELI UTSAV EXPENSES**		**1,262,665.00**
Cheques in Hand	8,78,000.00		Medical Camp. Exp.	6,000.00	
Cooperative Bank (46)	11,822.00		Hasya Kabi Sameelan	25,000.00	
Canara Bank (S/A) 1608	8,195.00		Plantation Expenses	12,640.00	
Cash in Hand	280.00		Agriculture Training & Seed Dis.	11,678.00	**55,318.00**
F.D.R. Canara Bank	8,00,000.00				
		1,698,297.00	**OTHER EXPENSES**		
Grant Received From Govt. of India			Salary	84,000.00	
Human Resource Development		87,500.00	Honararium	68,000.00	
			Audit Fees & Income Tax	3,500.00	
Grant Received			Misc Exp.	10,576.00	
From Jan Sahyog		9,70,500.00	Stationary & Printing	15,423.00	
			Teaching learnng Exp.	22,658.00	
Membership Fee		4,680.00	Ismarika Printing Exp.	80,000.00	
			Postage	1,200.00	
Smarika Advertisement		1,42,000.00	Bank Commission	230.00	
			Sangosthi (Meeting)	18,461.00	**304,048.00**
Interest From Bank		587.00			
			Loan Refund to Sharirik Siksha Maha. Basari		**430,000.00**
			CLOSING BALANCES		
			Co-operative Bank (46)	20,994.00	
			Canara Bank (S/A) 1608	30,539.00	
			F.D.R. Canara Bank	8,00,000.00	**851,533.00**
TOTAL Rs.		**2,903,564.00**	**TOTAL Rs.**		**2,903,564.00**

BALANCE SHEET AS AT 31-3-2008

FUNDS	Rs.	Rs. (R)	ASSETS	Rs.	Rs. (R)
Society Fund			**Fixed Assets**		
As per L.BS	1,658,590.00		Land (As per last B.S.)		3,08,646.00
Less The year	(416,764.00)	1,241,826.00			
			Building Construction		6,95,600.00
Loans & Deposit					
Nehru Yuva Club Basari		1,32,216.00	Furniture (As per last B.S.)		9,597.00
Loans Swami Pravanand Homeo College		5,00,000.00	**Dead Stock (W.D.V)**		8,666.00
			CLOSING BALANCES		
			Cooperative Bank (46)	20,994.00	
			Canara Bank (S/A) 1608	30539.00	
			F.D.R. Canara Bank	8,00,000.00	8,51,533.00
TOTAL Rs.		**1,874,042.00**	**TOTAL Rs.**		**1,874,042.00**

We certify that receipts & Utilization of Funds & Closing Balance (as above) are correct.

AUDIT REPORT

We have checked (enclosed) receipts and utilization a/c and Balance Sheet as on 31-3-2008 if any we certify them as correct.

शोभालाल गुप्ता
अध्यक्ष

जीतेन्द्र सिंह
सचिव

SAGAR, 21-08-2008

R.V. Agrawal
Chartered Accountants